मनोरंजन पुस्तकमाला-१४

संपादक—

श्यामसुंदरदास, बी० ए०

प्रकाशक—

काशी नागरीप्रचारिणी सभा

बुद्धदेव.

शक्रवायुवरुणादयः सुराः
विक्रिया मुनिवरांश्च यत्कृते ।
यांति तत्स्मर सुखं तृणायितं
यस्य कस्य न स विस्मयास्पदम् ॥

लेखक

जगन्मोहन वर्म्मा

१९२३.

दुर्गाप्रसाद खत्री द्वारा
भारतजीवन प्रेस, काशी में मुद्रित ।

दूसरा संस्करण]   [मूल्य १)

भूमिका

महात्मा बुद्धदेव संसार के बड़े महापुरुषों में एक आदर्श महापुरुष थे। हिंदुओं के ग्रंथों में जिस प्रकार राम, कृष्ण आदि परमात्मा के अवतार कहे गए हैं, उसी प्रकार बुद्ध भी कहे गए हैं। उनके अनुयायी आज तक हिंदुस्तान, तिब्बत, चीन, बर्म्मा, जापान, स्याम, लंका, जावा आदि देशों में पाए जाते हैं। बौद्ध धर्म हिंदूधर्म से कोई पृथक् धर्म नहीं है। जिस प्रकार एक सत्यसनातन वैदिक धर्म की श्रौत, स्मार्त, शैव, वैष्णव, आर्य्य-समाज आदि अनेक साम्प्रदायिक शाखाएँ हैं, जिनमें देश-काल के भेद से अंतर दिखाई पड़ता है, वैसे ही बौद्धधर्म भी सत्यसनातनधर्म की एक शाखा मात्र है। स्वयं भगवान् बुद्धदेव ने अपने वचनों में बीसों जगह कहा है—"एस धम्मो सनन्तनो।"

आजकल कुछ लोग महात्मा बुद्धदेव के उपदिष्ट सिद्धांतों को न जानकर यह कहा करते हैं कि महात्मा बुद्धदेव नास्तिक और वेदधर्म के विरोधी थे। सन् १९११ में गुरुकुल काँगड़ी के सरस्वती सम्मेलन में "क्या बुद्धदेव नास्तिक थे ?" इस विषय पर अपने विचार प्रकट करते हुए मैंने उन्हीं के वाक्यों से सिद्ध करके दिखाया था कि महात्मा बुद्धदेव नास्तिक नहीं थे। आज उन्हीं महात्मा का यह एक छोटा सा जीवनवृत्तांत आप के सामने उपस्थित करता हूँ।

इसके देखने से आप को मालूम होगा कि महात्मा बुद्धदेव एक महाविद्वान्, दार्शनिक और धर्मपरायण महापुरुष थे। उन्होंने ऋषियों के इस कथन का "यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि" का पूर्ण रूप से पालन किया था। वे संसार को कार्य्यकारण के अविच्छिन्न नियम में बद्ध और अनादि मानते थे और छः इंद्रियों को जिन्हें षड़ायतन कहा है, तथा अष्टांग मार्ग को ज्ञान का साधन समझते थे। अष्टांग मार्ग ये हैं—

१ सम्यक् दृष्टि=अच्छे प्रकार मनोयोग से परीक्षक बन कर देखना।

२ सम्यक् संकल्प=सोच विचार कर किसी काम का संकल्प करना जिससे संकल्प का विकल्प न हो।

३ सम्यग् वाचा=सोच विचार कर बात कहना, सत्य बोलना जिससे वचन मिथ्या वा निरर्थक न हो।

४ सम्यक् कर्म्म=सोच विचार कर नियमानुसार काम करना जिससे कोई कर्म निरर्थक न हो और अवश्य परिणाम तक पहुँचे और सफल हो।

५ सम्यगाजीव=सद्व्यवहार से जीविका निर्वाह करना।

६ सम्यग् व्यायाम=शारीरिक और मानसिक व्यायाम को ठीक ठीक निरंतर करते रहना जिससे आलस्य न आवे, मानसिक और शारीरिक शक्तियाँ उन्नति करती जायँ और नीरोग रहें।

७ सम्यक् स्मृति=स्मृति ठीक रखना अर्थात् बातों को न भूलना।

८ सम्यक् समाधि=सुख दुःख के प्रभावों से प्रभावित न होना

और समवृत्ति में स्थिर रहकर एकाग्रचित्त रहना।

उपर्युक्त अष्टांगिक मार्ग ऐसे साधन हैं जिनसे मनुष्य एक आदर्श पुरुष हो सकता है। इनके बिना मनुष्य सुन तो सकता है, पर मनन और निदिध्यासन नहीं कर सकता।

महात्मा बुद्धदेव का दार्शनिक सिद्धांत ब्रह्मवाद वा सर्वात्मवाद था। उन्होंने एक स्थल पर स्वयं कहा है—

ब्रह्मभूतो अतितुलो मारसेनप्पमद्दनो।
सब्बा मित्ते वसीकत्वा मोदामि अकुतोभयो॥

मैं अतितुल्य ब्रह्मभूत हूँ, मैंने मार की सेनाएँ तृष्णा आदि नष्ट कर डाली हैं, मैंने मैत्री से सबको अपने वश में कर लिया है, मैं ब्रह्मानंद में निमग्न हूँ, मुझे किसी का कुछ भी भय नहीं है।

इस ग्रंथ के लिखने के लिये निम्नलिखित ग्रंथों से मैंने सामग्री संग्रह की है—

ललितविस्तर।
अश्वघोषकृत बुद्धचरित।
धम्मपद।
दीर्घनिकाय।
मध्यमनिकाय।
अंगुत्तरनिकाय
खुद्दकनिकाय।
सुत्तनिपात।

महावग्ग।

त्रिपिटक।

बुद्धघोषकृत अट्ठकथा।

म० म० डा० सतीशचंद्र विद्याभूषण कृत बँगला बुद्धदेव।

जिनतत्वप्पकसिनी (बर्म्मी भाषा)।

विलियम कृत बुद्ध।

डेविस कृत बुद्धिज्म्।

इनके अतिरिक्त उर्दू और अँग्रेजी में लिखे हुए बुद्धदेव के अनेक जीवनचरित्रों का मुझे पर्य्यालोचन और अवगाहन करना पड़ा है। इस ग्रंथ के लिखने में मुझे बर्म्मा देशवासी श्रीचंद्रमणि भिक्खु से विशेष सहायता मिली है जिन्होंने इस-वर्ष के चातुर्मास्य में मेरे पास रहकर मुझे बर्म्मी भाषा के अनेक ग्रंथों से सामग्री संग्रह करने में सहायता दी। इस ग्रंथ में मैंने महात्मा बुद्धदेव के बुद्धत्व प्राप्त होने पर उनके उपदेशों और प्रतिवत्सर के भ्रमण-वृत्तांतों को जहाँ तक उनका पता त्रिपिटक आदि से चलता है, दिया है। यह काम उक्त भिक्षुजी की कृपा का फल है। उनके इस अनुग्रह और श्रम के लिये मैं उनको अंतःकरण से धन्यवाद देता हूँ।

अंतिम प्रकरण में बुद्धधर्म के सिद्धांतों का दिग्दर्शन कराया गया है। यह उनके उन उपदेशों का निचोड़ है जो मैंने कई वर्षों तक लगातार बौद्ध साहित्य के अवगाहन से निकाला है। इसमें मैंने अपनी ओर से कुछ नहीं लिखा है, मैं बराबर त्रिपिटक से गाथाओं को प्रमाण में उद्धृत करता गया हूँ। इसमें संदेह नहीं कि वर्तमान

कालिक बौद्धों के आचार व्यवहार आदि उन सिद्धांतों के अनुकूल नहीं, पर इसके लिये वे उत्तरदाता हैं, शास्त्र नहीं।

संभव है कि इस ग्रंथ में कुछ त्रुटियाँ रह गई हों, पर मैंने इस ग्रंथ को निष्पक्ष भाव से लिखने में अपनी ओर से जान बूझकर कोई कसर नहीं रक्खी है। आशा है कि पाठक त्रुटियों को क्षमा करेंगे।

'सर्वे सर्वं न जानंति।'

काशी, गोरखनाथ का टीला।
२० नवंबर, सन् १९१४.

जगन्मोहन वर्म्मा।

विषय-सूची



वाराणसी में धर्मचक्र-प्रवर्तन

S. L. N. PRESS, 1131-23.

बुद्धदेव

(१) प्रस्तावना

शक्रवायुवरुणादय सुरा
विक्रिया मुनिवराश्च यत्कृते ।
याति तत्स्मरसुख तृणायते
यस्य कस्य न स विस्मयास्पदम् ॥

वैदिक आर्य्यों की प्राचीन सभ्यता, जिसे ऋषियो ने वैदिक काल के प्रारभ में स्थापित किया था और जिसका मूलमन्त्र "द्दतेद्द हमा मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षताम्। मित्रस्याह सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे" था, अनार्य जाति के सम्पर्क से, दूषित हो गई थी। उनकी वह स्वतन्त्रता, जिससे प्रेरित होकर महर्षि विश्वामित्र ने समस्त कुशिक जाति को अपने अपने घरो मे आग जलाने की * आज्ञा दी थी, प्राचीन अग्नि-

---

* देखो ऋग्वेद म० ३ सू० २९ मं० १५

अमित्रायुधो मरुतामिवप्रयाः
प्रथमजा ब्रह्मणो विश्वमिद्विदु ।
द्युम्नद्ब्रह्मकुशिकास एरिरे
एक एके दमे अग्निं समीधिरे ।

देवता की पूजा के अतिरिक्त जिसका प्रचार * पूर्व युगो से कश्यपीय सागर से गगा यमुना के किनारे तक था, जिसने सविता आदि नए देवताओ की उपासना का प्रचार किया था, तथा पूर्वकाल से प्रचलित † नरमेध यज्ञ की प्रथा को एकदम उठा दिया था, कुछ

---

* दे० ऋ० मं० १, सू० १, मं १।

अग्नि पूर्वेभि ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत।

प्राचीन काल से आर्य्यगण अग्निदेवता की ही पूजा करते थे। विश्वामित्रजी ने सविता आदि अनेक नए देवतों का पता चलाया और उनकी उपासना का प्रचार किया, गायत्री मंत्र की रचना की। तब से भारतीय आर्य्यों और पारसी (ईराणीय) आर्य्यों में भेद पड गया। पारसीय आर्य्यों का मुख्य देवता अग्नि बना रहा, पर भारतीय आर्य्यों ने सविता देवता की प्रधानता से उपासना करनी प्रारभ की। इद्र को जो सविता ही का रूपातर था, समस्त देवताओं का अधिपति बनाया। ऐसा करने मे विश्वामित्र जी का पश्चिमीय आर्य्यों ने, जिनके प्रधान याजक वशिष्ठ थे, विरोध किया। पर विश्वामित्र जी की प्रतिभा की ख्याति कश्यप सागर तक फैल गई और सिधु पार के सुदास पैजवन ने उन्हें अपने यहा यज्ञ कराने के लिये बुलाया। वशिष्ठजी ने पहले तो सुदास को समझाने की चेष्टा की और उसकी बडी बडी खुशामदें की, पर उसने एक न माना, तब विश्वामित्र जी का विरोध करने पर वे उतारू हो गए। उन लोगो ने विश्वामित्र जी को पकडा, बाधा, लूटा और बहुत तग किया। यह सब कथा ऋग्वेद मं० ३ और ७ से निकलती है। इसी आधार पर पुराणों में विश्वामित्र और वशिष्ठ के झगड़े की कथा गढी गई है।

† आर्य्यों में बहुत पूर्वकाल से नरमेध की प्रथा थी। ऐतरेय और कौषीतक ब्राह्मणों के देखने से ज्ञात होता है कि विश्वामित्र के समय मे हरिश्चंद्रवेधस् नामक एक राजा था। उसके कोई पुत्र न था।

धीमी पड गई थी। ऋषियो का वह स्वातन्त्र्य और पक्षपात-राहित्य जिसने सारस्वत प्रदेश के रहनेवाले ऋषियों को ※ "कवष ऐलूष" नामक एक दासीपुत्र को वैदिक भाषा मे कविता करने पर

उसने वरुण से प्रतिज्ञा की थी कि यदि मेरे कोई पुत्र होगा तो मैं उससे यज्ञ करूगा। दैवयोग से उसके एक पुत्र हुआ और उसका नाम रोहित पडा। रोहित के जन्म लेते ही वरुण ने बार बार यज्ञ करने के लिए तगादा करना प्रारभ किया, पर हरिश्चद्र उसे टालते गए। अत को जब रोहित बडा हुआ तो वह भागकर जगल में चला गया। वरुण के बार बार दौड दौड कर तगादा करने से तग आकर राजा हरिश्चद्र ने एक लडके को मोल लेकर उससे यज्ञ करने का निश्चय किया। अजीगर्त नाम के ऋषि के तीन पुत्र थे, शुन पुच्छ, शुन शेप और शुन लागूल। हरिश्चद्र जी ने उनसे शुन शेप को मोल लिया। वही शुन शेप बलिदान के लिये यज्ञयूप में बाधे गए। उस समय अपने बचने के लिए जो जो प्रार्थनाए शुन शेप ने की थी वे मत्र रूप में अब तक ऋग्वेद के पहले मंडल में मिलती हैं। अत को विश्वामित्र जी ने यज्ञयूप से इन्हें बचाकर अपना कृत्रिम पुत्र बनाया। यही इतिहास कुछ उलट फेर के साथ चद्रकुमार जातक में मिलता है।

* कौषीतक ब्राह्मण अ० १२ मे लिखा है कि एक बार ऋषि लोग सरस्वती के किनारे किसी सत्र मे भोजन कर रहे थे। कवष ऐलूष उनकी पक्ति मे भोजन करने के लिये जा बैठा। ऋषियों ने उसे देख कर कहा कि "कवष तू दासीपुत्र है, हम तेरे साथ न खायँगे।" कवष वहा से चला गया और थोडे ही दिनों में उसने कितने मत्रो की रचना कर डाली। ऋषियों को जब कवष की योग्यता का पता चला तो उन लोगों ने उसके पास जा अपने अपराध को क्षमा प्रार्थना की और उसे महर्षि कहकर अपनी पक्ति में ले लिया। कवष के रचे मत्र अब तक ऋग्वेद में हैं।

ऋषि मान अपनी पक्ति मे लेने के लिये बाध्य किया था, तथा इतरा के पुत्र ऐतरेय महीदास को ऋषियो से ऋषिपद प्रदान कराया था, यद्यपि जाते न रहे थे पर मद पड गए थे। स्त्रियो की वह स्वतत्रता जो उन्हे वैदिक काल मे प्राप्त थी और जिसके कारण वे कितने ही मत्रो की कर्त्री हुई, उनसे छीनी जा चुकी थी और यज्ञों मे यजमान के साथ उन्हें सम्मिलित होने की आज्ञा मिलने पर भी उनसे केवल आज्यनिरीक्षण का ही काम लिया जाता था।

शुद्ध वैदिक अध्यात्मवाद कर्मकाड के काले बादलो मे छिप गया था। तपोधन ऋषि लोगो की सतानों को दक्षिणा के लोभ ने इतना घेरा था कि उनका परम कर्तव्य यज्ञ कराना ही हो गया था। याज्ञिको ने यज्ञों मे बाधक होने के कारण वेदार्थ के परम साधक इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा, नाराशसी आदि प्राचीन ऐतिहासिक ग्रथो का ध्वस कर दिया था और नैरुक्तक पक्ष भी लगभग विलुप्त हो गया था। याज्ञिक लोग वेद मत्रो को स्वरसहित तोते की तरह रटते थे और उनके वास्तविक ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, आध्यात्मिक आदि अर्थो पर विचार नही करते थे। ऐसी ही अवस्था मे कौत्स आदि सशयवादी ऋषियों का प्रादुर्भाव हुआ, जिन लोगो ने "अनर्थका हि मत्रा" इत्यादि वाक्यों से वेदो के मत्रो को अनर्थक ठहराया जिसका उल्लेख निरुक्त मे अबतक मिलता है।

इस बढे हुए कर्मकाड के युग मे उत्तरीय भारत की अयोध्या, काशी, इद्रप्रस्थादि राजधानियाँ अश्वमेध आदि यज्ञों मे अग्निकुड की आग मे पड़ते हुए चटचटाते हुए पशुओं के मास वपा आदि

की दुर्गंधि से सहस्त्रों बार दूषित हुई । स्वर्ग की कामना ने सहस्त्रों बार स्वर्गलोलुप यजमानो को पृथ्वी को पशुओ के रक्त से क्यारी की तरह सींचने के लिये बाध्य किया। श्रीमानो ने बडे बडे पशु-हिंसावाले यज्ञ करने ही मे अपनी इतिकर्तव्यता और अपने ऐश्वर्य्य की शोभा समझी थी। यज्ञमडप लोलुप यजमानो का क्रीडागार बना था। लोभ और काम ने याजको को यहाँ तक घेरा था कि पुष्कल धन देनेवाला उनके लिये सभी कुछ था।। अन्य ग्रथो की तो बात ही क्या है, स्वय ऋग्वेद के दक्षिणासूक्त मे दक्षिणा देनेवालों को * ऋषि, ब्रह्मा, समग आदि सभी कुछ कहा गया है और यजुर्वेद अध्याय २३ मे उन हँसी और दिल्लगियो का नमूना मौजूद है जो याज्ञिक लोग यज्ञमडप मे यजमान की कुटुबिनी स्त्रियो से करते थे और जिसका समर्थन शतपथ ब्राह्मण काड १६ अध्याय २ से भी होता है।

अविद्या का इतना प्रसार था और पक्षपात ने इतना घेर लिया था कि शूद्र तो असभाष्य ही थे, द्विजों मे भी कुछ थोडे इने गिने ब्राह्मण और क्षत्रियो के अतिरिक्त शेष लोग मूर्ख ही रहते थे। ब्रह्मबधु, राजन्यबधु शब्द जिनका अर्थ अशिक्षित ब्राह्मण और अशिक्षित क्षत्रिय है, ब्राह्मण ग्रथो तक मे मिलते हैं। कहाँ वेदो की यह शिक्षा कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र क्या अत्यजो तक मनुष्य

---

* तमु ऋषिं तमु ब्रह्म।णमाहुर्यज्ञन्य सामगामुक्थशासम् ।
स शुक्रस्य तन्वो वेद तिस्रो प्रथमो दक्षिणया रराध ॥

मात्र से मीठी बाते करना * कहाँ शूद्रों को असभाष्य ठहराना और 'स्त्रीशूद्रद्विजबधूना त्रयी न श्रुतिगोचरा' से उन्हें शिक्षा से वचित रखना।

विशुद्ध अध्यात्मवाद वा ब्रह्मवाद जिसके विषय मे "एकमेव बदत्यग्नि मनुमेके प्रजापतिम्। इद्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्मशाश्वतम्" की शिक्षा वैदिक महर्षियो ने दी थी और जिस सिद्धात के विषय मे महर्षि यास्काचार्य्य ने "आत्मैवेषा रथो भवति आत्माश्व आत्मायुध आत्मा सर्व देवस्य देवस्य" कहा था, वह देवतावाद के परदे मे छिप गया था। सब लोग पुरुषार्थहीन हो प्रत्यक्ष देवताओ से जो उसी सर्वात्मा ब्रह्म के अवातर वा शक्ति भेद थे और जिनके विषय मे निरुक्तकार ने स्पष्ट शब्दो मे "एकस्यात्मनोऽन्ये देवा प्रत्यङ्गानि भवन्ति" कहा था, उपयोग लेने की जगह उन्हे अपरोक्ष और अलौकिक मान उन्हे आहुतियो से प्रसन्न कर उनसे परलोक मे सहायता की अभिलाषा रखते थे। हिंसा का प्रचार इतना बढा था कि बडे यज्ञों से लेकर गृह्यकर्मो तक और श्राद्ध से लेकर आतिथ्य-सत्कार तक कोई कृत्य ऐसा न था जो हिसा और मास के बिना हो सके।

दर्शनो का सूत्रपात यद्यपि बहुत पूर्व काल मे, वैदिक युग मे ही, महर्षि कपिल जी ने किया था और तब से समय समय

---

* यथेमा वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्य।
ब्रह्मराजन्याभ्या शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय॥ यजु अ० २६। २

पर विद्वान् लोग उनपर अपने विचार प्रगट करते रहे; पर सर्व-साधरण का ध्यान उनके गूढ तत्वों की ओर नही गया था। उपनिषदो का समय आया और चला गया, पर किसी को भी कर्मकाड का विरोध करने का साहस नही हुआ। कुछ इने गिने विद्वान् लोग अवश्य, यथासमय वैदिक काल से ही, विज्ञान वा अध्यात्मवाद की झलक दिखाते रहे। पर राजाओ का विशेष लक्ष्य यज्ञ ही रहा। हाँ, कही कही कोई कोई राजर्षि जनक आदि आध्यात्मविद्या के सच्चे प्रेमी और जिज्ञासु देख पडते थे।

प्राचीन इतिहास और साहित्य पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि याज्ञिक और अध्यात्मवाद, उभय पक्ष, इस आर्य्यावर्त मे कई कई बार बारी बारी से प्रबल हुए और फिर उनका ह्रास हुआ। सब ने बारी बारी सहिताओ का सकलन किया जो पीछे कालातर मे या तो विरोध से या किसी और कारण से लुप्त-प्राय हो गई। इन सहस्रों वर्षो के परस्पर के झगडे का परिणाम यह हुआ कि याज्ञिको ने अध्यात्मवादियो के मत की उत्कृष्टता को स्वीकार कर लिया। दोनो पक्षो के कर्मक्षेत्र के बीच सीमा बन गई और कर्मकाडियो ने अपना लक्ष्य स्वर्ग और ज्ञानकाडियों ने अपनो लक्ष्य मोक्ष रक्खा।

अध्यात्मवाद की एक बार फिर उन्नति हुई। साख्य योगादि विषयो पर ग्रथ रचे गए। कणाद ने वैशेषिक शास्त्र की रचना की और गोतम ने न्याय शास्त्र रचा। महाभारत के युद्ध के समय महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास ने अवतार लिया। इन महानुभाव ने

वेदों की सहिताओ का फिर से विभाग किया और वेदातदर्शन की रचना की। इसी समय मे व्यास जी के शिष्य जैमिनि ने मीमासा शास्त्र रचकर यह स्पष्ट कर दिया कि केवल विधि-वाक्य की ही शब्दप्रमाणता है। इसके थोडे ही दिनो पीछे महामुनि शाकटायन ने निरुक्त शास्त्र की रचना की और सस्कृत भाषा के लिये व्याकरण रचा। पर थोडे ही दिनो पीछे याज्ञिकों की फिर भी प्रबलता हो गई और आध्यात्मिक पक्ष दब गया। अब की बार याज्ञिकों का दल बहुत प्रबल हुआ। इस समय बडे बडे अश्वमेध गोमेधादि यज्ञ हुए जिनमे दिए हुए निष्क अब तक भारतवर्ष के खँडहरो में निकलते हैं। इन निष्कों पर घोडे, बैल आदि के चिह्न अश्वमेध, गोमेध आदि यज्ञो के द्योतक बने हुए मिलते हैं। श्रौत्रसूत्रो का निर्माण प्राय इसी काल में हुआ था। महर्षि पाणिनि जी ने अष्टाध्यायी रचकर याज्ञिको के रूढि अर्थ की बडी सहायता की और याज्ञिको ने इनके व्याकरण को अपनाकर शाकटायनादि व्याकरणो के प्रचार में बाधा डाली।

इस नए युग मे अध्यात्मवाद बिल्कुल दब गया था और दर्शनो का प्रचार अत्यत कम हो गया था। हाँ योगशास्त्र का भले ही कुछ योगियों मे प्रचार रह गया था जो अष्टागयोग के अतरग प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि की ओर न जाकर केवल बहिरग यम, नियम, आसन और प्राणायाम ही का करना अपनी इतिकर्तव्यता समझते थे और योग का फल चित्त-

वृत्ति निरोध न समझ ऋद्धियो की प्राप्ति के लिये बडे बडे कष्ट सहते थे। उनमे सच्चे वैराग्य का जिसका लक्षण "दृष्टानुश्राविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसञ्ज्ञा वैराग्यम्" था, नितात अभाव था और उन लोगों ने "देहदु ख महत्फल" मानकर जगलो मे रहकर तप करने ही मे अपनी इतिकर्तव्यता समझी थी।

पुरुषार्थ और स्वात्मावलबन से लोगों का विश्वास हट गया था। चारो ओर आसुरी शक्ति का प्रभाव था और दैवी शक्ति बिलकुल तिरोहित हो गई थी। ऐसे समय मे कही याज्ञिक रूप मे, कही योगियो के रूप में, कहीं क्षत्रियों के रूप मे, चारो ओर आसुरी सपत्ति के लोगों ही की प्रधानता थी। दैवी सपत्ति के लोग या तो थे ही नहीं, औरयदि थे भी तो किसी कोने में पडे अपना काल-क्षेप कर रहे थे। प्रकृति के लिये आवश्यक था और समय आ गया था कि यहाँ कोई महापुरुष अवतार ग्रहण करे और आसुरी माया का ध्वस करके शुद्ध आर्य्य धर्म का अभ्युत्थान करे जिसकी प्रतिज्ञा भगवान् कृष्णचद्र ने महाभारत के समय मे अर्जुन से की थी—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

---

(२) वंश-परंपरा

बहुत दिन हुए, कौशल की राजधानी अयोध्यापुरी मे, जिसे साकेत भी कहते है, सूर्य्यवश के विमल वश मे इक्ष्वाकु नामक बडा प्रतापी राजा हुआ था जिसके वश मे महाराज रामचद्र जी ने अवतार लिया था। उसी इक्ष्वाकुवश मे महाराज सुसम्मति ने जन्म लिया जिनसे कई पीढी पीछे महाराज मान्धाता * का जन्म हुआ। महाराज मान्धाता से सैकडो पीढी पीछे उसी वश मे महाराज सुजात † हुए। महाराज सुजात की पटरानी से अवपुर आदि पाँच पुत्र और शुद्धा आदि पाँच कन्याएँ थी। पर महाराज ने जयती नामक किसी साधारण कन्या पर आसक्त होकर बुढापे में उससे विवाह कर लिया। दैववश थोडे ही दिनो बाद जयती के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम जयत रक्खा गया। कहते है कि एक दिन महाराज ने जयती पर अत्यत मुग्ध हो उससे प्रसन्न होकर यथेच्छ वर माँगने के लिये कहा। जयती ने

---

* महावंश के अनुसार महासम्मत और मान्धाता के बीच में चार राजा हुए हैं, जिनके नाम रोज, वररोज, कल्याण और उपौषध थे, पर महावस्तु में कल्याण, रव और उपौषध तीन ही का नाम लिखा है।

† क्षेमेंद्र ने अवदानकल्पलता में इसे विरूढक लिखा है और इसे मान्धाता से सहस्रों वर्ष पीछे लिखा है। उसके मत से मान्धाता और विरूढक के बीच कृकि, कश्यप और इक्ष्वाकु नामक बड़े प्रसिद्ध राजा हुए थे।

राजा को अनुकूल जान कहा कि "महाराज! मैं अपनी यह थाती आप के पास रखती हूँ। मैं अपने माता पिता की सम्मति लेकर आप से वरप्रदान के लिये प्रार्थना करूँगी।" थोडे दिनों के बाद जयती अपने माता पिता के घर गई। वहाँ अपने माता पिता और कुटुम्बियो से वर का सब समाचार उसने कह सुनाया। उसके कुटुम्बियो मे किसी ने गॉव, किसी ने धन, किसी ने कुछ, किसी ने कुछ माँगने के लिये कहा। इसी बीच मे एक बुद्धिमती स्त्री बोल उठी—"हे जयती! तुम जानती हो कि महाराज की क्षत्रिया पटरानी के पॉच पुत्र है, उनमे से किसी के होते तुम्हारे पुत्र जयत को राज्य मिलना नितात दुस्तर क्या, असभव है, और यह भी असभव है कि महाराज सदा तुम्हारे अनुकूल और वशीभूत ही रहे। इक्ष्वाकु वशियो का यह सनातन से स्वभाव है कि उनकी वाणी कभी अन्यथा नहीं होती। अत मेरी तो यही सम्मति है कि तुम महाराज से यह वर मॉगो कि महराज! मेरी यही प्रार्थना है कि आप ऐसा प्रयत्न करे कि आप के बाद जयत ही अयोध्यापुरी का राजा हो।" उसकी सम्मति को सभी लोगो ने पसद किया और जयती वहाँ से अयोध्यापुरी आई।

जयती ने एक दिन राजा को अपने अनुकूल देख हाथ जोडकर प्रार्थना की—"महाराज, आज मैं आप से अपनी थाती मागँती हूँ। यह राजकुल सदा से सत्यभाषी विख्यात है, अत यदि आपने मुझ पर प्रसन्न हो मुझे वरप्रदान करना स्वीकार किया है तो मेरे पुत्र जयत को युवराज पद पर अभिषिक्त कीजिए, जिससे वह आपके

परलोक प्राप्त होने पर आपका उत्तराधिकारी हो।” राजा ने “एवमस्तु” कह दूसरे दिन राजसभा मे जयत को बुला मत्रियो से अपनी इस प्रतिज्ञा की घोषणा की और अपने पाँचो राजकुमारों को बनवास की आज्ञा दी। राजा की यह घोषणा सुन राजकुमारो ने अपनी पाँचो बहिनों को अपने साथ ले बन जाने की तैयारी की और तत्क्षण उन्होने उत्तराभिमुख बन को प्रस्थान किया। वहाँ से चलकर वे लोग काशीकौशल देश मे पहुँचे और वहाँ कुछ दिन तक रहे। पर काशीकौशल के राजा ने जब देखा कि उनके सुव्यवहार से प्रजा उन लोगों को बहुत प्यार करती है, बो उसे भय हुआ कि ऐसा न हो कि एक दिन सारी प्रजा इनके अनुकूल हो जाय और इन्हें मेरे स्थान पर राजसिंहासन पर बैठा दे। इसी लिये उसने ईर्ष्यावश अपने राज्य से उन्हे निकाल दिया। वहाँ से निकलकर उन लोगों ने हिमालय के शाकोट वन की राह ली और वे महर्षि कपिल जी के आश्रम में पहुँचे। महर्षि कपिल ने उन प्रवासित राजकुमरो का स्वागत किया और उन्हे अपने आश्रम में आश्रय प्रदान किया। महर्षि कपिल के आदेशानुसार उन लोगो ने उस घने जगल को काटकर वहाँ एक नगर बसाया और उस नगर का नाम कपिलवस्तु रक्खा और वे वहाँ क्षत्रिय जाति के अभाव मे क्षत्रिय कन्या को न पा अप नीबहिनो के साथ विवाह कर रहने लगे। थोड़ी ही शताब्दियों में उस सारे देश मे उनके वशधर फैल गए। कहते हैं, वहाँ ये लोग शाक्य नाम से प्रख्यात हुए। शाक्य नाम पडने का हेतु यह बतलाया जाता है कि जब ओध्यापुरी के राजा महाराज सुजात को

यह पता चला कि राजकुमार शाकोट बन में अपनी बहिनों से विवाह कर कपिल मुनि के आश्रम के पास कपिलवस्तु नामक नगर बसा कर रहते हैं, तो उन्होंने विद्वानों की मडली एकट्ठी कर यह प्रश्न किया कि राककुमरो का शास्त्र-विरुद्ध यह कृत्य शक्य है वा अशक्य? विद्वानो ने उनके इस कृत्य को आपद्धर्म बतलाकर शक्य होने की व्यवस्था दी। इसी लिये वे लोग शाक्य ❀ कहलाने लगे।

❀ अवदान कल्पलता में लिखा है कि राजा अपने पुत्रों को फिर बुलाने के विषय में अपने मन में यह विचार करने लगे कि वह शक्य है वा अशक्य। इसीसे वे शाक्य कहलाए।

कितने लोगों का मत है कि शाक्य शक (Scythian) थे। उनका कथन है कि ईसा के जन्म से ८ शताब्दी पूर्व जो लोग मध्य एशिया से आकर नैपाल की तराई और मगध आदि देशों में बसे, उन्हीं के अतर्गत शाक्यगण भी थे। शाक्य नाम पड़ने का एक और हेतु हो सकता है। शाक शब्द ही शाकोट बन की प्रकृति जान पड़ता है। इसी शाक से हिंदी भाषा का साखू शब्द निकला है। अनुमान होता है कि साखू के जगल के कारण ही नैपाल की तराई को पुराणों में शाकद्वीप कहा हो और वहा रहने ही से क्षत्रिय लोग शाक्य तथा ब्राह्मण शाकद्वीपी कहलाने लगे हों। ऋग्वेद में मगध देश के पुराने वासियों को 'मगंद' लिखा है जिससे मगध शब्द बना है। अधिक संभव है कि येही लोग आर्य्यों में मिलने पर पीछे शाक्य, शाकद्वीपी आदि विभेदों के नाम से प्रख्यात हुए हों। शाकद्वीपी ब्राह्मणों को पुराणों में 'मग' भी कहा है। मगंदी, मग, मुग, मज्जी (Magi), माग, मंगोल (Mangolian), शब्दों का साम्य भी चिंत्य है।

भागवत में भी शाक्यों को इक्ष्वाकुवंशी लिखा है—

भागवत दशमस्कंधे। परमेश्वरात् ब्रह्मा जात तस्य पुत्रो मरीचिस्तस्य कश्यपस्तस्य सूर्य्यस्तस्य वैवस्वतोमनु। सत्ययुगे मनुरेव राजासीत। त्रेतायुगे तस्यपुत्र इक्ष्वाकु तस्य अज तस्य दशरथ। विष्णु रामचद्ररूपेण तस्यपुत्रत्वं प्राप्तवान् असौ त्रेताद्वापरयो सधौव अ-

इसी शाक्यवंश मे बहुत दिनो पीछे * उल्कामुख नामक राजा हुआ जिसके अमृता नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई। अमृता अत्यंत रूपवती थी, पर यौवनावस्था प्राप्त होने पर वह कुष्ट रोग से पीडित हुई। राजकुमारी के रोग-नाश के लिये अनेक प्रयत्न किए गए, पर रोग बढ़ता गया और समस्त शरीर मे व्रण हो गए। राजकुमारो ने जब देखा कि उसे असाध्य रोग हो गया तो वे उसे गाडी पर चढा हिमालय के एक उत्संग पर्वत की गुहा मे ले गए और वही छोड आए। वहाँ रहने से थोडे ही दिनो मे राजकुमारी अमृता नीरोग हो गई और उसी गुहा मे रहने लगी। उस गुहा के समीप राजर्षि कोलि † का आश्रम था। राजर्षि कोलि उस आश्रम मे रहकर

तीर्ण तस्य प्रसेनजित् तस्य तक्षक तस्य वृहद्वल। असौ युधिष्ठिरस्य समकालीन भारते युद्धे अभिमन्युना हत। तस्य वृहद्रण, तस्य उरुक्रिय, तस्य वत्सवृद्ध, तस्य प्रतिव्योम, तस्य भानु, तस्य देवार्क, तस्य सहदेव, तस्य वीर, वृहदश्वः, तस्य भानुमान्, तस्य प्रतीकाश्व, तस्य सुप्रतीकाश्व, तस्य सुप्रतीक, तस्य सहदेव, तस्य सुनक्षत्र, तस्य पुष्कर, तस्य अंतरिक्ष, तस्य सुताप, तस्य अमित्रजित्, तस्य वृहद्राज, तस्य बर्हि, तस्य कृतंजय, तस्य रणंजय तस्य संजय तस्य शाक्य, तस्य शुद्धोद (शुद्धोदन ?)

* महावंश मे मान्धाता और उल्कामुख के बीच निम्नलिखित राजाओं के नाम मिलते है। वरमान्धाता, चरक, उपचरक, चैत्य, मुचल, महामुचल, मुचलिंद, सगर, सागरदेव, भरत, भगीरथ, रुचि, सुरुचि, प्रताप, महाप्रताप, प्रणाद, महाप्रणाद, सुदर्शन महासुदर्शन, नेरु, महानेरु, फिर ८४७०० राजा जिनका नाम नही दिया है, और उल्काह जिसे उल्कामुख का पिता लिखा है।

† किसी किसी का मत है कि राजर्षि कोलि पहले काशी के राजा थे। उन्हें कुष्ठ रोग हो गया था। वे काशी त्यागकर हिमालय मे रहते थे और

पच प्रकार अभिज्ञा तथा चतुर्विधि ध्यान लाभ कर चुके थे। एक दिन की बात है कि उस गुहा के पास मनुष्य की गध पाकर एक सिंह आया और अपने हाथो से उस पत्थर को जो गुहा के द्वार पर पर रक्खा था, हटाने लगा। राजर्षि कोलि ने जो वहाँ अपने आश्रम मे फिर रहे थे, सिह को देख उस पर बाण चलाया। बाण के लगने से सिह मर गया। तब वे उसके पास गए और उन्होने कुतूहलवश गुहा के द्वार के पत्थर को हटाया तो उसमे से एक सुदर कन्या निकलकर बाहर आई। राजर्षि उसके रूप लावण्य को देख उस पर आसक्त हो गए और उससे उसके विषय मे पूछ ताछ करने लगे। अमृता ने उनके पूछने पर अपना सारा समाचार कह सुनाया। जब कोलि जी को यह मालूम हुआ कि अमृता शाक्यवश की राजकन्या है तो उन्होने उससे गधर्व विवाह कर लिया। कोलि ऋषि और अमृता से उस आश्रम में बत्तीस पुत्र उत्पन्न हुए। ऋषि ने उन सब का सस्कार किया और वे सब बडे रूपवान्, जटा-मृगचर्मधारी, ब्रह्मचारी बन ऋषि-आश्रम मे रहने लगे। अमृता ने एक दिन अपने पुत्रों को बुलाकर कहा कि "तुम लोग कपिलवस्तु जाओ। वहाँ तुम्हारे मामा रहते है।" लडको ने माता पिता की आज्ञा ले उन्हे प्रणाम कर कपिल-वस्तु की राह ली और थोडे दिनो मे वे वहाँ जा पहुँचे। वहाँ शाक्यगण उन ब्रह्मचारियो को आकस्मिक नगर मे घुसते देख

कोलि नामक ओषधि खाने से चगे हो गए थे। उन्होंने अमृता को भी कुष्ट रोग से पीड़ित देख वही ओषधि खिलाई थी।

उनसे पूछने लगे कि "आप लोग कौन हैं और यहाँ कैसे आए हैं ?" ब्रह्मचारियों ने उत्तर दिया कि हम शाक्य-राजकुमारी अमृता और राजर्षि कोलि के पुत्र हैं और अपने पिता माता के आज्ञानुसार यहाँ निवास करने के लिये आए हैं। उनके आने की सूचना लोगों ने कपिलवस्तु के महाराज को दी और राजा ने सहर्ष उन ब्रह्मचारियो का स्वागत किया। उन ब्रह्मचारियों का कपिलवस्तु मे समावर्तन सस्कार किया गया और शाक्यवशी कन्याओ से विवाह कर उन्हे राज्य में रहने को जगह दी गई। ये लोग रोहणी नदी की पूर्व दिशा मे कोलि ग्राम बसाकर रहने लगे। इन लोगो के वशधर कोलिय कहलाने लगे और इन लोगो का शाक्यों से परस्पर विवाह-सबध होता रहा।

बहुत दिनों बाद देवदह के कोलि राजवश मे सुप्रभूत नामक राजा उत्पन्न हुआ। इसके सुप्रबुद्ध और दण्डपाणि नामक दो पुत्र और माया, महाप्रजावती * आदि पाँच कन्याएँ थीं। उस समय कपिलवस्तु मे शाक्यवशी महाराज सिंहहनु † राज्य करते थे।

* इन्हीं दोनों को महामाया और महाप्रजावती भी कहते हैं।

† महावंश मे उल्कामुख से सिंहहनु तक निम्नलिखित राजाओं के नाम मिलते है --निपुर, छदोमुख, सजय, वेश्मंता, चामि और सिहवाहन। सिहवाहन से ८२००० पीढ़ी बाद महाराज जयसेन हुए जिनको महावंश ने सिहहनु का पिता लिखा है। अवदानकल्पलता का मत है कि विरुढक से २५००० पीढ़ी बाद दशरथ हुए जिनके वंश में सिहहनु उत्पन्न हुए। महावस्तु मे उल्कामुख और सिंहहनु के बीच केवल हस्तिशीर्ष का नाम आया है।

थी। महाराज सिंहहनु के परलोक प्राप्त होने पर उनका बडा लडका शुद्धोदन कपिलवस्तु के राज-सिंहासन पर बैठा। शुद्धोदन ने देवदह के महाराज सुप्रभूत की दो कन्याओ माया और प्रजावती का पाणिग्रहण किया तथा अपनी बहिनो अमृता और प्रमृता का विवाह देवदह के राजकुमार सुप्रबुद्ध और दण्डपाणि से कर दिया। इन्ही शाक्याधिपति शुद्धोदन के घर महात्मा बुद्धदेव का जन्म हुआ।

(३) बुद्ध-जन्म

हसति सकललोकालोकसर्गाय भानु
परमममृतवृष्टौ पूर्णतामति चन्द्र ।
इपति जगति पूज्य जन्म गृह्णाति कश्चित्
विपुल कुशलसेतुर्लोकसन्तारणाय ॥

कपिलवस्तु का छोटा राज्य नैपाल की तराई मे अचिरावति * और रोहणी † नाम की दो पहाडी नदियो के बीच मे था। राज्य के उत्तर मे हिमालय पर्वत का पदस्थ जगल, पूर्व में गेहिणी नदी जो कोलियो के देवदह के राज्य को कपिलवस्तु से अलग करती थी, दक्षिण मे काशीकौशल और पश्चिम में कौशल का विशाल राज्य पडता था जिसकी राजधानी श्रावस्ती थी। राज्य का विस्तार उस समय मे कितना था, इसका तो कुछ ठीक पता नही चलता, पर चीनी यात्री शुयन च्वाग के समय मे कपिलवस्तु का विस्तार ४००० ली था। यह देश उस समय आबाद न था और प्राय विशेष भाग साखू के घने जगल से आच्छादित था। केवल कही कही छोटी छोटी बस्तियॉ थी जिन्हे

---

* इस नदी को अब रापती कहते है। यह हिमालय पहाड की तराई से बहराइच के उत्तर निकलकर बहराइच, गोंडा, बस्ती, गोरखपुर में से बहती हुई घाघरा में मिलती है। यह अपना कूल वा धार सदा बदला करती है।

† यह नदी हिमालय की तराई से निकलकर नैपाल में होकर बस्ती जिले मे से होती हुई गोरखपुर के पास रापती में गिरती है।

लोगो ने जगल काटकर आबाद किया था। पृथ्वी उर्वरा और निम्न थी। जगह जगह पर पहाडी नदियो की धार बदलने से झोल और ताल पड गए थे जिनमे कमल और कोई खिली रहती थी। देश की रहनेवाली थारू, लोध आदि जगली जातियाँ थी जिनको बहुत पीछे क्षत्रियो ने आकर निर्वासित किया। देश की प्रधान उपज धान, कोदो, गवेधुक्, सावाँ आदि थी। तालो मे तीनी, तुम्बा आदि जगली धान स्वच्छन्द उपजते थे जिन्हे खाकर वानप्रस्थ तपस्वीगण अपना जीवन निर्वाह करते हुए परमात्मा का भजन करते थे। जगलो में नाना प्रकार के फल, फूल, कद, मूल, शाक आदि प्रत्येक ऋतु मे उपजते थे। और शस्यपूर्ण वसुधरा वहाँ रहनेवाले पशु पक्षियो के लिये पुष्कल सामग्री लिए हुए सदा उपस्थित रहती थी। प्रजाओं की सम्पत्ति अन्न और गो थी और सब लोग दूध-पूत से सुखी थे।

कपिलवस्तु की राजधानी उसी नाम से प्रख्यात थी जो कपिलमुनि के आश्रम के पास बाणगङ्गा * के दाहिने किनारे पर उससे उत्तर पश्चिम की ओर बसी हुई थी। नगर के चारो ओर गूढ प्राकार था जिसके किनारे पनियाँसोत खाई थी। नगर के मध्य राज-परिवार के पृथक् पृथक् महल बने हुए थे। चौडी

---

* यह नैपाल की तराई से आई है और बस्ती में ककरही के पास बूढ़ी रापती से मिली है। इसका उल्लेख युयेनच्वाग ने किया है जिसे उसके अनुवादकों ने Arrow Stream लिखा है।

चौडी सडकों के किनारे अच्छे अच्छे मकान और अच्छे अच्छे हाट बाजार थे। नगर के बीच मे राजमहल था और नगर से बाहर जाने के लिये चार फाटक थे, जिन पर सदा रखवाले रहा करते थे।

इसी नगर मे ईसा के जन्म से ५५७ वर्ष पूर्व महाराज सिहहनु के ज्येष्ठ पुत्र महाराज शुद्धोदन राज्य करते थे। ये अत्य त चरित्रवान्, प्रजावत्सल, धर्मनिष्ठ और शात प्रकृति के थे। यद्यपि इनकी माया और प्रजावती दो रानियाँ थी, पर इनके कोई सतान न थी। आर्य्य ऋषियो का कथन है कि मनुष्य तीन ऋण लेकर ससार मे जन्म लेता है—ऋपिऋण, देवऋण और पितृऋण। विद्याध्यन कर वह ऋषियो के ऋण से मुक्त होता है और यज्ञ कर वह देव ऋण से छुटकारा पाता है। पर पितृऋण उस पर तब तक बना रहता है जब तक कि वह सतान का मुहॅ न देखे। इसी लिये यह जनश्रु ति चल पडी है "अपुत्रस्यगतिर्नास्ति स्वर्गे नैव च नैव च।" अर्थात् अपुत्र की स्वर्ग मे कभी गति नही है। महाराज शुद्धोदन इसी चिता से सदा व्याकुल रहते थे। समस्त धन-धान्य ऐश्वर्य्य सम्पन्न होने पर भी उन्हे पुत्र न होने से चारो ओर अँधेरा देख पड़ता था। महाराज शुद्धोदन की अवस्था चालीस के ऊपर हो चुकी थी और कोई सतान न हुई। इस दु ख से उनकी सारी प्रजा और समस्त शाक्यवश दु खी थे।

गावो हिरण्य बहुशस्य मालिनी
वसुधरा चित्रपद निकेतनम्।

सम्भावना बन्धुजनश्च सगमो
न पुत्रहीन वह्वोप्यरजयन् ॥

अनेक यज्ञादि करने पर महाराज शुद्धोदन की पैतालिस वर्ष की अवस्था मे वैशाख की पूर्णिमा के दिन उनकी पटरानी महामाया को गर्भ रहा*। प्रजावर्ग यह सुनकर कि महाराज की रानी गर्भवती है, बहुत प्रसन्न हुए और चारों ओर आनद मनाया जाने लगा। राजमहल मे इस आनद के उपलक्ष मे बडा उत्सव मनाया गया जिसमे शाक्यवश के सभी राजकुमार निमत्रित किए गए। बधाई बजी और सब ने महाराज शुद्धोदन के भाग्य की प्रशसा की।

जब से महामाया गर्भवती हुई, उसका मुखडा चाँद,सा चमकने लगा। महाराज शुद्धोदन का हृदयकमल जो बहुत दिनो से कुम्हलाया हुआ था, खिल गया। उनकी मुर्झाई हुई आशालता पनपने लगी। सब प्रजावर्ग पुत्र के उत्पन्न होने के समय की बडे कुतूहल से प्रतीक्षा करने लगे। धीरे धीरे पुत्र के प्रसव का काल भी आ पहुँचा। महामाया की यह प्रबल इच्छा थी कि उनका पुत्र उनके पिता के घर उत्पन्न हो। इसलिये जब प्रसव का काल अत्यत समीप आ गया तब उन्होने महाप्रजावती से इस बात की सलाह कर महाराज शुद्धो-

---

* ललितविस्तर का मत है कि गर्भाधान के थोड़े समय बाद ही महामाया ने स्वप्न देखा कि एक महात्मा जिसका वर्ण हिम रजत के समान स्वच्छ था और जिसकी प्रभा चद्र सूर्य्य के समान थी, उसके उदर मे प्रवेश कर गया। इस स्वप्न का फल ब्राह्मणों ने यह बतलाया था कि महामाया के गर्भ से जो लडका उत्पन्न होगा, वह चक्रवर्ती राजा वा बुद्ध होगा।

दन से अपने पिता के घर जाने की इच्छा प्रकट की। महाराज शुद्धोदन ने महामाया की इच्छा भंग करना अनुचित जान उनको महाप्रजावती के साथ देवदह जाने की आज्ञा दे दी। चटपट महामाया के देवदह जाने की तैयारी हुई और उसने प्रजावती के साथ देवदह के लिये प्रस्थान किया।

कपिलवस्तु और देवदह के बीच शाक्य राज्य की सीमा ही के भीतर महाराज शुद्धोदन ने एक उत्तम बाग बनवाया था। उसका नाम लुंबिनी * कानन था। वह उस समय एक उत्तम उद्यान था। बाग मे एक छोटा सा प्रासाद बना था जहाँ महाराज शुद्धोदन ग्रीष्म ऋतु मे कभी कभी विहार के लिये जाकर ठहरा करते थे। कपिलवस्तु से चलकर महारानी महामाया और महाप्रजावती वहीं जाकर ठहरी। कहते हैं कि महाराज शुद्धोदन भी प्रेमवश उनके साथ लुंबिनी तक पधारे थे।

लुंबिनी पहुँचने पर † महामाया को प्रसववेदना हुई। इस कारण वे देवदह को न जा सकी। माघ पूर्णिमा के दिन महामाया लुंबिनीकानन मे फिर रही थी कि अचानक उनके प्रसव का समय

---

* यह स्थान नेपाल राज्य मे भगवानपुर के पास है और अब इसे रोमिन देवी कहते हैं। यहा एक टूटा हुआ अशोक का स्तंभ भी है।

† कई ग्रंथो का मत है कि महामाया ने लुंबिनी कानन मे रात को चार स्वप्न देखे - पहले उसने देखा कि छ दांतोंवाला एक सुंदर सफेद हाथी उसके उदर में प्रवेश कर गया। फिर उसने देखा कि मैं आकाश मे उड़ रही हूं। तीसरी बार उसने अपने को एक ऊंचे पहाड़ से उतरते देखा और अंत को उसने देखा कि सहस्रों मनुष्य उसके आगे साष्टांग दंडवत कर रहे हैं।

आ गया। इस समय उनकी बहिन और छोटी पटरानी महाप्रजावती तथा अन्य कई दासियाँ उनके साथ थी। महामाया प्रसववेदना से असमर्थ हो एक शाल * वृक्ष के नीचे उसकी डाली पकडकर खडी हो गई और इसी समय भगवान् बुद्धदेव का जन्म हुआ।

महाराज शुद्धोदन ने पुत्रजन्म का समाचार सुनकर बडा उत्सव मनाया। अनेक प्रकार के दान ब्राह्मणों को दिए। उनके सब मनोरथ पूर्ण हो गए और हर्ष मे आकर उन्होंने अपने मुँह से राजकुमार का नाम सिद्धार्थ रक्खा। महात्मा बुद्धदेव के जन्म के दिन श्रावस्ती, राजगृह, कौशाबी और उज्जयिनी देशो के राजाओ के घर भी प्रसेनादित्य, विंबसार, उदयन और प्रद्योतकुमार के जन्म हुए। चारों ओर भारतवर्ष मे आनद की दु दुभी बजने लगी। चारो दिशाएँ जय जय शब्द से गूँज उठी। पाँचवे दिन कुल-पुरोहित विश्वामित्र ने कुमार को सुगधित जल से स्नान करा के उसका नामकरण सस्कार किया और उसका नाम गौतम रक्खा गया। कहते है कि मायादेवी पुत्र-जन्म के सातवें दिन प्रसूतिकागृह ही मे अपने प्रियपुत्र को महाप्रजावती की गोद मे दे परलोक सिधारी। महाराज शुद्धोदन ने महामाया के परलोकवास होने पर सिद्धार्थ कुमार के लालन-पालन के लिये आठ अगधात्री, आठ क्षीरधात्री, आठ मलधात्री और आठ क्रीडाधारी नियुक्त की और वे महाप्रजावती को बालक सहित कपिलवस्तु मे ले आए।

---

* किसी किसी ग्रथ में अशोक वृक्ष के नीचे लिखा है।

कपिलवस्तु मे आने पर बहुत कुछ उत्सव मनाया गया। बडे बडे ज्योतिषी आए और राजकुमार की जन्मकुडली बनाकर उसका फल कहने लगे। हिमालय पर्वत के पास महिर्षि असित* का आश्रम था। ये उस समय मे सबसे बडे ज्योतिर्विद मान जाते थे। जब असित ऋषि को मालूम हुआ कि कपिलवस्तु मे महाराज शुद्धोदन के घर एक राजकुमार का जन्म हुआ है, तब वे अपने भागिनेय नारद को अपने साथ ले कपिलवस्तु पहुँचे। महाराज शुद्धोदन ने महर्षि असित की उचित अभ्यर्थना की और उन्हे शिष्यो के साथ ठहराया। महर्षि असित ने राजा के भाग्य की प्रशसा कर कुमार को देखने को इच्छा प्रकट की। महाराज ने तुरत सिद्धार्थ कुमार को लाकर उनके चरणो मे रक्खा। असित ने बालक को बहुत कुछ आशीर्वाद दिया और उठा लिया। वे बालक के शरीर के लक्षणो और अनुव्यञ्जनो की परीक्षा करने लगे। उन्होंने बालक सिद्धार्थ के शरीर मे बत्तीस प्रकार के महापुरुष के लक्षण † और

---

* असित देवल को कालदेवल भी कहते थे। यह शुद्धोदन के पिता सिंहहनु के आमात्य थे। वृद्धावस्था में वाणप्रस्थाश्रम ग्रहण कर हिमगिरि के नीचे रहते थे।

† कतमैतद्द्वात्रिंशता—

तद्यथा--- उष्णीषशीर्षो (महाराज सर्वार्थसिद्ध कुमार) अनेन प्रथमेन महापुरुषलक्षणेन समन्वगत सर्वार्थसिद्ध कुमार अभिन्ना जनमयूर कलापाभिनीलेल्लितप्रदक्षिणावर्तकेश । समविपुलललाट । ऊर्णा (महाराज सर्वार्थसिद्धस्य) भ्रुवो मध्य जाता हिमरजतप्रकाशा। गोपक्ष्मनेत्राभिनीलनेत्र । सम चत्वारिंशद्दन्त । अविरलदन्त । शुक्लदन्त । ब्रह्मस्वरो (महाराज सर्वार्थ-

अस्सी अनुव्यंजन * देखकर अत्यंत विस्मित हो शुद्धोदन

सिद्ध कुमार)। स्वरसाग्रवान् प्रभूततनुजिह्व । सिंहहनु । सुसंवृतस्कन्ध । सप्तच्छदोत्सदतांस । सूक्ष्म सुवर्णवर्णच्छवि । स्थित । अनवनतप्रलम्बबाहु । सिंह पूर्वार्धकाय । न्यग्रोधपरिमण्डलो (महाराज सर्वार्थसिद्ध कुमारः) एकैक रोमकदूर्ध्वाग्रा हि प्रदक्षिणा । कोशोपगतवस्तिगुह्य । सुविवर्तितोरुः । ऐणेयमृगराजजंघ । दीर्घांगुलि । आयतपार्ष्णिपाद । मृदुतरुणहस्तपाद । चित्रांगुलिकहस्तपाद । दीर्घांगुलिधर पदतलयो (महाराज सर्वार्थसिद्धस्य कुमारस्य) चक्रे जाते चित्रेऽर्चिष्मती प्रभास्वरे सितसहस्रनेमिके सनाभिके । सुप्रतिष्ठित समपादो (महाराज सर्वार्थसिद्ध कुमार)। अनेन महाराज द्वात्रिंशन्महापुरुषलक्षणैन समन्वगत सर्वार्थसिद्ध कुमार ।

ललितविस्तर अ० ७

* कतमानि च तानि महाराजाशीत्यनुव्यजनानि---

तद्यथा- तुंगनखश्च (महाराज सर्वार्थसिद्ध कुमार]। ताम्रनखश्च, स्निग्धनखश्च, वृत्तांगुलिश्च, अनुपूर्वचित्रांगुलिश्च, गूढशिरश्च, गूढगुल्फश्च, घनसंधिश्च, अविषमसमपादश्चायतपादपार्ष्णिश्च (महाराज सर्वार्थसिद्ध कुमार]। स्निग्धपाणिलेखश्च, तुल्यपाणिलेखश्च, गभीरपाणिलेखश्च जिह्मपाणिलेखश्चानुपूर्वपाणिलेखश्च, बिंबोष्ठश्चानुच्चशब्दवचनश्च, मृदुतरुणताम्रजिह्वश्च, गजगर्जिताभिस्तनितमेघस्वरमधुरमंजुघोषश्च, परिपूर्णव्यंजनश्च, [महाराज सर्वार्थसिद्ध कुमार]। प्रलम्बबाहुश्च, शुचिगात्रवस्तुसम्पन्नश्च, मृदुगात्रश्च, विशालगात्रश्चादीनगात्रश्चानुपूर्वगात्रश्च सुसमाहितगात्रश्च सुविभक्तगात्रश्च, पृथुविपुलसुपरिपूर्णजानुमंडलश्च, वृत्तगात्रश्च, [महाराज सर्वार्थसिद्ध कुमार]। सुपरिमृष्टगात्रश्चाजिह्मगात्रश्चानुपूर्वगात्रश्च, गंभीरनाभिश्चाजिह्मनाभिश्चानुपूर्वनाभिश्च शुच्याचारश्च ऋषभवत्समन्तप्रासादिकश्च, परमसुविशुद्धवितिमिरालोकसमप्रभश्च, नागविलम्बितगतिश्च [महाराज सर्वार्थसिद्ध कुमार]। सिंहविक्रान्तगतिश्च ऋषभविक्रान्तगतिश्च हंसविक्रान्तगतिश्चाभिप्रदक्षिणावर्तगतिश्च, वृत्तकुक्षिश्चाजिह्मकुक्षिश्च, चापोदरश्च, व्यपगतच्छिद्रदोषनीलकाद्यशरीरश्च, वृत्तदंष्ट्रश्च, [महाराज सर्वार्थसिद्ध कुमार]। तीक्ष्णदन्तश्चानुपूर्वदंष्ट्रश्च तुंगनासश्च,

से कहा—"राजन्! आप बड़े भाग्यशाली और सुकृति हैं। आपने पूर्वजन्म मे बड़ी तपस्या की थी जो आपको भगवान् ने सर्व-लक्षण-सम्पन्न पुत्र दिया है। ऐसा पुत्र बड़े भाग्य से अनेक जन्मो के पुण्य के उदय से ही उत्पन्न होता है। इस बालक में महापुरुष के बत्तीस लक्षण और अस्सी अनुव्यंजन हैं। यह बालक यदि संसार मे गृहस्थाश्रम मे प्रवृत्त होगा तो चक्रवर्ती सम्राट् होगा, और यदि यह सन्यासाश्रम ग्रहण करेगा तो स्वयं मोक्ष लाभ कर अन्यों के लिये अपावृत मोक्षमार्ग का उद्घाटन करेगा और सम्यक् संबुद्ध होगा। यह कह महर्षि असित बिदा हो अपने आश्रम को सिधारे। चलते समय अपने प्रिय शिष्य और भागिनेय नारद से कहा—"नारद! मै तो वृद्ध हो चुका हूँ। सम्भव है कि मैं शीघ्र ही मर जाऊँ। पर यदि यह कुमार सन्यास ग्रहण करे तो तुम अवश्य इसके शिष्य होकर निर्वाण पद की जिज्ञासा करना।"

शुचिनयनश्च, विशालनयनश्च, नीलकुवलयदलसदृशनयनश्च, सहितभ्रूश्च, [महाराज सर्वार्थसिद्ध कुमार] चित्रभ्रूश्च संगभ्रूश्चानुपूर्वभ्रूश्चासितभ्रूश्च, पीनगंडश्चाविषमगंडश्चव्यपगतगंडदोषश्चानुपहतक्रुष्टश्च, सुविदितेंद्रियश्च, सुपरिपूर्णेंद्रियश्च [महाराज सर्वार्थसिद्ध कुमार]। संगतमुखललाटश्च, परिपूर्णोत्तमाङ्गश्चासितकेशश्च, सहितकेशश्चानुपूर्वकेशश्च, श्रीवत्सस्वस्तिकनन्द्यावर्तवर्द्धमानसंस्थानकेशश्च [महाराज सर्वार्थसिद्ध कुमार]। इमानि तानि [महाराज सर्वार्थसिद्धस्य कुमारस्य] अशीत्यनुव्यञ्जनानि। ललितविस्तर, अध्याय ७

(४) शिक्षा

मातृमान् पितृमान् आचार्य्यवान् पुरुषोवेद ।

यद्यपि सिद्धार्थ कुमार को उनकी माता महामाया सात दिन का छोडकर परलोक सिधारी थी, पर उनकी विमाता महाप्रजावती ने उनको बडे प्यार से पाला और वे कुमार को राजोचित शिक्षा देती रहीं। महाराज शुद्धोदन ने अपने कुल-पुरोहित उदयिन को बुलाकर बालक के नामकरण, निष्क्रमण आदि सब सस्कार कराए। कुमार अत्यय गभीर, शात और दयालु थे। कहते हैं कि एक बार कुमार शाक्यकुमारो के साथ कपिलवस्तु नगर के बाहर खेल रहे थे कि देवदत्त नामक एक शाक्य कुमार ने अपने बाण से लक्ष्य लगाकर एक पक्षी को मारा। बाण के लगते ही पक्षी पृथिवी पर गिर पडा। उसको पकडने के लिये सब लडके दौडे। पर सिद्धार्थ ने सब से पहले दौडकर उसे उठा लिया और उसके शरीर से बाण निकाल कर अपने पैर मे उसकी नोक को चुभोया। इस परीक्षा से उन्होंने पक्षी की पीड़ा का अनुभव कर उसे अपनी गोद मे उठा लिया और उसको तब तक अपनी आँखो से दूर न किया जब तक कि पक्षी बिलकुल नीरोग न हो गया।

जब कुमार की अवस्था आठ वर्ष की हुई तब शुद्धोदन ने शुभ मुहूर्त मे महर्षि कौशिक को बुलाकर उनका व्रतबन्ध सस्कार कराया। कुमार सिद्धार्थ को मृगचर्म, मेखला, दंड आदि देकर ब्रह्म-चारी बनाया गया। पिता ने "अपोशन, कर्म कुरु, दिवा या स्वाप्सी,

आचार्याधीनो वेदमधीष्व, क्रोधानृते वर्जय'' इत्यादि सदुपदेश * दे कर कुमार सिद्धार्थ को चदन की पट्टिका दे कौशिक विश्वामित्र के चरणो मे समर्पण किया। परम कारुणिक विश्वामित्र जी कुमार को "सत्य वद। धर्म चर। स्वाध्यायान्माप्रमद। आचार्य्याय प्रिय धनमाहृत्य प्रजातन्तु माव्यवच्छेत्सी। सत्यान्न प्रमादितव्य। धर्मान्न प्रमादितव्य। कुशलान्न प्रमादितव्य। भूत्यै न प्रमादितव्य। स्वाध्याय प्रवचनाभ्या न प्रमादितव्य। देवपितृकार्य्याभ्या न प्रमादितव्य।" का उपदेश दे सावित्री मत्र का उपदेश किया और फिर कुमार को अपने साथ ले वे अपने आश्रम को सिधारे।

कुमार सिद्धार्थ विश्वामित्र जी के साथ उनके आश्रम पर आए। प्रथम विश्वामित्र जी ने उन्हे वर्ण-ज्ञान कराया और शिक्षा के नियम के अनुसार प्रत्येक वर्ण के आस्य, प्रयत्न इत्यादि बताकर वर्णो का स्पष्ट उच्चारण करना सिखलाया। फिर चदन की पाटी पर ब्राह्मी, †

---

* वर्जयेन्मधुमास च गंधमाल्यं रसान्स्त्रिय ।
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिना चैव हिसनम् ।
अभ्यगमंजनचाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारण ।
कामं क्रोधं च लोभं च नर्तन गीतवादनम् ।
द्यूत च जनवाद च परीवाद तथानृतम् ।
स्त्रीणा च प्रेक्षणालंभमुपघात परस्परम् ।
एक शयीत सर्वत्र नरेत स्कन्दयेत्क्वचित् ।
कामाद्धि स्कन्दयन्तो हिनस्ति व्रतमात्मन [मनु]

† ब्राह्मी, खरोष्ट्री, पुष्करसारी, अगलिपिं, वगलिपि, मगधलिपिं, मागल्यलिपि, मनुष्यलिपि, प्रगुलीयलिपि, शकारिलिपिं, ब्रह्मवल्लीलिपि,

खरोष्ट्री आदि लिपियो का लिखना सिखाकर लिपिबोध कराया। फिर क्रमश कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छद, ज्योतिष्, वेदो के षडग पढाकर ऋक, यजुष्, साम और अथर्व वेद उनके ब्राह्मण और रहस्य सहित पढाए। सिद्धार्थ कुमार ने चारों वेद, जिन्हें अन्य विद्यार्थी ४८ वर्ष मे भी कठिनता से समाप्त करते थे, अल्पकाल ही मे बडी योग्यता से पढ लिए। आचर्य्य विश्वामित्र ने अपने इस योग्य शिष्य की प्रखर बुद्धि से अति विस्मित हो उसे दर्शनशास्त्र की शिक्षा देनी प्ररभ की और वैशेषिक, न्याय, साख्य, योग, मीमासा, वेदात के अतिरिक्त, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास, पुराण, बार्हस्पत्य, निगम इत्यादि विषयो की शिक्षा दी *।

द्राविडलिपिं, किनारिलिपिं, दक्षिणलिपि उग्रलिपि, सख्यालिपिं, अनुलो मलिपि, अर्द्धधनुलिपिं, दरदलिपि, खास्यलिपि, चीनलिपि, हूणलिपिं, मध्याक्षरविस्तरलिपि, पुष्पलिपि, देवलिपि, नागलिपि, यक्षलिपि, गधर्व लिपि, किन्नरलिपि, महोरगलिपिं, असुरलिपि, गरुडलिपि, मृगचक्रलिपि, चक्रलिपि, वायुमरुल्लिलपि भौमदेवलिपिं, अतरिक्षदेवलिपि, उत्तरकुरुद्वीप लिपि, अपरगौडानिलिपि, पूर्वविदेहलिपिं, उत्क्षेपलिपि, निक्षेपलिपिं, विक्षेपलिपि, प्रक्षेपलिपिं, सागरलिपि, वज्रलिपि, लेखप्रतिलेखलिपि, अनु द्रुतलिपि, शास्त्रावर्तलिपि, गणनावर्तलिपि, उत्क्षेपावर्तलिपि, निक्षेपा-वर्तलिपि, पादलिखितलिपि, द्विरुत्तरपदसधिलिपि, यावद्दशोत्तरपदसंधि लिपि, अध्याहारिणिलिपिं, सर्वरुतसग्रहणीलिपिं, विद्यानुलोमलिपि, विमि-श्रितलिपि, ऋषितपस्तप्ता च धरणीप्रेक्षणीलिपि। सर्वौषधि निष्यन्द सर्वसारसग्रहणीं, सर्वभूतरुतग्रहणीं। ललित०

* हीनयान का मत है कि भगवान बुद्धदेव को सब ज्ञान और विद्या बिना पढाए और सिखाए आ गई थीं।

सिद्धार्थकुमार शिक्षा-ग्रहण के समय अन्य विद्यार्थियों की तरह शुष्क विवाद मे कभी प्रवृत्त नहीं होते थे । वे 'श्रोतव्य, मंतव्य निदिध्यसितव्य' के उपदेश के अनुसार गुरु के प्रत्येक पाठ को एकात मे बैठकर मनन करते थे और मनन करने पर उनका निदि-ध्यासन करते थे। वे समझने थे कि जिन विशालहृदय महर्षियो का यह उपदेश है कि 'यान्यस्माक सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि।' वे कभी किसी को लकीर का फकीर बनने के लिये बाध्य नही कर सकते थे। उन्होंने साख्य के 'अथ त्रिविधिदु खादत्यतनि-वृत्तिरत्यात पुरुषार्थ ' के उपदेश को अपने अत करण मे धारण कर प्रतिज्ञा की कि यदि हो सका तो मै इन दु खो से, जिनसे समस्त जगत् के प्राणी पीडित हो रहे हैं, अत्यत निवृत्त होने का मार्ग ढूँढूँगा, और यदि ऐसा मार्ग मुझे मिल गया तो मै उसे अकेले ही जानकर न रह जाऊँगा, किंतु उस अमूल्य बात को सारी सृष्टि के सामने प्रकट कर दूँगा। इस प्रकार अर्थात् विद्या को मनन करते हुए सिद्धार्थ-कुमार ने ऋषि आश्रम मे अपना ब्रह्मचर्य्याश्रम बिताया।

स ब्रह्मचारी गुरुगेहवासी,
तत्कार्य्योकारी विहितान्नभोजी,
साय प्रभात च हुताशसेवी,
व्रतेम वेदा च समध्यगीष्ट ।

---

(५) समावर्तन और विवाह

विद्याविवादरहिता, धृतशीलशिक्षा,
सत्यव्रता रहितमानमलापहारा ।
ससारदु खदलनेन वभूषिता ये ।
धन्या नरा विहितकर्मपरोपकारा ।

सिद्धार्थ पचीस वर्ष के हो गए। उनका विद्याध्ययनकाल समाप्त हो गया। पहले भी शास्त्र के नियमानुसार वे विद्यास्नातक हो सकते थे, पर उन्होने अपना व्रतकाल वेदार्थ के चितन और मनन मे गुरुकुल मे ही बिताया—

क्रियाद्यनुष्ठानफलोर्थबोध
स नोपजायेत विना विचारम् ।
अधीत्य वेदानथ तद्विचारम्
चकार दुर्बोधतरो हि वेद ।

महाराज शुद्धोदन बडे गाजे बाजे के साथ विश्वामित्र जी के आश्रम पर गए और सिद्धार्थ कुमार का समावर्तन सस्कार करा उन्हे गुरुदक्षिणा मे बहुत सा धन, गो, हाथी, घोडे आदि देकर बडे आनद से कपिलवस्तु ले आए। शाक्य प्रजा और राजरिवार कुमार को रूपविद्यासपन्न देख बडे आनदित हुए और राजमार्ग अनेक प्रकार के ध्वजा-तोरण आदि से सुसज्जित किया गया। स्त्रियाॅ अटारियों से उन पर पुष्प और खीलों की वृष्टि करने लगी। इस प्रकार बडे गाजे

बाजे से कुमार ने नगर मे प्रवेश किया । कुमार के रहने के लिये राजा ने एक उत्तम आराम और प्रासाद नियत कर दिया ।

कुमार एकातवास के बडे ही प्रेमी थे। वे अपने आराम मे सदा एकात मे त्रिविध दु खों की निवृत्ति के उपाय की खोज में लगे रहते थे। वे बहुत कम आराम के बाहर निकाल करते थे। उस समय के राजा आजकल के राजाओ की तरह अपना सारा जीवन काम-भोग या आमोद-प्रमोद में नहीं व्यतीत करते थे। स्वय महाराज जनक कृषिकर्म करते थे। महाराज शुद्धोदन के यहाँ भी खेती होती थी। एक दिन की बात है कि सिद्धार्थ नगर के बाहर खेत देखने गए और वहाँ खेत के पास ही जामुन के एक पेड के नीचे * एकात देख ध्यान में मग्न हो बैठे। इस प्रकार चलते फिरते उठते बैठते वे सदा इसी चिंता मे लगे रहते थे कि किस प्रकार मनुष्य त्रिविध तापों से छुटकारा प्राप्त कर सकता है। महात्मा कपिल का वाक्य 'अथ त्रिविधिदु खादत्यन्तनिवृत्तिरत्यतपुरुषार्थ' उनके ध्यान मे सदा अकित रहता था। उनका चित्त सदा सासारिक सुख-भोगों से उदासीन रहता था और

---

* कहते हैं कि इस जामुन के पेड के नीचे कुमार ने चतुर्विध ध्यान की सिद्धि प्राप्त की थी जिसे देख पाच देवताओं ने कुतूहलवश निम्नलिखित गाथाए गाई थीं,---

लोकक्लेशाग्निसतप्ते प्रादुर्भूतोह्ययह्रद, ।
अयं तं प्राप्यते धर्म यज्जगन्मोचयिष्यति ॥ १ ॥
अज्ञानतिमिरे लोके प्रादुर्भूत प्रदीपक ।
अय त प्राप्यते धर्म यज्जगत्तारयिष्यति ॥ २ ॥
शोकसागरकातारे यानश्रेष्ठमुपस्थितम् ।
अयं त प्राप्यते धर्म यज्जगत्तारयिष्यति ॥ ३ ॥

यद्यपि अन्य शाक्य कुमार समाज * योजनाओं में बडी उत्कंठा दिखलाते और उसके लिये अनेक आयोजन करते और सम्मिलित होते थे, पर सिद्धार्थ कुमार बार बार प्रार्थना किए जाने परभी उनमे कभी नही जाते थे। उनका ध्यान सदा इसी लक्ष्य पर रहता था कि मैं कैसे ससार के दु ख का निदान और उसे निवृत्त करने का उपाय ढूँढूँ। वे अपनी इसी धुन मे दिन रात लगे रहते, न उन्हे खाने की सुधि थी न सोने की। वे नित्य एकात मे बैठे ससार के दु ख का निदान सोचा करते थे। वे सुख दु ख की कुछ परवाह नही करते थे। भर्तृहरि ने ठीक कहा है—

क्वचिदभूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्य्यो क शयनम्,
क्वचिच्छाकाहारी क्वचिदपि च मासौदनरुचि ।
क्वचित्कथाधारी क्वचिदपि च पाटांबरधर ,
मनस्वी काय्यार्थी गणयति च दु ख न च सुखम् ।

महाराज शुद्धोदन ने जब कुमार की यह दशा देखी तो उन्हें चिता हुई कि ऐसा न हो कि कुमार इस वैराग्य की अवस्था में घर-

---

क्लेशबन्धनबद्धाना प्रादुर्भूत प्रमोचक ।
अय त प्राप्यते धर्म यज्जगन्मोचयिष्यति ॥ ४ ॥
जराव्याधिकिलिष्टाना प्रादुर्भूतोभिषग्वर ।
अयं त प्राप्यते धर्मं जतिमृत्युप्रमोचकम् ॥ ५ ॥

* प्राचीन काल में बड़े बड़े जलसे जिनमें लोग मलयुद्ध करते थे, या हाथी भैंसे आदि की लड़ाई होती थी अथवा कृत्रिम युद्ध [Sham Fight] किया जाता था, समाज कहलाते थे। उनमें दर्शकों के के लिये उत्तम मच [Gallary] बनते थे और उनके खान पान आमोद-प्रमोद की सामग्री एकत्र की जाती थी।

बार छोडकर जगल की राह ले। उनकी यह प्रबल इच्छा थी कि कुमार क्षत्रियोचित मार्ग का अवलबन करे और वीर योद्धा बनें। पर जब उन्होंने यह देखा कि कुमार क्षात्रधर्म की उपेक्षा करके ब्राह्मधर्म की ओर झुक पडे और दिन रात ब्रह्मविद्या के चिंतन मे निमग्न रहते हैं, तो उन्हे चिंता ने और घेर लिया और उनकी आँखो के सामने अधकार छा गया। असित की बातें उन्हे याद आई। वे बहुत घबराए और उन्होने कुमार को विवाह-बधन मे बाँधना निश्चित किया।

जब सिद्धार्थ कुमार को यह ज्ञात हुआ कि मेरे समाजों मे सम्मिलित न होने और एकात-सेवन से पिता को क्षोभ हो गया है और वे समझते हैं कि मेरी शस्त्रविद्या विस्मृत हो गई है, तब एक दिन उन्होने समाज मे जाकर पिता का क्षोभ दूर करने का सकल्प किया। एक दिन जब समाज की आयोजना की गई और समस्त शाक्य धनुर्धर एकत्र हुए, तब सिद्धार्थ समाज के आँगन मे उतरे और उन्होंने अपने शस्त्र-कौशल से समस्त धनुर्धरो और योद्धाओ के छक्के छुड़ा दिए। शुद्धोदन का क्षोभ जाता रहा और उन्हें निश्चय हो गया कि सिद्धार्थ न केवल अध्यात्मविद्या ही मे कुशल हैं, अपितु वे धनुर्वेद के भी अद्वितीय पडित और महारथी है।

अपने पुत्र को इस प्रकार अध्यात्म-विद्या और धनुर्विद्या में कुशल देख महाराज शुद्धोदन ने एक दिन अपने पुरोहित को सम्मान-पूर्वक बुलाकर उनसे निवेदन किया कि सिद्धार्थ कुमार अब विवाह के योग्य हुए हैं। आप उनके योग्य कोई बधू कपिलवस्तु, देवदह

आदि राज्यों मे ढूँढिए। पुरोहित राजाज्ञा पाकर अपने घर गए और योग्य बधू की टोह मे लगे। बहुत छान बीन करने पर उनको देवदह के महाराज दडपाणि की कन्या गोपा * सर्वगुणसपन्न देख पडी और उसीके साथ सिद्धार्थ कुमार का परिणय करने की उन्होने दडपाणि से बात चीत की। दडपाणि सिद्धार्थ कुमार की माता के भाई थे औइ सिद्धार्थ को अच्छी तरह जानते थे। पुरोहित की बात भी भली लगी और उन्होने अपने पुरोहित अर्जुन नामक पडित को कुमार की परीक्षा के लिये भेजा। अर्जुन कपिलवस्तु आए और उन्होने वेद वेदाग दर्शन आदि मे सिद्धार्थ कुमार की परीक्षा ली। कुमार के उत्तर प्रत्युत्तर सुन महाविद्वान् अर्जुन पडित को अत्यत तोष हुआ और विवाह करना निश्चय हो गया। शुभ मुहूर्त में कुमार का विवाह देवदह की राजकुमारी गोपा के साथ बडे गाजे बाजे के साथ किया गया। दडपाणि ने बडा आदर सत्कार किया और अनेक घोडे, हाथी और धनसपत्ति विवाह की दक्षिणा में दी। वर और बधू विवाह हो जाने पर अनेक दास और दासियों के साथ कपिलवस्तु आए और आनदपूर्वक रहने लगे।

---

* यशोधरा, कृष्णा, उत्पलवर्णा भी इसके नाम थे।

(६) उद्बोधन

वनेपि दोषा प्रभवति रागिणाम्
गृहेपि पचेंद्रियनिग्रहस्तप ।
निवृत्तित कर्मणि य प्रवर्तते
निवृत्तरागस्य गृहस्तपोवनम् ।

शाक्य कुमार का विवाह हो गया, बधू आई, पर फिर भी उनका एकातवास न गया। वे नित्य अपने आराम में बैठे हुए जन्म-मरण के प्रश्नों पर विचार किया करते थे। वे अपने मन मे विचारते थे कि प्राणियों में अहभाव क्यों उत्पन्न होता है ? क्या चेतना शरीर से पृथक् किसी परोक्ष द्रव्य का गुण है जिसे लोग आत्मा कहते हैं ? यह आत्मा शरीर से पृथक् वस्तु है वा शरीर ही का कोई अश विशेष है ? इसकी स्थिति शरीर से पृथक् है अथवा यह शरीर के साथ ही पचत्व को प्राप्त हो जाती है ? यदि यह शरीर से पृथक् है तो यह कहाँ से आती है और शरीर का नाश होने पर कहाँ जाती है ? इसे क्यो दु ख वा सुख होता है ? क्या कोई ऐसी अवस्था वा देश भी है जिसमे दु ख का अभाव हो ? यदि दु ख न हो तो सुख का अनुभव कैसे हो सकता है ? सुख के अभाव में दु ख का ज्ञान कहाँ ? यह दोनो सापेक्ष हैं वा निरपेक्ष ? यदि निरपेक्ष हैं तो द्वद्व कैसा ? यदि सापेक्ष हैं तो इनमे से एक का अत्यताभाव किसी देश, काल वा अवस्था में कैसे सभव हो सकता है ? क्या ये वास्तव मे कोई निश्चित वस्तुएँ हैं ? यदि निश्चित है तो

एक ही वस्तु क्यों एक मनुष्य को सुखकर और दूसरे को दु ख-दायक प्रतीत होती है ? यदि निश्चित नही तो ये क्या हैं ? इनका भान क्यों होता है ? इत्यादि। इस प्रकार के प्रश्न उनके मन मे उत्पन्न होते थे, पर उनका कोई निश्चित समाधान वे नही कर पाते थे। वे दिन रात एकात में अपने इन विचारों में मग्न रहते थे। न उन्हे आमोद से कुछ काम था न प्रमोद से। उनके चित्त में विराग था और सच्चा विराग था।

जब महाराज शुद्धोदन ने देखा कि राजकुमार का चित्त दिन दिन उदासीन होता जाता है, तब उन्होंने राजकुमार के लिए एक ऐसा प्रासाद बनवाया जिस में षड्ऋतु की छटा नित्य उपस्थित रहती थी और जिसे कामोद्दीपन की समस्त सामग्रियो से सुसज्जित किया था। अनेक रूप-यौवन-सपन्न और कामक्रीडा-कुशल दास दासियाँ वहाँ कुमार के चित्त का आकर्षण करने के लिए नियत की गई। नाना प्रकार के कामोद्दीपक अन्न-पान और भक्ष्य-भोज्य का प्रबध वहाँ कर दिया गया और कुमार को उस प्रासाद मे रहने के लिए आज्ञा दी गई। कुमार सिद्धार्थ उस प्रासाद मे गए और रहने लगे। उस प्रासाद के सुख और वहाँ के दास दासी किसी मे यह शक्ति न थी कि उनके चित्त को सासारिक सुखो की ओर खीच सके और कुमार को चितित रहने से रोक सके। कुमार वहाँ भी एकात मे बैठे अपने चित्त में यही सोचा करते थे कि ससार दु ख का सागर है। प्राणियो का जीवन क्षण-भगुर है। सब पदार्थ अपनी अवस्था बदला करते हैं। मानव-जीवन जल-बुदबुद के समान है।

गर्मी के बाद जाडा और जाडे के बाद गर्मी आती है। द्वन्द्वचक्र सदा चला करता है। जो फूल आज पेडो पर है, वह कल पृथिवी पर गिरेगा। कोई पदार्थ नित्य नही दिखाई पडता। फिर क्यो लोग अपने सारे जीवन भर "मरा तेरा" किया करते है? हम पैदा होते समय क्या साथ लाए थे? फिर यह अपने और पराए का भाव कहाँ से आया? जब ससार दु खमय है तब लोग इसे छोड क्यो नही देते? छोड दे तो कहाँ जायँ? जगलो मे भी भूख-प्यास और आशा-तृष्णा साथ न छोडेगी। क्या इनसे बचने का कोई उपाय हो सकता है? इत्यादि।

इस प्रकार इस प्रासाद मे रहते सिद्धार्थ को कई वर्ष बीत गए। जब कुमार अट्ठाईस वर्ष के हुए, तब महाराज शुद्धोदन को यह सुन अत्यत प्रसन्नता हुई कि गोपा गर्भवती है। उनकी मुरझाई हुई आशा-लता फिर पनपन लगी और उन्हे दृढ विश्वास हो गया कि सभव है कि मेरे इस प्रयत्न से सिद्धार्थ कुमार का चित्त वैराग्य से फिर जाय। गोपा को गर्भवती देख कपिलवस्तु मे बड़ा आनद मनाया गया और सब शाक्य आनद-समाज मे सम्मिलित हुए, पर कुमार अपनी धुन मे ही लगे रहे। उन्हें ससार के बधन से स्वय छुटकारा पाने और ससार को छुडाने की चिता लगी थी। वे एकात मे बैठे हुए ससार के दु ख का निदान सोचा करते थे।

एक दिन की बात है कि कुमार ने नगर से बाहर निकलने और आरामो मे जाकर जी बहलाने की इच्छा प्रकट की। यह सुन महाराज शुद्धोदन ने सारे नगर मे ढिंढ़ोरा पिटवा दिया कि

राजमार्ग पर कोई बुड्ढा या रोगी इत्यादि न दिखाई पडे और चारों ओर के स्थान ध्वजा तोरणादि से सुसज्जित किए जायँ। नगर बात की बात में सब प्रकार सुसज्जित किया गया। कुमार के लिये उत्तम रथ प्रासाद के द्वार पर लाया गया। कुमार ने सैर करने की तैयारी की और वे प्रासाद से उतरे और रथ पर चढे। सारथी ने घोडे की बाग पकडी और उसको चाबुक लगाई। रथ राजमार्ग से होता हुआ आगे बढा। जिस ओर नगर मे कुमार जाते थे, चारों ओर ध्वजा, पताका, तोरण आदि से सुसज्जित प्रासादो से स्त्रियाँ पुष्प-वृष्टि करती थी। रथ नगर के पूर्व द्वार से निकला। पर दैव-योग से कुमार को सडक पर एक वृद्ध पुरुष दिखाई पडा। बुढापे के कारण उसकी पीठ झुक गई थी और सारे शरीर पर झुर्रियाँ पडी थी। उसकी आँखो की ज्योति धीमी हो गई थी, कानों से सुनाई नही पडता था। सब इद्रियो ने जवाब दे दिया था। वह लाठी टेकता हुआ सडक पर जा रहा था। सारथी उसे मार्ग से हटाने के लिये बहुत चिल्लाया, पर बहरा बूड्ढा मार्ग से न हटा और अपनी लाठी टेकता हुआ सडक के बीच से चलता रहा। सारथी ने विवश हो घोड़े की लगाम खींची और रथ रोका। अचानक कुमार की दृष्टि उस जराग्रस्त बुड्ढे पर जा पडी।

साधारण मनुष्यो और महात्माओं के जीवन मे यही अतर है कि साधारण मनुष्य अपने जीवन में सासारिक घटनाओ को देखता हुआ उनसे उपदेश ग्रहण नहीं करता। नित्य तरह तरह की घटनाएँ हुआ करती हैं, पर वह उन पर कुछ ध्यान नही देता। पर महात्मा

लोग अपने जीवन मे समस्त सघटित घटनाओ को बडे कुतूहल से देखते है, उनके कारण का अन्वेषण करते हैं और उनसे शिक्षा ग्रहण करते हैं। वे उनसे स्वय लाभ उठाते हैं और अन्यो को लाभ उठाने का उपदेश करते हैं। वे साक्षात् कृतधर्मा होते हैं और हानि-कारक घटनाओं से बचने का उपाय ढूँढते हैं। वे स्वय बचते हैं और औरों को बचाते है। सब मनुष्य अपने जीवन की घटनाओं से लाभ नही उठा सकते। उनके लिये ऐसे साक्षात्कृतधर्मा महर्षियों का उपदेश ही परम कल्याणकारी होता है। वैदिक काल के मह-र्षियो के उपदेश के विषय मे महर्षि यास्काचार्य्य लिखते हैं—

'साक्षात्कृतधर्माणो ह ऋषयो बभूवुस्तेऽवेरभ्योऽसाक्षात्कृत-धर्मेभ्य उपदेशेन मन्त्रान्सप्रादु '

वैदिक ऋषि साक्षात् कृतधर्मा थे। उन लोगो ने अन्यो के लिये जो साक्षात् कृतधर्मा नही थे, मन्त्रो द्वारा उपदेश किया।

सिद्धार्थ कुमार इसी कोटि के महात्मा थे और उनके जीवन मे यह पहला दृश्य था जिसने उन्हे प्रभावित किया। वे बहुत देर तक ठकमारे से बैठे रहे और उनके चित्त मे नाना प्रकार की कल्प-नाएँ उत्पन्न हुई। वे सोचने लगे कि यह बुड्ढा क्यों झुक गया है। इसकी आँखो से क्यो स्पष्ट दिखाई नही देता ? इसके कान तो हैं, पर यह इतना चिल्लाने से सुनता क्यो नही ? इसे क्या हो गया ? किस कारण यह पुरुष इस अवस्था को प्राप्त हुआ ? और अत को जब उन्हें कुछ स्पष्ट कारण का पता न चला, तब वे अपने सारथी से जिसका नाम छदक था, बोले—

किं सारथे पुरुष दुर्बल अल्पस्थाम
उच्छुष्कमासरुधिरत्वचस्नायुनद्ध ।
श्वेतशिरो विरलदत कृशागरूप
आलम्व्यदडव्रजतेह् सुखस्खलन्त ॥

हे सारथी, यह् पुरुष हाथ मे लाठी लेकर टेकता हुआ क्यो लडखडाता हुआ चलता है ? यह् क्यो दुर्बल और स्थैर्य्यविहीन है ? इसका मास और रक्त क्यो सूख गया है ? क्यों यह इतना दुर्बल हो गया है कि इसके शरीर की नसें देख पडती है ? इसके सिर के बाल क्यो श्वेत हो गए ? इसके दॉत क्यो टूट गए ? इसकी क्यों ऐसी अवस्था हो गई है ?

कुमार का यह वचन सुन उनका सारथी बोला—

एसो हि देव पुरुषो जरयाभिभूत
क्षीणेद्रियो सुदु खितो बलावर्य्यो हीनो ।
बधूजनेनपरिभूत अनाथभूत
कार्यासमर्थ अपिवृद्ध वने न दारु ॥

हे देव, इस पुरुष को जरा वा बुढापे ने घेर लिया है। इसकी इद्रियॉ क्षीण हो गई हैं। यह दु खित और बल-वीर्य्यहीन है। ऐसा देख इसे इसके बधुजनो ने त्याग दिया है। यह अनाथ है। जैसे जगल का जीर्ण काठ निकम्मा हो जाता है, वैसे ही यह भी निकम्मा हो गया है।

सिद्धार्थ कुमार, जिन्होने आज तक किसी जराग्रस्त पुरुष को नही देखा था और न जिनको यह ज्ञान ही था कि जरा क्या है,

सारथी का यह उत्तर सुन अत्यंत विस्मित हो विचार करने लगे कि जरा क्या वस्तु है ? क्या जरा किसी जाति विशेष को ही पीडित करती है वा सर्वसाधारण पर आक्रमण करती है ? और जब वे अपने इन कुतूहलों का संतोपजनक समाधान न कर सके, तब उन्होने फिर सारथी से पूछा—

कुलधर्म एष आयमस्य हि त्व भणाहि
अथवापि सर्वजगतोऽय इय व्यवस्था ।
शीघ्र भणाहि वचन यथभूतमेतत्
श्रुत्वा तथार्थमिह योनिं सचिंतयित्वा ॥

सारथी ! यह बतला कि क्या यह इसका कुलधर्म है अथवा समस्त ससार की यही व्यवस्था है ? मुझे इसका शीघ्र उत्तर दे कि क्या जिस कुल मे यह पुरुष उत्पन्न हुआ है, उसी कुल के लोग जरा-ग्रस्त होते हैं या ससार के सब प्राणी जराग्रस्त होगे ? तेरा उत्तर सुनकर मै इसका निदान सोचूँगा ।

कुमार का यह प्रश्न सुन सारथी ने कुमार से कहा—

नेतस्य देव कुलधर्मो न राष्ट्रधर्म
सर्वे जगस्य जर यौवन धर्षयाति ।
तुभ्यंपि मातृपितृबाधवज्ञातिसघो
जरया अमुक्त नहि अन्यगतिर्जनस्य ॥

देव ! जराग्रस्त होना न इस मनुष्य का कुलधर्म है और न जरा राष्ट्रधर्म है । समस्त जगत् के यौवन को जरा ध्वस्त करती है । यह न आपको छोडेगी, न आपके माता पिता को छोडेगी और न इससे

आपके जाति-बधु बच सकेंगे। सब प्राणियों को जरा परास्त करेगी। सब एक न एक दिन जराग्रस्त होंगे। जरा से कोई बच नही सकता।

सारथी की यह बात सुनकर कुमार के मन में बडी ग्लानि उत्पन्न हुई। उनका अत करण वैराग्य से पूर्ण हो गया। उन्होने मनुष्यो की इस अवस्था पर विचार किया कि लोग जानते हैं कि हम एक दिन जराग्रस्त होंगे, पर फिर भी वे अपने यौवन पर इतराए फिरते हैं। सिद्धार्थ कुमार ने सारथी से कहा—

धिक् सारथे अबुधबालजनस्य बुद्धिं
यद्यौवनेन मदमत्त जरा न पश्यी।
आवर्तयास्विह रथ पुनरह प्रवेक्ष्ये
कि मह्यक्रीडरतिभिर्जरयाश्रितस्य॥

सारथी! धिक्कार है उस अबोध मनुष्य की बुद्धि को, जो जवानी के मद में इतराया फिरता है और जरा की ओर ध्यान नहीं देता। रथ घुमाओ, मै इस मनुष्य को फिर ध्यानपूर्वक देखूँगा। जब मैं भी जराग्रस्त होऊँगा, तब मुझे क्रीडा में रत होने से क्या काम?

सारथी ने कुमार की आज्ञा पा रथ घुमाया। कुमार रथ से उतर पडे और बडी देर तक ध्यानपूर्वक उस बुड्ढे को देखते रहे। फिर रथ पर सवार होकर प्रासाद को गए।

वे रात दिन यही सोचते रहे कि जब मनुष्य को बुढापा अवश्य घेरेगा, तब बड़े शोक की बात है कि वह यौवनावस्था के मद मे मत्त

हा आनेवाली जरा को दूर करने की चेष्टा नहीं करता। क्या कोई उपाय है कि जरा से मनुष्य बच सके ? क्या वैद्यो के पास कोई जरा नामक महाव्याधि का औषध है ? यदि नही तो उन लोगो ने क्यो इसके हटाने की आज तक चिता नही की ? क्या यह असाध्य रोग है ? पर यदि यह रोग है तो किसी एक को होना चाहिए, यह तो ससार के सभी जड चेतन पर आक्रमण करता है। क्या यह अवस्था है ? क्या इस अवस्था से बचने का कोई उपाय है वा हो सकता है ? इस प्रकार की बातों को कुमार कई दिनो तक बार बार सोचते रहे।

कुछ दिनो के बाद एक दिन कुमार ने फिर नगर के बाहर जाने का सकल्प किया। महाराज शुद्धोदन ने फिर नगर मे घोषणा करा दी और कुमार के लिये सारथी रथ ले प्रासाद के द्वार पर आ उपस्थित हुआ। सिद्धार्थ कुमार ने प्रासाद से निकल और रथ पर बैठ सारथी से रथ हाँकने को कहा। कुमार नगर की शोभा देखते हुऐ रथ पर जा रहे थे। रथ नगर के दक्षिण द्वार से निकला। पर दैवयोग से नगर के बाहर कोई पुरुष असाध्य रोग से ग्रस्त था। रोगी बहुत दुर्बल हो गया था और उसके कुटुबियो ने उसे घर के बाहर सडक के पास धूप मे लेटा दिया था। उसकी असाध्य अवस्था देख उसके घरवाले उसके पास बैठे रोते थे। कुमार का रथ ज्यो ही उस स्थान पर पहुँचा, दैववश कुमार की दृष्टि उस रोगी पर पडी। कुमार, जिन्होने आज तक रोग का नाम भी नही सुना था, उसे देखकर बडे कुतूहल से सारथी से पूछ बैठे—

किं सारथे पुरुषरूप विवर्णगात्र
सर्वेंद्रियेभि विकलो गुरुप्रश्वसत ।
सर्वा गशुष्क उदराकुल प्राप्तकृच्छ्रा
मूत्रे पुरीष स्वकि तिष्ठति कुत्सनीय

हे सारथी, इस पुरुष का गात्र क्यो विवर्ण हो गया है ? इसकी सब इद्रियाँ क्यों विकल हैं ? यह क्यो लबी साँस ले रहा है ? इसके सब अग क्यों सूख गए हैं ? इसका पेट क्यों फूल आया है ? यह क्यो दु खी है और अपने मूत्र-पुरीष मे पडा हुआ है ?

कुमार का यह वचन सुन सारथी ने सविनय निवेदन किया—

एषो हि देव पुरुषो परम गिलानो
व्याधीभय उपगतो मरणात प्राप्त ।
आरोग्य तेजरहितो बलविज्जहीनो
अत्राणवो प्रसरणो ह्यपरायनश्च ॥

देव ! इस रोग हो गया है। इसे बडी ग्लानि है । इसके मरने का समय आ गया है। इसका आरोग्य और तेज जाता रहा है। यह बल-वीर्यहीन हो गया है। इसके बचने की कोई आशा नहीं है। यह अशरण होकर यहाँ पडा है।

कुमार को सारथी की यह बात सुन बडी चिता हुई। वे सोचने लगे कि व्याधि क्या वस्तु है ? क्या कोई ओषधि ऐसी नही है जो व्याधि को ससार से जड़ से दूर कर दे और इसका नाम भी न सुनने मे आवे ? इस समय सिद्धार्थ को साख्य का दूसरा सूत्र "नदृष्टा-त्तत्सिद्धिर्निवृत्तेपि अनुवर्तदर्शनात्" याद आया। उन्होने अपने

मन में कहा कि नही, ससार मे ऐसा कोई औषध नही है जो व्याधि को जड़मूल से खो सके। वे अपने सारथी से बोले—

आरोग्यता च भवते यथ स्वप्नक्रीड़ा
व्याविर्भय च इम ईदृश घोररूपम्।
को नाम विज्ञपुरुषो इम दृष्ट्ववस्था
क्रीडारति च जनयेत्सुभसृ ज्ञिता वा॥

हे सारथी! यदि आरोग्यता स्वप्न के खेल के समान है और व्याधि के ऐसा घोर भय इसके पीछे लगा है, तो फिर कौन बुद्धिमान् इस अवस्था को देखता हुआ क्रीडा मे निरत होगा और ससार को शुभ कहने का साहस करेगा।

यह कह सिद्धार्थ ने सारथी को रथ लौटाने की आज्ञा दी और वे उद्यान मे सैर करने के लिये न गए। वे अपने प्रासाद को वापस आए और बहुत दिनो तक एकात मे बैठे इस विचार मे मग्न रहे कि व्याधि से बचने का कौन सा अनुपम उपाय है जिससे प्राणी व्याधि से अत्यत निवृत्ति प्राप्त कर सकता है।

इस घटना के थोडे ही दिन पीछे सिद्धार्थ कुमार तीसरी बार उद्यान मे जाकर चित्त बहलाने के विचार से अपने रथ पर सवार हो नगर से होते हुए उस के पश्चिम द्वार से निकले। दैवयोग से वहाँ उनके उद्बोधन के लिये तीसरा दृश्य उपस्थित था। किसी ग्रहस्थ के यहाँ उसका कोई सबधी मर गया था और सारे कुटुम्ब के लोग उसके शव को अरथी पर लिए विलाप करते जा रहे थे। कुमार ने आज तक किसी पुरुष को मरते नही देखा था। उनका ध्यान

उसके कुटुम्बियों के रोने की ओर गया। उन्होने देखा कि एक मनुष्य को वस्त्र में लपेट खाट पर लेटा चार मनुष्य कधे पर उठाए लिए जा रहे हैं और बहुत से लोग उसके साथ साथ रोते जा रहे हैं। इस दृश्य को देख कुमार ने कुतूहलवश सारथी से पूछा —

कि सारथे पुरुष मचोपरि गृहीतो
उद्धूतकेश नखपासु शिरे क्षिपति।
परिचारयति विहरतस्ताडयते
नानाविलापरचनानि उदीरयन्ति ॥

हे सारथी! इस पुरुष को कपडे मे लपेटकर खाट पर लेटा लोग क्यो उठाए लिए जाते हैं? ये लोग क्यों अपने हाथो से अपना सिर पीटते हैं, सिर पर धूल डालते हैं तथा अपना वक्षस्थल पीटते हैं? इसे कहाँ लिए जाते हैं और नाना प्रकार की बातें विलाप करते हुए क्यों कहते हैं?

कुमार की यह बाते सुनकर सारथी ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—

एषो हि देव पुरुषो मृत जबुद्वीपे
नहि भूय मातृपितृ द्रक्ष्यति पुत्रदाराम्।
अपहाय भोगगृहमातृपितृज्ञातिसघम्
परलोक प्राप्तु नहि द्रक्ष्यति भूय ज्ञातिम् ॥

देव! जबुद्वीप में इसे मृत कहते हैं। यह फिर अपने पिता माता पुत्र स्त्री आदि को नहीं देख सकता। यह पुरुष समस्त भोग, माता, पिता, जाति आदि का साथ छोड़कर परलोक को प्राप्त हो गया

है। अब यह पुन अपने कुटुम्बियों और जातिवालों को नही मिलेगा।

सारथी की इस बात ने कुमार के हृदय को हिला दिया। उन्हे सारा ससार क्षण-भगुर प्रतीत होने लगा। मानव जीवन का तत्व उनकी समझ मे आ गया। वे जान गए कि यह जीवन, जिस पर समस्त प्राणी इतना घमड करते हैं और जिसके लिये लोग बडी बडी सामग्री जोड़ते हैं, वास्तव में चिरस्थायी नही है। अज्ञानी पुरुष जीवन को स्थिर समझ बडे बडे अत्याचार करते हैं, उनको स्वप्न में भी इसका ध्यान नही रहता कि जीवन क्षणिक है। कुमार थोडी देर इस चिता मे मग्न रहे, फिर सारथी से बोले—

धिग्यौवनेन जरया समभिद्रुतेन
आरोग्य धिग्विविध व्याधि पराहतेन।
धिक् जीवनेन पुरुषो न चिरस्थितेन
धिक् पडितस्य पुरुषस्य रतिप्रसगै ॥
यदि नर न भवेया मैव व्याधिर्न मृत्यु-
स्तथपि च महदु खं पचस्कध धरतो।
कि पुन जर व्याधि मृत्यु नित्यानुबद्धा
साधु प्रतिनिवर्त्या चितयिष्ये प्रमोचम् ॥

यौवन को धिक्कार है, क्योंकि उसके पीछे जरा लगी हुई है। आरोग्य को धिक्कार है, क्योंकि अनेक प्रकार की व्याधियाँ उसे ध्वस्त किया करती हैं। जीवन को धिक्कार है, क्योंकि मनुष्य का जीवन चिरस्थायी नही है। और उस पंडित को धिक्कार है

जो यह सब जानता हुआ रति-प्रसग मे निरत होता है। यदि ससार मे जरा, व्याधि और मृत्यु न भी होती तो भी ससार पचस्कध होने से ही दु खों का आगार था। फिर भी जरा, व्याधि और मृत्यु से यह नित्य अनुबद्ध है। अत हे सारथी ! रथ फिरा। मै इनसे बचने के उपाय का चिंतन करूँगा।

सारथी ने रथ लौटाया और कुमार रथ से उतरकर प्रासाद मे गए और कई दिनों तक एकात में बैठे यह विचारते रहे कि वह कौन सा उपाय है जिसका अवलबन कर मनुष्य जरा, व्याधि और मृत्यु से अत्यत निवृत्ति प्राप्त कर सकता है।

जब इस प्रकार चिंतन करने से कुमार को कोई उपाय न सूझा, तब घबराकर उन्होंने नगर के बाहर जाकर आराम मे जी बहलाने का विचार किया और सारथी को रथ लाने की आज्ञा दी। सारथी रथ लेकर प्रासाद के द्वार पर उपस्थित हुआ और कुमार चौथी बार नगर के उत्तर द्वार के उद्यान में जाने के लिये प्रासाद से निकलकर रथ पर सवार हुए। सारथी ने घोडे की बाग ली और रथ नगर के राजमार्ग से होकर उत्तर द्वार की ओर चला। ज्यो ही रथ उत्तर के द्वार से होकर निकला, कुमार की दृष्टि एक सन्यासी पर पडी जो काषाय वस्त्र धारण किए हाथ मे कमडल लिए शातचित्त बैठा था। उस सन्यासी को देखकर कुमार ने सारथी से कहा—

किं सारथे पुरुष शात प्रशातचित्तो
नोत्क्षिप्तचक्षु व्रजते युगमात्र दर्शी।

काषायवस्त्रवसनो सुप्रशातचारी
पात्र गृहीत्व न च उद्धत ओनतो वा।

हे सारथी! यह शात प्रशातचित्त कौन पुरुष है? इसकी दोनो आँखे स्थिर है। यह कापाय वस्त्र धारण किए, भिक्षापात्र लिए शात भाव से उद्धत और न अवनत होकर विचरता फिरता है।

कुमार की यह बात सुनकर सारथी ने उत्तर दिया—

एपो हि देव पुरुपो इति भिक्षुनामा
अपदाय कामरतय सुविनीतचारी।
प्रव्रज्यप्राप्त सममात्मन एषमानो
सरागद्वेषविगतो तिष्ठति पिडचर्य्या॥

हे देव! यह भिक्षु है। इसने काम और रति को त्याग, विनीत आचार ग्रहण किथा है। सन्यास ग्रहण कर यह आत्मा की शाति चाहता हुआ राग और द्वेष परित्याग कर भिक्षाचरण कर जीवन व्यतीत कर रहा है।

सिद्धार्थ कुमार सारथी का यह उत्तर सुन बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें एक ऐसे पुरुष का परिचय मिला जिसने ससार के विषय-वासना से विरक्त हो अपना जीवन सच्चे सुख की प्राप्ति मे लगा रक्खा था। कुमार उसकी प्रशात आकृति देख मुग्ध हो गए। उन्हे ज्ञात हो गया कि सन्यास आश्रम ही एक ऐसा आश्रम है जिसे ग्रहण कर मनुष्य सच्चा सुख प्राप्त कर सकता है। उन्होंने सारथी से कहा—

साधुभाषितमिद ममरोचते च
प्रव्रज्यनाम बहुभि सततप्रशस्ता ।
हितमात्मनश्च परसत्व हित च यत्र
सुख जीवित सुमधुरममृत फल च ।

हे सारथी ! तू साधु कहता है। तेरी यह बात मुझे रुचती है। प्राचीन महर्षियो ने सन्यास आश्रम की बडी प्रशसा की है। यही एक आश्रम है जिसमे मनुष्य अपने और पराए हित का साधन कर सकता है। इस आश्रम मे मनुष्य शातिपूर्वक अपना जीवन सुख से भैक्ष्यवृत्ति द्वारा निर्वाह कर सकता है। इस आश्रम का फल सुमधुर मोक्ष है जिसे पाकर मनुष्य जरा-मरण से निवृत्त हो जाता है। उपनिषदो मे कहा है—

वेदातविज्ञानसुनिश्चितार्था
सन्यासयोगाद्यतय शुद्धसत्वा
ते ब्रह्मलोके तु परातकाले
परामृता परिमुचति सर्वे ।

---

(७) महाभिनिष्क्रमण

ब्रह्मचर्य्यात् गृही भवेत् गृही भूत्वा वनी भवेत् वनी भूत्वा परिव्रजेत् ।
यदहरे वविरजेत्तदहरेव परिव्रजेद्वनाद्वागृहाद्वा ॥

जिस दिन से कुमार को चौथा उद्बोधन हुआ, उसी दिन से वे इसी चिंता मे लगे रहते थे कि वे किस प्रकार गृहाश्रम त्याग सन्यास आश्रम ग्रहण करें। वे यह जानते थे कि मनुष्य के ऊपर तीन ऋण होते हैं जिन्हे बिना चुकाए मनुष्य सन्यास आश्रम ग्रहण करने का अधिकारी नहीं हो सकता। विद्याध्ययन कर वे ऋषि-ऋण से मुक्त हो चुके थे और यज्ञ कर उन्होने देव-ऋण से छुटकारा पाया था। पर अभी यशोधरा के गर्भ से कोई बालक नही उत्पन्न हुआ था। यद्यपि वे जानते थे कि वह गर्भवती है, पर वे यह नही जानते थे कि गर्भ से पुत्र होगा वा पुत्री। अत जब तक पुत्र का जन्म न हो ले, उन पर पितृ-ऋण का भार वैसा ही बना था और शास्त्रानुसार वे सन्यास आश्रम के अधिकारी नही हो सकते थे। वे इसी विचार मे निमग्न थे कि एक दास ने अत पुर से आकर उनसे निवेदन किया कि "जय हो, कुमार की! महिषी यशोधरा के गर्भ से पुत्र का जन्म हुआ है।" कुमार को पुत्रोत्पत्ति सुन हर्ष हुआ और उन्होंने अपने को तीनो ऋणो से मुक्त समझा। उन्हें आशा हुई कि अब मुझे सन्यास ग्रहण करने मे कोई अडचन नही रही। मै ऋण-मुक्त हो गया और अब मै मोक्ष पद का अधिकारी हुआ। मनु ने कहा है—

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्
ज्ञानमुत्पद्यते पु सा क्षयात्पापस्य कर्मणा ।

ऋषिऋण, देवऋण और पितृऋण चुकाकर मनुष्य को अपना मन मोक्ष मे लगाना चाहिए। पापो के क्षय हो जाने से पुरुषों मे ज्ञान का उदय होता है।

यह सोच कुमार का मुख मोक्ष के आनद से दैदीप्यमान हो गया। पर थोडी देर के बाद जब उन्होंने पुत्र की उत्पत्ति से उत्पन्न राग के बधनों पर ध्यान दिया तो उनके आनद के चद्रमा पर मानो राहु ने आक्रमण किया। उनका सारा मानसिक आनद तिरोभूत हो गया। उन्होंने अपने को प्रेम-बधन मे जकडा हुआ पाया और कहा कि यह राहु है। इसी लिये कुमार का नाम राहुल रक्खा गया।

बहुत काल तक नाना प्रकार के सकल्प विकल्प करके सिद्धार्थ कुमार अपने प्रासाद से निकले और महाराज शुद्धोदन के पास गए। अपने पिता को नमस्कार कर उनके सामने हाथ जोडकर उन्होंने नम्र भाव से कहा—"महाराज! आप खेद न करें और मुझे क्षमा करे। आपको इससे कोई विघ्न नही होगा। दैवयोग से अब मेरी प्रव्रज्या का समय आ गया। आप और आपके स्वजन तथा राष्ट्र के लोग मुझे सहर्ष गृहाश्रम त्यागने की आज्ञा दे।" पुत्र का यह वचन सुन शुद्धोदन ने कहा—"हे पुत्र! तुम गृहाश्रम क्यों छोड़ते हो? तुम्हारा क्या प्रयोजन है जो तुम मेरी आज्ञा माँगते हो? लो मैं तुम्हे अपना सारा राज्य, राजकुल, सब धन-सपत्ति प्रदान करता हूँ, पर तुम गृह-त्याग न करो।" पिता की यह बात

सुन कुमार ने कहा—" महाराज ! यदि आप मुझे चार वर दे तो मैं गृहाश्रम कदापि न त्याग करूँ। वे चार वर ये हैं (१) मै बुड्ढा न होऊँ और सदा यौवनावस्था मे रहूँ, (२) मै सदा आरोग्य रहूँ, मुझे कभी कोई व्याधि न हो, (३) मै अमर हो जाऊँ, कभी मृत्यु मेरे पास न आवे और (४) मेरी सपत्ति सदा बनी रहे और विपत्ति न आवे।" महाराज ने कुमार की यह बात सुन अत्यन्त दुःखित हो कहा—" हे कुमार ! जब कल्पातस्थायी ऋषिगण भी जरा, व्याधि, मृत्यु और विपत्ति से मुक्त नहीं हो सके, तो मेरी क्या शक्ति है कि मै तुम्हे इनसे बचा सकूँ।" पिता का यह वाक्य सुन सिद्धार्थ ने कहा—" महाराज ! यदि आप यह चार वर मुझे नही दे सकते तो कृपाकर मुझे यही आशीर्वाद दे कि अब मेरा इस ससार मे पुनर्जन्म न हो।" पिता ने पुत्र के इस वचन के उत्तर मे कहा— " तुम्हारा यह अभिप्राय अनुमोदनीय है कि ससार से मोक्ष प्राप्त हो, तुम्हारी यह आशा सफलीभूत हो। ❀

---

* सो चोत्थितो हि पुरतो नृपतिमवोचत्
मा भूयु विघ्न प्रकरोहि मा चैव खेदन्।
नैष्क्रम्यकालसमयो यथा देवयुक्तो
हन्त क्षमस्व नृपते सजन सराष्ट्र ॥
तमश्रुपूर्णनयनो नृपतिर्बभाषे
किंचित्प्रयोजन भवेद्विनिवर्तनेते।
किं याचसे मम वरं वद सर्व दास्ये
अनुगृह्ण राज कुल मा च इदं च राष्ट्रं ॥
बद्वोधिसत्त्व अवची मधुरप्रलापी
इच्छामि देव चतुरो वर तान्मे देहि।

कुमार महाराज शुद्धोदन का आशीर्वाद ले अपने प्रासाद में आए और यह सोचने लगे कि कैसे मै कपिलवस्तु से निकलूँ। वे प्रव्रज्या ग्रहण करने की उधेड़-बुन मे लगे। महाराज शुद्धोदन ने अपने पौत्र उत्पन्न होने के आनद मे मग्न हो आनद-उत्सव के लिये समाज जोडा। प्रसिद्ध प्रसिद्ध गुणी, गायक और नर्तकियाँ बुलाई

यदिशक्यते ददितु मह्य वसीोति तत्र
तद्द्रक्ष्यसे सहगृहे नच निष्क्रमिष्ये ॥
पृच्छामि देव जर मह्य न आक्रमेया
शुभवर्ण यौवनस्थितो भवि नित्यकाल ।
आरोग्य प्राप्तु भवि नो च भवेत व्याधि
[रमितायुषश्च भवि नो च भवेत मृत्यु ॥]
सम्पत्तितश्च विपुला न भवेद्विपत्ती ॥
राजा श्रुणित्व वचन परम दुखार्तो ।
अस्थान याचसि कुमार नमेत्र शक्ति
जरव्याधिमृत्युभयतश्च विपत्तितश्च
कल्पस्थितीय ऋषयो हि न जातु मुक्ता ॥
श्रुत्वा पितुर्वचनमत्र कुमार बोची
यदिदानिदेव चतुरो वर नो ददासि
जरव्याधिमृत्युभयतश्च विपत्तितश्च
हन्त श्रुणुष्व नृपते अपरं वरैकं
अस्याच्युतस्य प्रतिसधि न मे भवेय ॥
श्रुत्वैवमेव वचनं नरपुंगवस्य
तृष्णातनुश्च करि छिदति पुत्रस्नेहं
अनुमोदनीहितकरी जगति प्रमोक्षं
अभिप्राय तुभ्य परिपूर्य्यतु यन्मतं ते

ललितविस्तर अध्याय १५ ।

गई । कई दिन तक दिन रात आनद उत्सव मनाया गया। स्वय सिद्धार्थ कुमार को भी विवश हो उस नृत्य-गान मे सम्मिलित होना पड़ा । जिस समय उस समाज मे अन्य शाक्य अपनी कर्णेंद्रियादि के विषय मे मग्न थे, सिद्धार्थ कुमार वहाँ बैठे अवसर देख रहे थे कि उन्हे कपिलवस्तु से प्रस्थान करने का अवकाश मिले । सच है—

या निशा सर्व्वभूताना तस्या जागर्ति सयमी ।
यस्या जागर्ति भूतानि सा निशा पश्यते मुनौ ।

उस समाज मे बैठे बैठे कुमार के हृदय मे चार प्रकार के प्रणिधानो का उदय हुआ । पहले यह कि ससार चार महा बंधनों मे बद्ध है, इसे मुक्त करना चाहिए। दूसरे ससार घोर अविद्यांधकार से ग्रस्त है, इसे प्रज्ञाचक्षु प्रदान करना चाहिए। तीसरे, मनुष्यों के पीछे अहकारस्मिता इत्यादि लगे हुए हैं, उन्हें आर्य्यधर्म का उपदेश कर निवृत्त करना चाहिए, और चौथे ससारी जीव धर्माधर्म के वशीभूत हो इस लोक से परलोक और परलोक से इस लोक मे चक्कर लगाया करते है । इस आवागमन के चक्र से बचाने के लिये प्रज्ञातृप्ति प्राप्त कर धर्म का पता लगाकर उन्हे उपदेश करना चाहिए।

आज आषाढ मास की पूर्णिमा है। आधी रात हो गई है। कपिलवस्तु मे कई दिन से आनद उत्सव मनाया जा रहा है । सब लोग राग नृत्य देखते देखते थक गए हैं । उनकी इद्रियाँ शिथिल हो गई हैं। सब लथ पथ हो गए है । मडप मे कोई कही कोई कही विश्राम कर रहा है । सब लोगों को शात और क्लात देख नर्तक-नर्तकी, गायक-गायिका आदि भी वही उन्मत्त की भाँति मडप मे गिर खर्राटे भरने

लगे हैं। सब लोग निद्रादेवी के वशीभूत हैं। केवल सिद्धार्थ कुमार एक कोने मे बैठे अपने निकलने की चिंता मे लगे हैं। भगवान् कुमुदिनी-नायक गगन-मध्य में आए हैं, मानों कुमार को यह सकेत कर रहे हैं कि सांसारिक सुख क्षणिक और परिणामी है, धीर पुरुष ससार से चित्त हटाकर ब्रह्मानद की जिज्ञासा मे निरत होते हैं। अचानक कुमार की आँख ध्यान से खुली। उन्होंने देखा कि सब लोग सो गए हैं और ऐसे सोए हैं कि किसी को कुछ सुध नही। उन्हे वह रगभूमि श्मशान सी दिखाई पडी। उन्होंने देखा कि उन स्त्रियों की जिनका रूपसौंदर्य्य देख स्वर्ग की अप्सराएँ भी लजाती थी, अद्भुत दशा हो रही है। किसी के वस्त्र उड गए हैं, कोई नगी पडी है, किसी के सिर के बाल खुले पडे हैं, किसी के मुँह से लार बह रही है, किसी का मुँह खुला और दाँत निकले हैं, कोई उलटी कोई सीधी, कोई किसी के ऊपर सिर और कोई किसी के ऊपर पैर रक्खे सब जहाँ की तहाँ मृतवत् पडी हैं। यह देख कुमार के चित्त मे स्त्रियो से बडी घृणा उत्पन्न हुई। उन्होने करुणा से ठढी साँस ली और कहा—“ कितने शोक की बात है कि मनुष्य इन स्त्रियों से प्रीति करता है। भला इन राक्षसियो के प्रेम मे आनद कहाँ ”। यह कहकर वे वहाँ से उठे, अपने प्रासाद मे आए और उन्होंने अपने प्रिय सारथी छदक को बुलाया। कुमार की आज्ञा पाते ही छदक उपस्थित हुआ। कुमार ने छदक से कहा— * “छदक मेरे प्रस्थान

---

* छदकाह खलु मा विलंब हे अश्वराज दद मे अलकृतं।
सर्वसिद्धि मम एति मगला सर्वसिद्धि ध्रुवमेद्यमेष्यति॥

।का समय आ गया। तुम शीघ्र अश्व तैयार कर ले आओ। मै अभी बाहर जाऊँगा। समय अच्छा है। इस ममय जाने से मेरा सब काम सिद्ध होगा और अवश्य मुझे सब सिद्धियाँ प्राप्त होगी"। कुमार के इस कुसमय गृहत्याग करने पर छदक अत्यत विस्मित हुआ और हाथ जोडकर बोला—"देव! आप क्यो गृहत्याग करते है? आप इस राज-सपत्ति की ओर देखिए। जिस ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये ऋषिगण बडे बडे कठिन तप करते हैं, वह आपको स्वभाव से ही प्राप्त है। आप महारानी यशोधरा की ओर देखे। उनकी यौवनावस्था और रूप-लावण्य पर ध्यान दे। आप अपने उस पुत्र का मुख देखें जो अभी उत्पन्न हुआ है और आपका एक मात्र उत्तराधिकारी है। भगवन्! आप राजकुमार है। आपको किस बात की कमी है जो आप ससार से विरक्त होकर सन्यास ग्रहण करने पर तुले हुए है? जिस भोग-ऐश्वर्य्य के लिये बडे बडे ऋषि मुनि लालसा करते हैं, वह आपको सहज मे ही भाग्यवश प्राप्त है। हे महाभाग! आपकी अभी अवस्था ही क्या है। आप सुखपूर्वक इस दैवदत्त ऐश्वर्य्य का भोग कीजिए।"

छदक की यह प्रार्थना सुन सिद्धार्थकुमार ने कहा—

अपरिमितानतकल्पा मया छदक,
भुक्ता कामानिमा रूपाश्च शब्दाश्च।
गधारसास्पर्शता नानाविधा
दिव्येयो मानुषा नैव तृप्तिरभूत॥

हे छदक ! अपरिमित अनत कल्प तक मैंने नाना प्रकार के दिव्य और मानुष रूप, रस, गध, स्पर्श और शब्द इत्यादि काम-सुखों का भोग किया, पर मुझे तृप्ति नही हुई। मनुष्य कभी अपनी कामना को विषय-भोग से तृप्त नहीं कर सकता। कामना दहकती हुई आग है। इसे यदि विषय-भोग के घी से कोई बुझाना चाहे तो यह कभी नही बुझेगी, किंतु उलटे अधिक प्रदीप्त होगी। ज्ञानी पुरुष साँप का सिर छोड देता है और अशुचि मैले के घट को नही छूता। छदक ! काम सब सुखो का नाशक है, यह जानकर काम की ओर मेरी रुचि नहीं होती *। हे छदक, यह ससार घोर जगल है, इसमे चारो ओर क्लेश ही क्लेश है। हम लोग मोह और अविद्या के अधकार में पडे हुए हैं, जरा, व्याधि और मृत्यु के भय से पीडित हैं, जन्म-मरण दु खरूपी शत्रु हमारे पीछे लगे हैं। मैंने इस ससार के दु खों को अच्छी तरह अनुभव किया है और प्रतिज्ञा करता हूँ कि—

तदात्मनोत्तीर्य्य इद भवार्णव
सवेरदृष्टिग्रहक्लेशराक्षस।
स्वय तरित्वा च अनतकं जगत्
स्थलेऽन्तरिक्षे अजरामरे शिवे।

मैं इस भवार्णव को जिसके साथ वैरदृष्टि ग्रहक्लेश रूप राक्षस लगे हैं, अवश्य पार करूँगा। और मै केवल अकेला ही पार न

* विवर्जिता सर्पशिरायथा बुधैर्विगर्हिता मीढघटा यथाशुचि।
विनाशका सर्वसुखस्य छेदक ज्ञात्वाहि कामात्य विजायते रति।
ललितविस्तर अ० १५।

होऊँगा, किंतु अनत ससार को उस अतरक्षिस्थ अजर अमर मोक्ष में स्थापित करूँगा। मैं गृह त्याग अवश्य करूँगा और तेरे सामने यह प्रतिज्ञा करता हूँ—

वज्राशनिपरशुशक्तिशराश्मवर्षै
विद्युत्प्रभानज्वलित क्वथित च लोह।
आदीप्तशैलशिखिरा प्रपतेयुमूर्ध्नि
नोवा अह पुनर्ज्जनेय गृहाभिलाष।

मेरे सिर पर वज्र भले ही गिरे, बिजली, परशु, शक्ति, शर तथा पत्थर की वृष्टि भले ही हो, बिजली की तरह दहकता लोहा भले ही सिर पर गिरे अथवा दहकता हुआ ज्वालामुखी पर्वत सिर पर भले ही आ पडे, पर मेरे हृदय मे अब फिर गृहाश्रम की अभिलाषा नही होगी।

जब छदक ने कुमार की यह घोर प्रतिज्ञा सुनी और देखा कि कुमार समझाने से नही मानते और अपने हठ पर अडे हुए हैं, तब उसे निश्चय हो गया कि अब कुमार अवश्य कपिलवस्तु परित्याग करेगे। वह कुमार के पास से अश्वशाला की ओर कठक को लाने के लिये गया। छदक के जाने पर कुमार पर राग ने आक्रमण किया और वे चुपके चुपके दबे पॉव अत पुर मे घुसे। अंत -पुर मे सब दास दासियॉ जो जहॉ थी, वह वही पड़ी खर्राटे भर रही थीं। सारे घर मे निद्रा-देवी का अखिल साम्राज्य था। प्रसूतिका गृह का द्वार, जिसमे गोपा थी, खुला हुआ था। दीपक जलता था, पर सब के सब पड़े सोते थे। वे द्वार पर पहुँचे और बाहर से देखा

तो गोपा घर मे अपने पर्य्यंक पर अपने नवजात पुत्र को अपनी छाती पर लिए हुए घोर निद्रा में निमग्न बेसुध पडी सो रही है। सिद्धार्थ उसके पर्य्यंक के पास तक गए और समीप था कि वे अपनी प्रिय रानी यशोधरा को जगा उससे अतिम भेट कर उसे गृहत्याग की सूचना दे और अपने पुत्र राहुल को एक बार अपनी गोद मे ले पुत्र के सुख का अनुभव करे, पर उन्होने अपने मनोवेग को रोका और वे वहाँ से लौटे। किवाड के पास ठहरकर उन्होंने फिर अपने मन मे कहा कि "नही, ऐसा करना मेरे त्याग में घोर अडचन उपस्थित करेगा।" इस प्रकार के राग और विराग के झगडे मे वे बहुत देर तक पडे रहे और अत को वे उसका जगाना उचित न समझ अत पुर से निकले और प्रासाद के द्वार पर आए जहाँ उनका विश्वासपात्र सारथी छदक कठक को लिए उन की प्रतीक्षा कर रहा था। सिद्धार्थ कठक पर सवार हुए और आधी रात के समय सुनसान नगर से होते हुए नगर के पूर्व द्वार से यह कहकर बाहर निकले—

स्थानासन शयनचक्रमण
नकरिष्येह कपिलवस्तुमुख।
यावन्न लब्ध वरबोधि मया
अजरामर पदवर ह्यमृत।

---

(८) प्रव्रज्या

उदयति यदि भानु पश्चिमेदिग्विभागे
प्रचलति यदि मेरु शीतता याति वह्नि ।
विकसति यदि पद्म पर्वताग्रे शिलाया
न भवति पुनरुक्त भाषित सज्जनानाम् ॥

आधी रात का समय है। सब लोग निद्रा-देवी के वशीभूत पड़े सुख की नींद सो रहे हैं। सिद्धार्थ कुमार अपने घोडे कठक पर सवार हो कपिलवस्तु से निकल पूर्व ओर चले जा रहे हैं और उनका विश्वासपात्र दास छदक उनके घोड़े के पीछे पीछे चुपचाप छाया की भाँति लगा चला जाता है। वे घने जंगलो और सुनसान मैदानो मे होते हुए अनेक छोटी छोटी पहाडी नदियो और नालो को पार करते रोहिणी के तट पर पहुँचे। उन्होंने रोहिणी को पार किया और वे कौडिया (कोलिय) राज्य मे पहुँचे। कौडिया राज्य मे ही उनकी ससुराल थी, इसलिये वे वहाँ भी न रुके और दिन किसी न किसी तरह कहीं बिताकर वे पावा * के मल्लो के राज्य मे पहुँचे। पर यहाँ भी उन्होंने दम मारना अनुचित समझा। यहाँ से वे मैनेय राज्य मे गए और कई दिन और रात चलकर वे कपिलवस्तु से छ योजन पर अनामा नदी के किनारे पंहुँचे। उन्होने अनामा नदी को पार किया और वे अपने घोडे पर से उतर पडे। यहाँ उन्होंने अपने शरीर से सारे वस्त्रा-

* पावा को अब पडरौना कहते हैं। वह गोरखपुर जिले में है।

भूषण उतारे और साधारण दो एक वस्त्र पहन शेष वस्त्राभूषण तथा कठक को अपने दास छदक को सौंप उससे कहा—"छदक ! अब तुम इन वस्त्रो और आभूषणो को तथा कठक को लेकर कपिलवस्तु को लौट जाओ। माता पिता को मेरा सानुनय प्रणाम कहना और उनसे कह देना कि * "आप मेरे ग्रह-त्याग करने की कुछ चिंता न कीजिए, मै बुद्धत्व लाभ कर फिर कपिलवस्तु मे आ कर आपके चरणो के दर्शन करूँगा। उस समय आपका चित्त मेरे धर्मोपदेश को सुन शात होगा।" छदक कुमार की यह बाते सुन रोने लगा लगा। उसने कहा—"कुमार मै आपको कदापि नहीं छोड सकता। आप मुझे जो चाहिए कीजिए, पर कपिलवस्तु जाने को न कहिए। मै आपके बिना कपिलवस्तु जाकर क्या करूँगा। यदि मै आपकी आज्ञा मान कपिलवस्तु को लौट भी जाऊँ तो भी वहाँ लोग मुझे जीता न छोडेंगे। वे लोग मुझ पर आपके निकलाने का कलक लगावेगे। आप कृपाकर मुझे भी अपने साथ लेते चलिए।" कुमार ने छदक को बहुत कुछ समझा बुझाकर वस्त्राभूषण और घोडे के साथ कपिलवस्तु को लौटाया और स्वय अपने खड्ग से अपनी शिखा काट डाली और आगे की राह ली।

---

* छन्दोक गृहीत्वा कपिलपुर प्रयाहि
मातापितृणा मम वचनेन पृच्छ।
गत कुमारो न च पुन शोचयेथा
बुद्धत्व बोधिपुनरहमागमिष्ये।
धर्म श्रुणित्वा भविष्यत शातचित्त ।

थोडी दूर चलकर कुमार के चित्त मे फिर भी यह यह आशका हुई कि यद्यपि मेरे शिखा नही है और मैने राजोचित वस्त्राभूषणो का भी परित्याग कर दिया है, फिर भी जो वस्त्र मेरे शरीर पर हैं वे रेशमी और बहुमूल्य हैं, जिन्हे साधारण मनुष्य नही पहन सकता। सभव है कि मुझे कोई इन वस्त्रो मे देखकर पूछताछ करे और मेरा पता महाराज शुद्धोदन को पहुँचावे। वे इसी विचार मे जा रहे थे कि दूर से उन्हे आगे एक लुब्धक (ठग) देख पडा जो साधु की तरह कषाय वस्त्र पहने राह मे बैठा हुआ था। कुमार जब लुब्धक * के पास पहुँचे तब उससे बोले—“ आइए, हम और आप अपने कपडे बदल ले।” कुमार की बात सुन लुब्धक ने कहा—“ आपका वस्त्र आप को शोभा देता है और मेरा कपाय-वस्त्र मुझे शोभा देता है। मै वस्त्र-परिवर्तन नही करूँगा।” कुमार ने कहा—“ यदि आप बदलेगे नही तो मै आपसे आपका कषाय वस्त्र माँगता हूँ। क्या आप माँगने पर भी न देगे ?” इस प्रकार कुमार ने अपने सारे वस्त्र उतार उस लुब्धक को दे उसके दिए कपाय वस्त्र पहन आगे का रास्ता लिया।

प्रात काल कपिलवस्तु मे जब लोग मोह-निद्रा से जागे तो सिद्धार्थ कुमार को वहाँ न पा चारो ओर उन्हे प्रासाद मे ढूँढने लगे। जब वहाँ भी वे न मिले तब लोगो को कठक और छदक को न देख विश्वास हो गया कि कुमार गृहत्याग कर कही चले गए।

---

* महायान के अर्थ मे इसे देवता लिखा है, और कषाय वस्त्र के स्थान पर मृगचर्म लिखा है।

अत पुर की सब स्त्रियाँ विह्वल हो विलाप करने लगी। महारानी प्रजावती, गोमती और राजकुमारी गोपा अपनी छाती और सिर पीटने लगी। महाराज शुद्धोदन पुत्रशोक में विह्वल हो रोने लगे। चारो ओर ढूँढने के लिये लोग भेजे गए, पर कुमार न मिले और लोग ढूँढ ढाँढकर विवश हो कपिलवस्तु लौट आए। कई दिन पर छदक भी कठक और कुमार के वस्त्राभूषण ले कपिलवस्तु रोता पीटता आया और उसने महाराज शुद्धोदन तथा अन्य राजकुल से कुमार का सँदेसा कहा। सब लोग रोने लगे और फिर एक बार और कुमार के ढूँढने के लिये आदमी भेजे गए, पर कुमार न मिले और न उनका कुछ पता ही चला। अत को सब लोग कुमार की अतिम बात की प्रतीक्षा करने पर विवश हो अपने भाग्य को दोष दे दु खित मन हो हारकर बैठ गए।

उधर कुमार अनामा नदी पर शिखा काट गेरुआ वस्त्र पहन वहाँ से वैशाली नगर की ओर चले और शाक्या ब्राह्मणी के घर पर ठहरे। शाक्या ने कुमार का भोजनादि से उचित सत्कार किया। शाक्या के यहाँ से चल गौतम पद्मा नामक ब्राह्मणी के घर अतिथि रहे और पद्मा के यहाँ से चल वे रेवत ऋषि के आश्रम पर पहुँचे। रेवत जी ने गौतम का उचित आतिथ्य सत्कार किया। रेवत जी के आश्रम से चलकर वे त्रिभदडिकपुत्र राजक के घर पर ठहरे और वहाँ अतिथि रहकर आगे बढे। इस प्रकार कई दिनो मे भैक्ष्य-चर्य्या करते गौतम वैशाली नगर में पहुँचे।

वैशाली नगर मे उस समय एक परम विद्वान् पण्डित आराड

कालाम नामक रहता था। उसके आचार्यकुल मे तीन सौ ब्रह्मचारी विद्याध्यन करते थे। महात्मा गौतम आराड के ब्रह्मचर्य्याश्रम मे गए और उन्होने आचार्य्य आराड कालाम से ब्रह्मचर्य्याश्रम ग्रहण किया और उससे 'अकिंचनायतन' * धर्म की शिक्षा प्राप्त की। पर इतने से गौतमबुद्ध का सतोष न हुआ। वे अपने मन मे कहने लगे—"मैने वेदो को भी पढा है। मुझ मे वीर्य्य और स्मृति भी है। मुझे समाधि की क्रिया भी आती है और मेरे पास प्रज्ञा भी है जिसके प्रभाव से मै अप्रमत्त होकर विहार कर सकता हूँ। पर क्या इतने मात्र से मनुष्य अपने समस्त क्लेशो को ध्वस्त कर सकता है?" यह विचार गौतम आचार्य्य आराड कालाम के पास जाकर बोले—"आचार्य्य! क्या आपने अब तक धर्म का इतना ही मात्र साक्षात् किया है?" आचार्य्य ने कहा—"हाँ, गौतम मैने तो इतना ही साक्षात् किया है।" गौतम ने कहा—"इतना तो मै भी जानता हूँ और मैने भी साक्षात् किया है।" आचार्य्य यह सुन बहुत प्रसन्न हो बोले—"गौतम! बडे हर्ष की बात है कि आपने भी उसी धर्म को साक्षात् किया जिसे मैने किया है। अत आइए, हम और आप दोनो मिलकर परस्पर प्रेमपूर्वक इन शिष्यो को धर्म की शिक्षा दे।" पर गौतम, जो कुछ और आगे जाने के लिये उत्पन्न हुए थे, ठहरकर ब्रह्मचारियो को शिक्षा देने पर राजी न हुए और आचार्य्य से बिदा माँग राजगृह की ओर बढे।

---

* सज्ञा और सज्ञी दोनों जिसमे हों, इस प्रकार का ज्ञान अर्थात कुछ नहीं है।

यह राजगृह नगर जिसे प्राचीन काल मे गिरिव्रज कहते थे, पाँच पर्वतो के बीच मे बसा था। इसे मगध के महाराज बिबसार ने बसाया था और उस समय यह मगध की राजधानी थी। इसी नगर के पास रामपुत्र रुद्रक नाम का एक प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् रहता था जिसकी विद्या और आचरण की प्रशसा सुन गौतम वैशाली से राजगृह गए थे। यहाँ पहुँचकर वे पाडव पर्वत पर ठहरे और अपना भिक्षापात्र ले एक बार राजगृह मे भिक्षाग्रहणार्थ गए। नगर के लोगो ने उनकी अवस्था देखी और उनकी चर्चा महाराज बिबसार के दरबार मे चलाई। बिबसार इन राजलक्षणयुक्त भिक्षुक को देखने के लिये बहुत उत्सुक हुए और उन्होने उन्हे अपने राजमहल मे भिक्षाग्रहण करने के लिये निमत्रित किया। गौतम महाराज बिंबसार का निमत्रण स्वीकार कर राजमहल मे गए और भिक्षाग्रहण कर अपने अश्रम पर आए। महाराज बिबसार रात के समय पर्वत पर आए और गौतम के चरणो की वदना कर उनसे विनयपूर्वक कहा—"भिक्षो, आपका यह रूप और यह अवस्था भिक्षाग्रहण करने योग्य नही है। आप कृपा कर मेरे इस राज्य को ग्रहण कर यह राज्यैश्वर्य भोग कीजिए। आपकी अवस्था वन वन घूमने की नहीं है।" राजा की इन बातो को सुन गौतमबुद्ध ने कहा—"महाराज! * आपका कल्याण हो,

* प्रभणति गिरि बोधिसत्व श्लक्ष्ण, अकुटिलप्रेमवचो हितानुकपी,
स्वस्ति धरणीपाल तेऽस्तु नित्यं, न च अह कामगुणेभिरर्थिकोस्मि,
काम विषसमा अनतदोषा, नरकप्रपातनप्रेततिर्यग्योनौ,

आपका ऐश्वर्य्य आपके लिये है, मुझे इसका काम नही। यह कामना विष के समान है। इसमे अनत दोष हैं। इसी कामना के वशीभूत हो प्राणी प्रेत-योनि, तिर्य्यक्-योनि ग्रहण करता है और नरक मे पडता है। विद्वान् लोग इस कामना को अनार्य्येयुष्ट समझ त्याग देते है। यह कामभोग क्षणभगुर है। जैसे वृक्ष के फल झड जाते हैं, वा आकाश के बादल फटकर विलीन हो जाते है, वायु कभी स्थिर नही होती और सदा चला करती है, ठीक उसी प्रकार काम-सुख स्थायी नही है। यह समस्त शुभ कर्मों का नाशक है। हे भूपाल! यदि कोई पुरुष समस्त दिव्य और मानुष, ऐहिक और आमुष्मिक सुखों को प्राप्त कर ले तो भी उसकी तृप्ति कभी नही हो सकती। कितना ही विद्वान् और ज्ञानवान् क्यो न हो, यदि वह

विदुभिर्विगर्हिता चाप्यनार्य्यकामा, जहिति मया पक्वखेटपिण्डम्।
कामद्रुमफला यथा पतति, यथ इव अभ्रबलाहका व्रजति।
अध्रुवचपलगामिमारुतं वा, विकरण सर्वशुभस्य वंचनीया।
काम धरणीपाल! ये च दिव्या, तथ अपि मानुष काम ये प्रणीता।
स कुलर लभेति सर्वकामा, न च सो तृप्ति लभेत भूयएष।
काम महिपाल सेवमान, परमनु न विद्याति कोटिसंस्कृतस्य।
लवणजल यथा हि पित्वा, भूय तृषु वर्द्धति कामसेवमाने।
ये तु धरणीपाल ग्रातदाता, आर्य्यानाश्रवधर्मपूर्णसज्ञा,
प्रज्ञविदुष तृप्त ये सुतृप्ता, न च पुन कामगणेषु काचित्तृप्ति।
अपिधरणीपाल पश्य कार्यं, अध्रुवमसार कुड्ड खयत्रमेतत्।
नचभि प्रणसुखे सदा अर्थंत, न मम नराधिप! काम छंदरागैः।
अहमपि विपुलाम् विजहकामान् तथऽपि च स्त्रिसहस्रान्दर्शनीयान्।
अनभिरतुभवेषु निर्गतोहं, परमशिवा वरबोधिमाप्तुकाम।

विषय-भोग का सेवन कर उनसे तृप्ति चाहे तो वह समुद्र के जल से प्यास बुझाने की चेष्टा करता है। ज्यो ज्यो वह विषय-भोग मे रत होगा, त्यो त्यो उसकी तृष्णा बढती जायगी। अत हे महाराज! विषय-भोग से तृप्ति की आशा रखना व्यर्थ है। इससे तृप्ति हो ही नही सकती। हाँ, जो पुरुष आर्य्य, आश्रवरहित और धर्मनिष्ठ प्राज्ञ है, उसी को सच्ची तृप्ति प्राप्त है। महाराज! आप अपने शरीर की ओर ध्यानपूर्वक देखिए, यह क्षणभगुर और दु ख का एक यत्र मात्र है। इसके नवो द्वारों से मल, मूत्र, श्लेष्मा आदि सदा बहा करते है। मुझे तो कामभोग मे कोई सुख नही दिखाई देता। मेरे घर स्वय अनेक विपुल ऐश्वर्य्य, सुदर दर्शनीय स्त्रियाँ तथा अन्य आमोद प्रमोद की सब सामग्रियाँ सपन्न थीं, परतु अब मै उन सब को छोड परमकल्याणकारी उत्तम निर्वाण पद लाभ करने के लिये घर से निकला हूँ। फिर मै आपके इस राज्य और ऐश्वर्य्य को ले कर क्या करूँगा?"

गौतम की इन बातो को सुन बिंबसार अत्यत विस्मित हो अपने मन मे लज्जित से हो गए। वे सोचने लगे कि यह कौन पुरुष है जिसने इस प्रकार अपने ऐश्वर्य्य को त्याग निर्वाण की जिज्ञासा के लिये सन्यास ग्रहण किया है। बिबसार ने कुतूहलवश गौतम से फिर पूछा—"हे भिक्षो! आप कौन है? आपकी जन्मभूमि कहाँ है? आपका नाम क्या है? आपके पिता माता का क्या नाम है?" बिंबसार के प्रश्नो को सुन गौतम ने नम्रता से उत्तर दिया—"महा-राज, आपने सुना होगा कि शाक्यो का कपिलवस्तु नामक एक राज्य

है। मैं वही के महाराज शुद्धोदन का पुत्र हूँ।" यह सुन महाराज बिंबसार ने कहा—

साधु तव सुदृष्टदशन ते
यत्तु तवजन्म वय पितस्य शिष्या।
अपि च मम क्षमस्व आशयेन
अयमपि निमत्रितुकाम वीतराग ॥
यदि त्वय अनुप्राप्त भोति बोधि
तद म सेति भोति धर्म स्वाम्नि्‌।
अपि च मम पुरा सुलब्ध लाभा
मम विजित वससीह यत्स्वयम्भो॥

हे भगवन्! मैं आपके पिता का शिष्य हूँ। मैं आपके दर्शनो से कृतार्थ हुआ। मेरे अपराधो को क्षमा कीजिए। यदि अपको बुद्धत्व प्राप्त हो तो कृपा कर मुझे उसके उपदेश से लाभ पहुँचाइएगा और मैं उसे हर्षपूर्वक स्वीकार करूँगा। आप कृपाकर अवश्य मेरे नगर मे पधारिएगा।" यह कह और गौतम की वदना कर बिंबसार राजगृह चले गए।

प्रात काल होने पर गौतम रामपुत्र रुद्रक के आश्रम को गए। रुद्रक के आचार्य्यकुल मे सात सौ शिष्य अध्ययन करते थे। रुद्रक अपने ब्रह्मचारियो को "नैव सज्ञा ना सज्ञायतन" सिद्धात का उपदेश करता था। गौतम ने रुद्रक से कहा—"आचार्य्य, मै आपका अतेवासी होकर रहना चाहता हूँ।" रामपुत्र रुद्रक ने गौतम को अपने आश्रम में रखकर "नैव संज्ञा ना सज्ञायतन" सिद्धात की शिक्षा

देना आरम्भ किया। कुछ दिनो तक शिक्षा प्राप्त कर गौतम ने उस सिद्धांत को समझ रामपुत्र रुद्रक से निवेदन किया—" मैंने श्रद्धा, वीर्य्य, स्मृति और समाधि को प्राप्त कर लिया है। क्या अब कुछ और है जिसकी आप मुझे कृपाकर शिक्षा देना चाहते हैं?" रुद्रक ने गौतम के इतने कठिन परिश्रम और शीघ्र श्रद्धादि प्राप्त करने पर विस्मित हो कहा—" गौतम! मै तो इतना ही जानता था। यदि आपने इनको साक्षात् कर लिया है, तो मेरे पास अब विशेष कुछ नही है जिसे मै आपको सिखाऊँ। यदि आपको मनोनीत हो तो आइए, हम और आप दोनों मिलकर इन विद्यार्थियो को शिक्षा दें।" गौतम ने कहा—" आर्य्य! केवल इतने ही से मेरा काम न चलेगा। मैं तो प्रज्ञा की खोज मे घर से निकला हूँ, और चाहे जो हो, उसे अवश्य प्राप्त करूँगा। आपकी श्रद्धादि मात्र से निर्वाण की प्राप्ति दुर्लभ है।"

गौतम और आचार्य्य रुद्रक के इस वार्तालाप को आश्रम के पाँच ब्रह्मचारी * सुन रहे थे। उन लोगों ने अपने मन मे कहा—

* इन्हीं पाचो ब्रह्मचारियों को पचभद्रवर्गीय भी कहते हैं। जब गया में गौतमबुद्ध ने अनशन व्रत त्याग दिया, तब ये लोग उनका साथ छोड काशी को चले आए थे और सारनाथ में जिसे उस समय ऋषिपतन कहते थे, रहते थे। इन्हो पंचभद्रवर्गीय ब्रह्मचारियों को महात्मा बुद्ध ने पहले पहल ऋषिपतन में धर्मचक्र का उपदेश किया था। ग्रंथातर का मत है कि इन पाचो को शुद्धोदन ने भेजा था कि ब्रह्मचारी बनकर बुद्धदेव के साथ रहें और उनको यथावसर प्रव्रज्या त्याग गृहाश्रम की ओर प्रवर्तित करने का प्रयत्न करें। यह लोग शाक्यवशी और कपिलवस्तु के ब्राह्मण-कुमार थे।

" गौतम तू धन्य है। तेरा परिश्रम धन्य है। तूने थोडे ही दिनो के श्रम मे आचार्य्य से उनका सारा ज्ञान प्राप्त कर लिया। तेरा उद्योग सराहनीय है जो तू अपने उद्देश्य पर अटल है।"

गौतम थोडे दिन रुद्रक के आश्रम मे रह कर वहाँ से प्रस्थान करने पर उद्यत हुए और आचार्य्य की आज्ञा ले वहाँ से चल पडे। गौतम के चलने पर पचभद्रवर्गीय ब्रह्मचारियो ने उनका पीछा किया और उन लोगो ने गौतम के साथ रहकर प्रज्ञालाभ करने का सकल्प किया। गौतम उन पचभद्रवर्गीय ब्रह्मचारियों के साथ राजगृह से गयशीर्ष पर्वत की ओर, जिसे अब गया कहते हैं, चले।

---

(६) तपश्चर्य्या

सूर्य्यस्य लोके न सहायकृत्य
चन्द्रस्य सिंहस्य च चक्रवर्तिन ।
बोधौ निषण्णस्य च निश्चितस्य
न बोधिसत्वय सहायकृत्यम् ॥

गौतम राजगृह से पच-भद्रवर्गीय ब्रह्मचारियो के साथ चल कर भैक्ष्यचर्य्या करते हुए कई दिन मे गया पहुँचे। उस समय गय-शीर्ष पर्वत पर कोई बडा उत्सव मनाया जा रहा था । उत्सव के प्रधान अधिष्ठाता ने उसमे गौतम बुद्ध को भी पच-भद्रवर्गीय ब्रह्म-चारियों के साथ निमन्त्रित किया। गौतम भी निमन्त्रण पा उस उत्सव में सम्मिलित हुए और अधिष्ठाता ने भोजन और वस्त्र से उनकी पूजा की। गौतम वहाँ गयशीर्ष पर्वत पर ठहर गए और भैक्ष्यचर्य्या करते हुए वहाँ रहने लगे। उस समय उनके चित्त में नाना प्रकार के साधुओ को देख यह विचार आया कि तीव्र, मृदु और मध्य भेद से साधुओं की तीन कोटियाँ हो सकती हैं । इन साधुओ मे कुछ लोग तो ऐसे है जो काम-सुख मे बार बार निमग्न होते हुए विशुद्धबोधि की प्राप्ति की कामना रखते हैं। उनका प्रयत्न ठीक उसी प्रकार का है जैसे कोई पुरुष गीली अरणी को बार बार जल मे भिगोकर उसे मथकर अग्नि निकालना चाहता है। ऐसे लोगो को जिनका चित्त काम-सुख के राग से रजित है, बोधि प्राप्त होना असभव है। दूसरे ऐसे लोग हैं जिनका चित्त कभी काम-भोग

मे अनुरक्त हो गया था, पर जिन लोगो ने अभ्यास और वैराग्य द्वारा उसे हटाकर योगसाधन का प्रयत्न करना प्रारभ किया और कर रहे हैं। ऐसे लोगों का प्रयत्न उस पुरुष की नाईं है जो गीली लकड़ी को अरणी से मथकर अग्नि निकालना चाहता है। ऐसे लोग यदि लगकर श्रम करे तो समाधि–सिद्धिपूर्वक प्रज्ञा लाभ कर सकते हैं और उन्हें सुगमता से सफलता प्राप्त हो सकती है। तीसरे वे लोग है जिनके चित्त काम-भोग की तृष्णा और रागादि से अभिषिक्त नही है और जो योगाभ्यास द्वारा प्रज्ञा की प्राप्ति का प्रयत्न कर रहे हैं। इन लोगों का प्रयत्न ठीक उस पुरुष की नाईं है जो सूखे काठ की अरणी से मथकर आग निकालना चाहता है। ऐसे लोग यदि श्रम करे तो रागादि के उन्मूलन होने से वे अवश्य प्रज्ञा लाभ कर सकते हैं।

यह विचार कर उन्होंने सोचा कि सब से पहले कायशुद्धि की आवश्यकता है और कायशुद्धि तप के बिना होना असवभ है। कायशुद्धि के बिना चित्त की शुद्धि नही होती और चित्त की शुद्धि के बिना विशुद्ध प्रज्ञा की प्राप्ति भी असभव है। वे गया से तपोभूमि की तलाश मे चले और उस पर्वत के इधर उधर फिर रहे थे कि निरजना नदी के किनारे उरुविल्व ग्राम मे पहुँचे। वह स्थान निरजना नदी के किनारे अत्यत मनोहर और समथल था। वहाँ पर कुछ सुदर पेड भी थे जिन पर लताएँ चढी हुई थी, और निरजना का घाट भी स्नानादि के योग्य था और जल शुद्ध तथा वेग-रहित था। वह स्थान गौतम ने सब प्रकार से योगसाधन के

उपयुक्त पाया। उनका चित्त अत्यत प्रसन्न हुआ। वहाँ वे घोर तपश्यर्य्या करने का सकल्प करके रहने लगे। उन्होने चाद्रायणादि कृच्छ्र व्रतो को ग्रहण किया और अपने शरीर को व्रतचर्य्या से अत्यत कृष कर उष्ण काल मे पचाग्नितपन और शीतकाल में नग्न रहकर शीतोष्ण सहन इत्यादि परम दुष्कर तप करते हुए भैक्ष्यचर्य्या का भी परित्याग कर दिया, और वे मिर्च, तडुल वा तिल आदि पर, जो उन्हें बिना माँगे वहीं * मिल जाते थे, रहने लगे। जाडे के दिनो में वे अपने श्वास प्रश्वास का निरोध कर प्राणो को इतना पीडित करते थे कि उनके शरीर से पसीने की धारा बहने लगती थी। उन्होने जब अपने नासारध्र और मुख-विवर को बद कर प्राणो की गति का निरोध किया और जब प्राणों के निकलने के प्रधान मार्ग बद हो गए, तब उन्होने कानों के मार्ग से निकलने की चेष्टा की। इस प्रकार जब वायु के प्रपीडन से उनके कानो मे तुमुल शब्द होने लगे, तब उन्होंने अपने कानो को भी बंद कर लिया। उन्होने प्राणवायु को बलपूर्वक ग्रहण कर ब्रह्माड में रोका और उसके गतिनिरोध से स्फाणक नामक ध्यान की भूमि में प्रवेश किया। इस प्रकार जाडे, गरमी, वर्षा आदि ऋतुओं में नग्न, निराहार और अपरिच्छद रहकर छ वर्ष तक उन्होने घोर

---

*ललितविस्तर में लिखा है कि बलगुप्ता, प्रिया, सुप्रिया, विजयसेना, अति मुक्तकमला, सुंदरी, उलविल्लिका, जटिलिका और सुजाता नाम की कन्याए गौतम को कभी कभी मिर्च, चावल और तिल आदि दे जाती थीं और वे उन्हीं को खाकर तप करते थे।

तप का अनुष्ठान किया। समाधि-अवस्था मे उनका शरीर मृतवत् वा पाषाणमूर्तिवत् हो गया।

शुष्कमासरुधिरचर्मस्नाय्वस्थिकाश्च अवशिष्टा ।
उदर च पृष्ठिप्रदेशे विनिविश्यते वर्तिता यथा वेणी ।

मास और रक्त सूख गए, केवल चमडा, नसे और हड्डियाँ रह गई । पेट पृष्ठिदेश मे सिमटकर चोटी की तरह बल खा गया।

जब इस प्रकार घोर अनशन व्रत करने से गौतम अत्यत कृश और बलहीन हो गए, तब उन्हे यह अनुभव हुआ कि केवल शरीर को कष्ट देने से समाधि की सिद्धि नही हो सकती। जो पुरुष स्वय अशक्त है, वह परम बलवान् मन को कैसे वशीभूत कर सकता है। गीता मे भगवान् ने कहा है—

नात्यश्नतस्तु योगोस्ति न चैकातमनश्नत ।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥
युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दु खहा ॥

हे अर्जुन ! योग की सिद्धि न अत्यत भोजन करनेवाले ही को होती है और न नितात अन्न जल त्यागकर अनशन व्रत करनेवाले ही को होती है। जो सदा अधिक सोया करता है और जो बहुत जागता है, वे दोनो योग के अधिकारी नही हैं। योग का अधिकारी वही पुरुष है जिसके आहार-विहार नियमित हैं, जो कर्म मे युक्त चेष्टा करता और जो मात्रानुसार सोता और जागता है। ऐसे ही लोगों को दु खों का नाश करनेवाला योग सिद्ध होता है।

गौतम का चित्त अनशन व्रत से हट गया और उन्होंने मिता-हारी होकर समाधि प्राप्त करने का सकल्प किया। पर वे करते तो क्या करते। उनके शरीर मे इतनी शक्ति कहाँ थी कि वे अपने स्थान से हिल डोल सकते? उनके शरीर पर वस्त्र भी न थे, वे नितात अपरिच्छद नग्न थे। यह सोच उन्हें पहले अपने परिच्छद की चिंता पडी। निदान वे अपने स्थान से किसी प्रकार उठे, पर उठते ही गिर पडे और अपने पैरों के बल चलने में असमर्थ हुए। फिर वे बडी कठिनाई से हाथों के सहारे खिसकते हुए बडी देर मे पास ही के एक श्मशान मे गए। उस श्मशान मे उन्हें किसी मुरदे का एक फटा पुराना टाट का टुकडा मिला, जिसे लोगों ने उसे जलाने के समय वहाँ फेंक दिया था। उसे उन्होंने उठा तो लिया, पर अब उसे धोने की चिता पडी। थोडी देर वहाँ विश्राम कर उन्होंने फिर वहाँ से खिसकना प्रारभ किया और धीरे धीरे कई जगह दम लेते हुए वे निरजना नदी के किनारे पहुँचे। दैवयोग से वह घाट भी कुछ ऊँचा था। वे उतरने मे कई जगह गिर भी पडे। पर वे उन सब कठिनाइयो को झेलते हुए नदी मे उतरे और येन केन प्रकारेण उन्होंने उस टाट के टुकडे को एक पत्थर पर पछाड़ कर साफ किया। वहाँ उन्होने निरजना के विमल जल मे स्नान कर उस टाट के टुकडे की कोपीन लगाई और वहाँ से वे गाँव मे भिक्षा के लिये गए।

गौतम जब गावँ में गए, तब दैवयोग मे जिस द्वार पर उन्होंने भिक्षा की प्रार्थना की, वह उन्ही कन्याओ मे से एक के घर का द्वार

था, जो निरजना के किनारे उन्हे चावल आदि दे आती थीं। उस कन्या ने गौतम को मूँग का जूस बनाकर दिया और उनको बडी सेवा-शुश्रूषा की। और क्रमश जब गौतम के शरीर मे कुछ बल का संचार हुआ, तब उन्हे खिचडा आदि खिलाकर इस योग्य किया कि वे अपने पैरो के बल खडे हो सकने लगे। इस प्रकार वे अपना विगत स्वास्थ्य लाभ कर निरजना नदी के किनारे भैक्ष्यचर्य्या करते हुए विचरने लगे।

गौतम के स्थान त्याग कर चले जाने पर पचभद्रवर्गीय ब्रह्मचारी जो उनके साथ गिरिव्रज से आए थे और वही भिक्षा करते हुए उनके पास रहते थे, गौतम को भीरु जान उनका साथ छोड़ काशी चलने को उद्यत हुए। उन लोगो ने अपने मन मे कहा कि गौतम अत्यत समाधि-भीरु है, वह तप की कठिनाइयो को सहन नहीं कर सकता। फिर उसके लिये समाधि-सिद्धि और प्रज्ञालाभ होना नितात दुस्तर क्या, असभव हैं। यह सोच उन लोगो ने गौतम को वहाँ अकेला छोड़ काशी को प्रस्थान किया।

थोडे दिन भैक्ष्यचर्य्या करने से जब गौतम का स्वास्थ्य ठीक हो गया तब वे फिर मिताहारपूर्वक समाधि सिद्ध करने की चिता करने लगे। वे योगाभ्यास के लिये शास्त्रोचित पवित्र स्थान ढूँढ़ने लगे। एक दिन उन्होने निरजना नदी को पार किया तो उन्हे नदी के पास ही एक सुदर रम्य स्थान दिखाई पडा। वहाँ एक उत्तम अश्वत्थ का वृक्ष था * जिसे देख गौतम का मन अत्यत उत्साहित

* बुद्धवंशादि का मत है कि उस गाव का नाम सेनग्राम था और

हुआ। उस दिन वे उसी वृक्ष के नीचे सो रहे और दूसरे दिन अपने योगसाधन की सामग्री इकट्ठी करने के लिये गॉव मे गए। वहॉ उन्होने सुजाता नामक एक स्त्री के घर भिक्षा के लिये प्रार्थना की। दैवयोग से उस दिन उसके घर खीर पकी हुई थी। सुजाता ने

अश्वत्थ वृक्ष को लोग अजपाल कहते थे। बुद्धदेव प्रात काल जब सेनग्राम के पास पहुँचे तब उन्हें ज्ञात हुआ कि अभी सूर्य्योदय हुआ है भिक्षा का काल नही है, अत वे अजपाल वृक्ष के नीचे बैठ गए। सेनग्राम के एक पुरुष की, जिसका नाम महासेन था, सुजाता नाम की एक कन्या थी। उस कन्या ने प्रतिज्ञा की थी कि यदि मेरा विवाह योग्य पति से होगा और मुझे संतान लाभ होगा तो मैं अजपाल वृक्ष के नीचे वासुदेव को पायस अर्पण करूंगी। दैवयोग से सुजाता का मनोरथ पूर्ण हुआ और वह अपने पिता के घर आई थी और उस दिन अजपाल के नीचे पायस चढानेवाली थी। उसके पिता के यहा सहस्रों गौएं थीं और उसने उनमें से एक सहस्र गौओं का दूध लेकर दो सौ गौओं को, फिर उनके दूध को चालीस को और अत को चालीस का दूध आठ अच्छी गौओं को पिला उनका विशुद्ध दूध लेकर पायस बनाया था और प्रात काल ही अपनी दासी पूर्णा को अजपाल में सफाई करने के लिये भेजा था। पूर्णा जब अजपाल के नीचे आई तब वहा उसने महात्मा गौतम सिद्धार्थकुमार को बैठा हुआ पाया। पूर्णा उन्हें वहा देख अत्यंत आश्चर्यान्वित हुई। उसने समझा कि भक्तवत्सल वासुदेव स्वयं पायस भक्षण के लिये अजपाल के नीचे आ विराजे हैं। उसने वह समाचार सुजाता से जाकर कहा। सुजाता कुतूहलवश अपनी दासी पूर्णा के साथ अजपाल वृक्ष तले पहुंची और महात्मा गौतम को वृक्ष के नीचे देख उसने उन्हें बड़ी भक्ति से पायस समर्पण किया। गौतम के पास पात्र नहीं था, अत उन्होंने पायस का थाल सुजाता के हाथ से ले लिया। उस पायस के गौतम ने उनचास ग्रास बनाए और खाकर उस थाल को निरंजना नदी में फेंक दिया।

उन्हें एक कटोरा भर खीर भिक्षा में दी । गौतम उसे ले निरंजना के किनारे आए और उन्होंने एक सुंदर घाट पर स्नान किया और वस्त्र बदलकर उस खीर के आँवले बराबर उनचास ग्रास बनाए। गौतम उन ग्रासों को खा वहाँ विश्राम कर सायंकाल के समय बोधिवृक्ष की ओर चले। मार्ग में उन्हें एक श्रोत्रिय ब्राह्मण मिला जो कुशा का बोझ सिर पर लिए सामने से उनकी ओर आ रहा था। श्रोत्रिय ने गौतम को देख कुश के आठ पूले उन्हें अर्पण किए और गौतम ने उन्हें सहर्ष स्वीकार किया। वे कुश के पूलों को लिए हुए बोधिवृक्ष के नीचे आए और वृक्ष की जड़ के चबूतरे पर वृक्ष के मूल के पूर्व ओर कुश बिछाकर वहाँ आसन मारकर यह संकल्प कर पूर्वाभिमुख बैठे—

इहासने शुष्यतु वा शरीरं
त्वगस्थिमांसं विलयं प्रयातु ।
अप्राप्य प्रज्ञां बहुजन्मदुर्लभां
नैवासनात्कायमिदं चलिष्यति ॥

(१०) मार-विजय

त्यक्त्वा येन ससागरा वसुमती रत्नान्यथानेकश'
प्रासादाश्च गवाक्षहर्म्मिकवरा युग्माश्च यानानि च ।
व्योमालङ्कृत पुष्पदाम रुचिरा उद्यानकूपा सभा
हस्तापादशिरोत्तमागनयन सो बोधिमडे स्थित ।

जब गौतम बुद्ध बोधिवृक्ष के नीचे आसन लगाकर समाधि में बैठे, तब उस समय उनके चित्त में अनेक प्रकार के सकल्प-विकल्प उत्पन्न हुए और उनकी समाधि में अनेक प्रकार की बाधाएँ पडी। योग-शास्त्र के देखने से ज्ञात होता है कि योगी को योगानुष्ठान में अनेक प्रकार की आपत्तियाँ पडती हैं जिन्हें योग शास्त्र-वालों ने अतरा * के नाम से लिखा है। इन आपत्तियों को सहन कर और धैर्य्य धारण कर समाधि सिद्ध करना और उसके अवान्तर सप्रज्ञात असप्रज्ञात आदि भेदो को चचलता-रहित हो साक्षात् कर निर्वीज समाधि तक पहुँचना ही साधक का परम कर्तव्य माना गया है। मन को एकाग्र करना साधारण काम नहीं है। गीता में कहा है—

असशय महाबाहो मनोदुर्निग्रह चलम् ।
अभ्यासेनतु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते

---

* व्याधिस्त्यानसशयप्रमादालस्याविरतिभ्रातिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेंतरायाः । यो० १।३०

असयतात्मना योगो दुष्प्राप्य इति मे मति ।
वश्यात्मना तु यतता शक्यो वाप्तुमुपायत ॥

हे अर्जुन ! इसमे सशय नही है कि मन का एकाग्र करना अत्यत कठिन है, फिर भी वह अभ्यास और वैराग्य से रोका जा सकता है। मेरी मति है कि जिस योगी का मन वश मे नही है, योग उसके लिये दुष्प्राप्य है। पर जिसका मन वशीभूत है, यदि वह प्रयत्न करे तो प्राप्त कर सकता है।

योग-शास्त्र मे योगियो के चार * भेद माने गए हैं (१) प्राथमिक वा प्रथमकल्पिक जिसने केवल अभ्यास किया है और

---

* स्थान्युपनिमन्त्रणे सगस्मयाकरणंपुनरनिष्टप्रसगात् । ३ । ५१ चत्वार खलु अमी योगिनः प्रथमकल्पिक, मधुभूमिक, प्राज्ञज्योति । अतिक्रातभावनीयश्चेति । तत्राभ्यासी प्रवृत्तमात्रज्योति प्रथमः । ऋत-भरप्रज्ञो द्वितीय । भूतेन्द्रियजयी तृतीयः । सर्वेषु भावितेषु भावनीयेषु कृत-रक्षाबंध कृतकर्तव्यसाधनादिमाञ्चतुर्थ । यस्त्वतिक्रातभावनीयस्तस्य चित्त-प्रतिसर्ग एकोऽर्थ । सप्तविधोऽस्य प्रातभूमिप्रज्ञा । तत्रमधुमतींभूमिं साक्षा-त्कुर्वतो ब्राह्मणस्य स्थानिनो देवा सत्वशुद्धिमनुपश्यत स्थानैरुपनिमत्र-यते भो इहास्यतामिह रम्यतां, कमनीयोयंभोग, कमनीयेय कन्या, रसाय-नमिदं जरामृत्यु बाधते, वैहायसमिदं यानं, अमीकल्पद्रुमा, पुण्या मंदा-किनी, सिद्धा महर्षय उत्तमाअनुकूला अप्सरस, दिव्य श्रोत्रचक्षुषी, वज्रो-पम काय स्वगुणै सर्वमिदमुपार्जितमायुष्मता, प्रतिपाद्यतामिदमक्षयम-जरममरस्थान देवाना प्रियमिति । एवमभिधानः सगदोषमभावयेत्, घोरेषु संसारागारेषु पच्यमानेन मया जननमरणाधकारे विपरिवर्तमानेन कथंचि-दासादित क्लेशतिमिरविनाशी योगप्रदीप तस्यचैते तृष्णायोनयो विषय-मृगतृष्णाया वंचितस्तस्यैव पुन प्रदीप्तस्य ससाराग्नेरात्मानमिंधनीकुर्या-मिति । स्वस्ति व स्वप्नोपमेभ्य कृपणजनप्रार्थनीयेभ्यो विषयेभ्य इत्येवं

जिसकी ज्योति प्रवृत्तमात्र हो, (२) ऋतभरप्रज्ञ वा मधुभूमिक जिसने ऋतभर नाम की प्रज्ञा, जो सबीज समाधि की चतुर्थ निर्विचार अवस्था मे प्राप्त होती है, प्राप्त कर ली हो, (३) प्रज्ञा-ज्योति वा भूतेद्रियजयी अर्थात् जिसने सयमादि से भूतेद्रियो को जीत लिया हो और (४) अतिक्रात भावनीय जिसने अपनी समस्त भावित और भावना करने योग्य भावनाओं को रक्षाबध कर अपना कर्तव्य कर लिया हो और अपने सब साधनो को सपन्न कर लिया हो। इन चारो प्रकार के योगियो मे स्थानीय देवगण, दूसरे प्रकार के योगी के पास, जब वह मधुभूमि मे पहुँचता है, आकर उसे अनेक प्रकार के भोग-ऐश्वर्य्य आदि की प्रलोभना दिखाते हैं और उसे भ्रष्ट करने की चेष्टा करते हैं। उस समय यदि योगी उनकी प्रलोभनाओं में न पडा तो वह निर्वीज समाधि प्राप्त कर कैवल्य पद को पहुँच जाता है, अन्यथा वह फिर जन्म मरण के क्लेश मे फँसकर दु ख मे पड़ता है।

इससे इस बात का अनुमान होता है कि योग की समाधि में जो अडचने पडती हैं, उनमे कामना वा इच्छा सब से प्रबल बाधक है, और यदि कोई पुरुष कामना को अतिक्रमण कर ले जाय तो वह

निश्चितमति समाधि भावयेत्। संगमकृत्वा स्मयमपि न कुर्यात् 'एवमह देवानामपि प्रार्थनीय' इति, स्मयादयं सुस्थितंमन्यतया मृत्युना केशेषुगृहीत-मिवात्मान न भावयिष्यति, तथाच अस्य छिद्रान्तरप्रेक्षी नित्य यत्नोपचर्य्यं प्रमादोलब्धविवर क्लेशानुत्त भविष्यति, तत पुनरनिष्टप्रसंग, एवमस्य सगस्मयावकुर्वतो भावितोऽर्थों दृढीभविष्यति, भावनीयश्चार्थोऽभिमुखी-भविष्यतीति।

समाधिसिद्ध हो सकता है। सचमुच कामना एक ऐसा मनोवेग है जो मन को सदा चचल किए रहता है। इसी को योगशास्त्र में स्थानिक देव, बौद्ध ग्रथों मे मार, पुराणो मे इद्र, जद मे अहमन तथा सेमिटिक ग्रथों मे शैतान कहा गया है।

बौद्ध काव्यो मे कहीं * विभ्रम, हर्ष और दर्प नामक मार के तीन पुत्र तथा रति, प्रीति और तृष्णा नाम की तीन कन्याएँ, कहीं काम, रति, क्षुत्पिपासा तृष्णा, इच्छा, भय, विचिकित्सा, क्रोध, मत्त, लोभ, श्लोक, सस्कार, मिथ्यालब्धयश, अभिमान, ईर्ष्या इत्यादि इसकी सेनाएँ † मानी गई है और इनका राजा मार नामक कहा गया है। काव्यो मे मार के साथ गौतम का युद्ध बडी रोचकता के साथ लिखा गया है। यद्यपि मार ने गौतम को कई बार छकाना चाहा और उन्हें विषयभोग के अभिमुख करने के लिये अनेक प्रयत्न किए, पर गौतम उसके चक्कर मे न फँसे। इसने उनका पीछा कपिलवस्तु मे ही किया था और उनकी प्रव्रज्या मे अनेक प्रकार के विघ्न

---

* तस्यात्मजाविभ्रमहर्षदर्पास्तिस्रोरतिप्रीतितृषश्चकन्या।

बुद्धचरितकाव्य।

† कामस्ते प्रथमासेना, द्वितीया ते रतिस्तथा।
तृतीयाक्षुत्पिपासा ते तृष्णा सेना चतुर्थिका॥
पचमी स्त्यानमिद्धंते, भय षष्ठी निरुच्यते।
सप्तमी विचिकित्सा ते क्रोध मक्षौतथाष्टमी॥
लोभश्लोकौ च संस्कारो मिथ्यालब्धं च यद्यश।
आत्मान यश्चउत्कर्षेद्यश्च वध्वसयेत्परान्।
एषा नमुचि ते सेना कृष्णबन्धो प्रतापवान्॥

ललितविस्तर।

डालने चाहे थे। फिर जब उन्होने उरुविल्व में छ वर्ष तक घोर तप किया, तब भी उनसे कई बार उसने कहा कि "तू क्यो शरीर सुखाता है? तू दुर्बल हो गया है, अब तू मर जायगा। उठ, तू अपने घर जा। तू राजपुत्र है। तुझे राज्य-ऐश्वर्य्य भोगना चाहिए, न कि देह सुखाना।" पर गौतम ने उसका तिरस्कार ही किया। अत मे जब गौतम बोधिमूल मे अटल समाधि लगाने के लिये कुशासन पर आसन लगाकर बैठे, तब मार को भय हुआ कि अब मेरी गति का अवरोध हो जायगा। उसने अपने पुत्रो और पुत्रियो की सम्मति ली और सब ने उसे मना किया, पर दैववश उसने किसी की न सुनी और अपनी सारी सेना को एकत्र किया और वह अपने समस्त पुत्रों और पुत्रियो को सग ले हाथ मे पुष्पधनु ग्रहण कर पाँच बाण लिए बोधिमूल के पास आया। पहले उसने रति-प्रीति आदि को विघ्न डालने के लिये गौतम के पास भेजा। उन लोगो ने बारी बारी से उनके पास आकर उन्हें फुसलाना चाहा, और जब गौतम उनके फुसलान में न आए, तब मार ने अपनी सेना से अनेक प्रकार के विघ्न डलवाने चाहे। वे लोग नाना प्रकार के भयानक रौद्र रूप धारण कर उन्हें भयभीत करते थे। वायु तेज चली, पानी बरसा, बिजली चमकी, तडपी और गिरी, पेड उखड गए, तूफान आया, सब कुछ भौतिक उत्पात हुए, पर इससे न तो बोधि वृक्ष का एक पत्ता ही हिला और न गौतम ही अपने आसन से डिगे। अब मार ने एक और माया रची। उसने बहुतेरी अप्सराओं को भेजा जो अत्यत रूपयौवन-सपन्न होने पर भी उनके चारो ओर नगी

काम-कला करती हुई फिरने लगी। पर गौतम ने उनकी ओर दृष्टि उठाकर भी न देखा। अत मे जब मार थक गया, तब वह उनके सामने स्वय उपस्थित हुआ और उन्हें अनेक प्रकार के लौकिक आमोद-प्रमोद की प्रलोभना देने लगा, पर गौतम ने उसकी एक भी न सुनी। फिर उसने गौतम पर ताने मारना आरभ किया। उस ने कहा—"गौतम, तूने राज्य-सुख अवश्य भोग किया है, तू मोक्ष का अधिकारी कदापि नही हो सकता। तूने पुण्य भी सचय नही किया है और न तूने राजा होकर यज्ञ ही किया है। किस बल पर तू मोक्ष की कामना कर मुमुक्षु बन बोधिमूल के नीच बक-ध्यान लगा कर बैठा है ?" इस प्रकार मार की बाते सुन गौतम ने अग्नि, वायु, सूर्य, चद्र, दिशा, प्रदिशा आदि देवताओ को साक्षी देते हुए पृथिवी पर टकार मारी और कहा—

यज्ञो मया यष्टस्त्वमिहात्र साक्षी
निरर्गल. पूर्वभवेऽनवद्य ।
तवेह साक्षी न तु कश्चिदस्ति
किञ्चित्प्रलापेन पराजितस्त्वम्
इय मही सर्वजगत्प्रतिष्ठा
अपक्षपाता सचराचरे समा
इग प्रमाण मम नास्ति मे मृषा
साक्षी त्वमस्मिन्मम सप्रयच्छतु ॥

मैंने यज्ञ किया, इसके लिये ये सब साक्षी हैं। पर निरर्गल और अनेक जन्मों से अनवद्य, तेरा कोई साक्षी नही है। यह पृथिवी

जिस पर सारे जगत् की स्थिति है और जो पक्षपात-रहित सब चराचर को समान दृष्टि से देखती है, मेरी साक्षी है। भगवति वसुधरे! मै सत्य कहता हूँ, इसमे तू साक्षी दे।

गौतम का पृथ्वी को टकारना था कि पृथिवो से एक तुमुल शब्द हुआ और मार यह कहता हुआ निस्तेज पृथिवी पर गिर पडा—

दु खं भय व्यसनशोकविनाशन च,
धिक्कारशब्दमवमानगत च दैन्यम्।
प्राप्तोस्मि अद्य अपराध्य सुशुद्धसत्वे
अश्रुत्व वाक्य मधुर हितमात्मजानाम्

(११) अभिसबोधन

मार विजित्य सबल स हि पुरुषसिहो
ध्यानसुखमभिमुखमभितोऽपि शास्ता।
त्रैविद्यता दशवलेन यदा हि प्राप्ता
सकम्पिता दशदिशा बहुक्षेत्रकोट्य ॥

धीर गौतम अनेक प्रकार के उत्तेजन मिलने पर भी काम के वश मे न आए और उन्होने उसके जड-मूल को नाश कर दिया। काम के नष्ट होने से उनका मन एकाग्र हो गया। सब चचलता जाती रही। उन्होने प्रबल दुर्दम मन को अपने दीर्घ-कालिक निरतर अभ्यास से दमन कर काम के नाश से उत्पन्न अचल और ध्रुव वैराग्य से चित्त की वृत्तियो का निरोध किया। चित्त के एकाग्र होने पर उनमे एक अलौकिक आनद का सचार हो गया और उनके लिये समाधि * का मार्ग साफ हो गया। उनके राग द्वेष आदि नष्ट हो गए, उनका चित्त शुद्ध, विमल, चचलतारहित और शात हो गया।

चित्त की वृत्ति को एकाग्र कर उन्होने समाधि लगाई और वे सुगमता से सप्रज्ञात समाधि (सवितर्क ध्यान) मे मग्न हुए।

---

* बौद्धों के हीनयान के ग्रन्थों में समाधि को ध्यान कहा है और सवितर्क, अवितर्क, निष्प्रीतिक और अदुःखासुखध्यान उसके भेद माने गए है, जिन्हें पतञ्जलि ने योग शास्त्र में सप्रज्ञात, असप्रज्ञात, सवीज और निर्बीज समाधि कहा है। महायान के ग्रन्थों में समाधि की अनेक भूमिया मानी गई हैं।

सप्रज्ञात * समाधि से वितर्क, विचार, आनद और स्मिता आदि का क्रमश निरोध कर निर्वितर्क, सविचार, निर्विचार आदि समाधियो में होते होते हुए वे असप्रज्ञात † समाधि मे पहुँचे। सद्-वृत्ति का ग्रहण और असदवृत्ति का त्यागकर उन्होंने सप्रज्ञात समाधि (सवितर्कध्यान) लाभ किया। फिर क्रमश सद् और असद् उभय वृत्तियो के विरोध को उपशम कर वे असप्रज्ञात अवस्था को पहुँचे। फिर प्रीति और अप्रीति दोनो की उपेक्षा करते हुए उन्होंने ‡ सबीज समाधि वा निष्प्रीतक ध्यान लाभ किया। फिर क्रमश दु ख और सुख का उपशमन कर वे विशुद्ध निर्बीज समाधि मे पहुँचे और उन्हें अदु खासुखध्यान का आनद प्राप्त हुआ।

आषाढ की पूर्णिमा की पवित्र रात्रि ससार में सदा आदर की दृष्टि से देखी जाने योग्य है। यह वही रात है जिस को उरुविल्व ग्राम के पास महाबोधि वृक्ष के नीचे निर्बीज समाधि मे मग्न कुमार सिद्धार्थ को बोधि प्राप्त हुई थी, जिसके कारण वे गौतम से

---

* वितर्क विचारानदास्मितानुगमात् संप्रज्ञात । १ । १७ क्षीणवृत्ते-रभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थतदजनता समापत्तिः। तत्रशब्दार्थ ज्ञानविकल्पै सकीर्णासवितर्कासमापत्ति । स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थ मात्रनिर्भासानिर्वितर्का । एतयैवसविचारानिर्विचाराचसूक्ष्मविषयाव्याख्याता ४० – ४३

† विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्व सस्कारशेषोऽन्य [असप्रवृति] १ । १८

‡ सूक्ष्मविषयत्वचालिगपर्यवसानम् । ता एव सबीज समाधि । निर्विचारवैशारद्ये अध्यात्मप्रसाद । ऋतभरातत्रप्रज्ञा । श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्य विषयाविशेषार्थत्वात् । तज्ज संस्कारोन्यसंस्कारप्रतिबंधी । तस्यापिनिरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीज समाधि । ४४ । ५०

गौतम बुद्ध कहलाए। कहते हैं कि चद्रमा मे अमृत रहता है और वह अपनी किरणो से उसे बरसाता है। पर यह बात कवियो की कविता और पुराणो की गाथा मे ही थी। किसी ने कभी आकाश से अमृत की धारा बरसते न देखी और न सुनी ही। पर यह आषाढी पूर्णिमा सचमुच एक ऐसी रात थी जिस मे गौतम बुद्ध के ऊपर बोधि रूपी अमृत की वृष्टि हुई। वे बुद्ध हुए और अपने इस लब्ध ज्ञानामृत से सहस्रों प्यासी आत्माओ को तृप्त करके उनको शाति प्रदान की।

उस रात के पहले पहर मे गौतम को दिव्य चक्षु उत्पन्न हुए और उन्होने सम्यक् दृष्टि लाभ की। इन दिव्य चक्षुओं के प्राप्त होने से उन्होने ऊँचे नीचे, सुवर्ण, दुर्वर्ण, सुगत, दुर्गत सब प्राणियो को देखा कि बहुतेरे लोगो को मानसिक, वाचिक और कायिक पापो से आर्य्य धर्म–विरोधी मिथ्या दृष्टि, मिथ्या कर्म और मिथ्या धर्म प्राप्त हुआ है जिससे वे मरण से अपाय, दुर्गति, विनिपात आदि नरको में पडकर दु ख भोग रहे है। और अनेक लोगो को मानसिक, वाचिक और कायिक सुचरित से सम्यग्दृष्टि, सम्यक्कर्म और सम्यक्धर्म प्राप्त हुआ है जिनसे वे सुगति स्वर्ग लोक मे सुख भोग रहे है। उन्हे सब प्राणी इस ससार के प्रबल कर्मबधन मे जकड़े हुए दिखाई पड़े। इसे बौद्ध लोग दिव्य-चक्षुज्ञान-दर्शन-विद्या कहते हैं। इससे गौतम की आँखों के सामने से तम का आवरण दूर हो गया और उन्हें आलोक ज्ञान प्राप्त हुआ। अब दूसरा पहर आया। इस समय उन्हें पूर्वानुस्मृतिज्ञान का दर्शन प्राप्त हुआ।

वे इस ज्ञान की प्राप्ति से जातिस्मर हो गए और सैकडों सहस्रों जन्मों की बातें उन्हे स्मरण हुई कि मैं अमुक जन्म में अमुक योनि को प्राप्त हुआ, इत्यादि। फिर रात के तीसरे पहर में उन्हें आश्रवज्ञानदर्शन नामक तीसरी विद्या प्राप्त हुई। इस ज्ञान के प्राप्त होने पर उन्हें समस्त ससार के प्राणी अविद्यांधकार-ग्रस्त दिखाई पडे। वे अपने मन में कहने लगे कि ससार मे लोग उत्पन्न होते हैं, जीते हैं, मरते हैं, फिर ऊँची नीची गति को प्राप्त होते हैं, पर अज्ञानवश इस बडे दु:ख के स्कध का उन्हे कुछ भी ज्ञान नहीं है *।

अब वे इन दु खों का निदान सोचने लगे तो उन्हें ज्ञात हुआ कि जरा मरण दु खादि का कारण जन्म है। यदि जन्म न होता तो न दु ख होता और न जरा-मरण होता। पर जन्म क्यों होता है ? इसका हेतु क्या है ? सोचने से उन्हें मालूम हुआ कि जन्म का कारण धर्म-अधर्म, पुण्य-पाप है, जिसे भव कहते हैं। क्योंकि इन्हीं के वशीभूत होकर प्राणियों को भोग के लिये जन्म ग्रहण करना पड़ता है। पर भव कहाँ से आता है ? विचार करके उन्होंने निश्चय किया कि भव की उत्पत्ति उपादान अर्थात् कर्म से होती है। यदि कोई शुभाशुभ कर्म न करे तो न उसे धर्म होगा और न अधर्म, और जब धर्म और अधर्मरूप भव ही नहीं, तब जन्म क्यों और कहाँ से होगा। फिर वे उपादान का कारण अन्वेषण करने

* प्रज्ञा प्रासादमारुह्य अशोच्य श्शोचतोज्जनान् ।
भूमिष्ठानिवशैलस्थ सर्वान् प्राज्ञानुपश्यति ॥

लगे तो उन्होने निश्चित किया कि उपादान का हेतु तृष्णा है। तृष्णा ही मे फँसकर मनुष्य शुभाशुभ कर्म करता है। तृष्णा बिना कोई किसी कर्म मे प्रवृत्त होता ही नही। अब तृष्णा क्यों होती है ? इसका उत्पादक कौन है ? जब इस पर वे विचार करने लगे, तब उन्हें साक्षात् हुआ कि वेदना ही इस तृष्णा का कारण है, जिसे सुख दु ख आदि कहते हैं। पर वेदना की उत्पत्ति का हेतु उन्हें अन्वेषण करने से स्पर्श * ही प्रतीत हुआ। क्योंकि यदि स्पर्श, गध, रूपादि न हों तो सुख दु ख आदि वेदनाएँ कहाँ से हो ? पर स्पर्शादि कहाँ से होते है ? स्पर्शादि का कारण षडायतन अर्थात् स्पर्शादि के प्रधान आधारभूत श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण और मन ही हैं ॥ इस षडायतन का कारण विचारपूर्वक नामरूप, फिर नामरूप का कारण विज्ञान, विज्ञान का कारण सस्कार और सस्कार का कारण अविद्या उन्होने उत्तरोत्तर निर्धारित किया। इस प्रकार गौतम ने दु ख, समुदय, निरोधगामिनि और प्रतिपद नामक चार आर्य्य सत्यों का साक्षात्कार किया और उनको समस्त ससार कार्य्य-कारण के सूत्र मे बद्ध ओतप्रोत दिखलाई देने लगा। उस समय प्रात काल जब उषा का आगम हुआ और पूर्व दिशा मे भगवान् भुवनभास्कर निकलने की तैयारी करने लगे, तब उन्हे सम्यक्सबोधि प्राप्त हुई और उनका अत करण बोधिज्ञान से परिपूर्ण हो गया। वे बुद्ध हुए। उस समय वे ब्रह्मानद मे निमग्न हो गए और यह उदानगान करने लगे—

---

* बौद्ध दर्शनों में इंद्रियों के विषयों को स्पर्श कहते हैं।

अनेक जाति ससार सधाविसमनिब्बस ।
गहकारक गवेसतो दु खजाति पुन पुन ।
गहकारक दिट्ठोसि पुन गेह न काहसि ।
सब्बा ते फासका भग्गा गहकूट विसकित ।
विसखारगत चित्त तण्हान खयमज्झगा । *

---

* मैं अनेक जन्म तक ससार में जन्मों के दु खों को सहता हुआ इस घर के बनानेवाले को ढूढ़ता रहा, पर वह मुझे न मिला । हे घर के बनानेवाले ! मैंने आज तुझे देखा । अब तू फिर दूसरा घर न बना सकेगा । मैंने तो तेरे सब सामान तोड ताड़ डाले । तेरा गृहकूट ध्वस कर दिया । मेरा चित्त अब सस्कारहीन हो गया और तृष्णा का भी क्षय हो गया ।

(१२) सप्तसप्ताह

करतलसदृशो भूत् सुस्थिता मेदनीय
विकसितशतपत्राश्चोद्गता रश्मिमन्त ।
अमरशतसहस्रा ओनमी बोधिमडे
इमु प्रथम निमित्त सिहनादे हि दृष्ट ॥

बोधिज्ञान प्राप्त होने पर महात्मा बुद्धदेव सात सप्ताह तक बोधिद्रुम के आस पास भिन्न भिन्न स्थानों मे एक एक सप्ताह तक विचरते रहे। पहले सप्ताह में तो वे बोधिद्रुम के नीचे उसी स्थान पर रहे जहाँ उनको बोधिज्ञान लाभ हुआ था, और वहाँ बैठकर वे द्वादश निदान * के प्रतीत्य समुत्पाद-तत्व का विचार करते रहे। ललितविस्तर का मत है कि इस सप्ताह मे उन्होंने प्रीत्याहारव्यूह नामक समाधि का अनुष्ठान किया †। दूसरे सप्ताह मे वे बोधि पर्य्य क

---

* द्वादश निदान ये हैं—अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नामरूप, षडायतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, जाति, जरादिदुःख, स्कंध। यथा -अविद्याप्रत्यया, सस्कारा संस्कारप्रत्ययं विज्ञान, विज्ञानप्रत्यय नामरूप, नामरूपप्रत्यय षडायतनं, षडायतनप्रत्ययः स्पर्श, स्पर्शप्रत्यया वेदना, वेदनाप्रत्यया तृष्णा, तृष्णाप्रत्ययमुपादान, मुपादानप्रत्ययो भवो, भवप्रत्ययःजाति जातिप्रत्यया जरामरणशोक परिवेददु खदौर्मनस्योपायाश्चा सम्भवन्त्येव केवलस्य महतो दुःखस्कंधस्य समुदयो भवति समुदय ।

† ललितविस्तर का मत है कि महात्मा बुद्धदेव दूसरे सप्ताह में चक्रमण करते रहे और तीसरे सप्ताह में वे अनिमेष होकर बोधिमंड का निरीक्षण करते बैठे रहे। यथा – 'अभिसबुद्ध बोधिस्तथागत प्रथमे सप्ताहे

से उठकर बोधिवृक्ष के पूर्वोत्तर कोण में १४ धनु पर जिसे अभिनिमेष स्थान लिखा है, जाकर बोधि वृक्ष की ओर मुँह करके एक सप्ताह तक अनिमेष होकर बैठे रहे । तीसरे सप्ताह में अभिनिमेष स्थान से पाँच धनु बोधि वृक्ष की ओर चलकर पूर्व से उत्तर और उत्तर से पूर्व को एक सप्ताह तक चक्रमण * करते रहे। चौथे दिन वे चक्रमण से रत्नागृह वा रत्नाघर को गए। यह स्थान बोधि द्रुम से उत्तर पश्चिम में १० धनु पर है । यहाँ महात्मा बुद्धदेव ने प्राचीन बुद्धों के उपदेश-क्रम पर विचार किया । ललितविस्तर का मत है कि चौथे सप्ताह में वे रत्नाघर से चलकर अजपाल अश्वत्थ के नीचे गए। यह अजपाल अश्वत्थ महाबोधि वृक्ष से पूर्व दिशा में ३२ धनु पर है। यहीं महात्मा बुद्धदेव ने बोधि-प्राप्ति के लिये बोधिद्रुम के नीचे आने के पूर्व वैशाख पूर्णिमा के प्रात काल के समय सुजाता के हाथ से भिक्षा ली थी । कहते हैं कि यहाँ पर फिर मार की पुत्रियो ने † आकर उन्हें डिगाने का प्रयत्न आरभ

तत्रैवासने स्थात् इहऽमयानुत्तरा सम्यक सबोधिरभिसंबुद्धा इहमयाऽनबर-ग्रांह्य जातिजरामरणाद्दु खस्यान्त कृति इति । द्वितीयें सप्ताहे तथागतो दीर्घचंक्रमणं चक्रमतेस्म । त्रिसाहस्रमहासाहस्रलोक धातुमुपगृह्य । तृतीये सप्ताहे तथागतोऽनिमिष बोधिमंडमीक्षतेस्म । इहाऽमयाऽनुत्तरा सम्यक् संबोधिरभिसबुद्धा अनवराग्राह्य जरामरणाद्दु खस्यात , कृत । इति २४ अध्याय ।

* बौद्ध ग्रथों में टहलने को चंक्रमण कहते हैं।

† ललितविस्तर का मत है मार ने चौथे सप्ताह में जब वे दीर्घचक्रमण कर रहे थे, आकर विघ्न करना प्रारंभ किया और अपनी कन्याओं रति, अरति, और तृष्णा को भेजा, और जब वे उन्हें वश नहीं कर सकीं तब वे मार के पास जाकर बोलीं- --

किया, पर गौतम बुद्ध का मन विचलित न हुआ। जब वे अपना सब कल बल कर थक गईं, तब गौतम ने हँसते हुए कहा—

यस्स जित नावजीयति जितमस्स नो याति कोचि लोके।
तं बुद्धमनतगोचर अपद केन पदेन नेसथ ?
यस्स जालिनी विसत्तिका तराहा नत्थि कुहिम्हि नेत वे।
त बुद्धमनतगोचर अपद केन पदेन नेसथ ?।

जिसके द्वारा जीते जाने पर फिर दूसरो के जीतने को नही रहते और जिसके जीतने पर फिर कोई पीछे जीतने को रह ही नहीं जाता, उस अनतगोचर अपद बुद्ध को हे तृष्णा आदि, तुम किस पद वा उद्योग से खींच सकती हो ? जिसको विशक्ति के जाल में फँसानेवाली तृष्णा फिर कहीं नही ले जा सकती, उस अनतगोचर अपद बुद्ध को हे तृष्णा आदि, तुम किस पद को ले जा सकती हो ?

यह बात सुनकर मार की कन्याएँ हारकर जहाँ से आई थी, वहीं चली गईं। यहीं पर उनके पास आकर एक ब्राह्मण ने यह प्रश्न किया कि "गौतम! ब्राह्मण किसे कहते हैं ?" वह ब्राह्मण जाति-अभिमान में इतना चूर रहता था कि ब्राह्मण के अतिरिक्त दूसरे वर्ण के मनुष्यों से सिवाय हूँ हूँ करने के स्पष्ट शब्दो में

सत्य वदसि नस्तात न रागेण स नीयते,
विषयं मे ह्यतिक्रान्तस्तस्माच्छोचामहे भृशम्।
वीक्ष्येत यदसौ रूप यदस्माभिर्विनिर्मितम्,
गौतमस्य विनाशार्थं ततोऽस्य हृदयं स्फुटेत्।
तत्साधुनस्तातेद जराजर्जरशरीरमतर्पोपय।
यह सुन मार ने कहा— नाह पश्यामि तं लोकं पुरुषं सचराचरे।

संभाषण तक नहीं करता था। इसी लिये लोगो ने उसका नाम 'हुंहुक' रख दिया था। गौतम ने उसके पूछने पर कहा—

यो ब्राह्मणो वा कितपापधम्मो
निहुहुँको निक्कसावो यतत्तो
धम्मेन सो (ब्राह्मणो) ब्रह्मवादं वदेय्य ।
यस्सुस्सदानत्थि कुहिंच लोकेति ।

जो ब्राह्मण पाप-धर्म नहीं करता, किसी को हूँ हूँ नहीं करता और कषायरहित यतात्मा है, जो वेदांतज्ञ है और जिसने ब्रह्मचर्य्य पालन किया है, जिसको इस लोक में कोई विचलित करनेवाला नहीं है, वही ब्राह्मण ब्रह्मचर्य्य का उपदेश कर सकता है।

छठे सप्ताह मे वह अजपाल से चलकर दक्षिण ओर मुचलिंद ह्रद पर गए *। यह मुचलिंदह्रद महाबोधि वृक्ष से दक्षिणपूर्व के कोण में इक्यावन धनु पर था। यहाँ एक छोटा सा तालाब था जिसके किनारे मुचकुंद का एक पेड था। पाली मे मुचकुंद को मुचलिंद कहते हैं और इसी लिये इस ह्रद का नाम मुचलिंद-ह्रद वा मुचलिंद-दह था। यहाँ सात दिन तक मूसलाधार पानी बरसा और

---

* ललितविस्तर का मत है कि पांचवे सप्ताह में गौतम बुद्ध मुचलिंद नागराज के भवन में रहे और इस सप्ताह में यहा बड़ा पानी बरसा और नागराज ने स्वयं आकर अपने फन की छाया उनके सिर पर कर के उन्हें पानी से बचाया।

बुद्धस्ययोऽस्य चिह्नानि शक्नुयात्कर्तुमन्यथा ।
शीघ्रमस्यानिवेद्यन्तमित्यय स्वकृतं मुने ।
सर्वं पौराणिक काय करिष्यति यथामतम् ।

बु० ७

कहते हैं कि इस सप्ताह में एक नाग, जिसे काल नाग वा शेषनाग कहते है, दह से निकलकर गौतम के ऊपर अपने सहस्र फणो से छाया किए रहा और उसने वृष्टि से उनकी रक्षा की। यहाँ गोतम के मुँह से यह उदान निकला—

सुखो विवेकस्तुष्टस्य श्रुतधर्मस्य पश्यत ।
अव्याबध्य सुखं लोके प्राणिभूतस्य सयम ॥
सुखा बिरागता लोके पापाना समतिक्रम ।
अस्मिन्मानुष्यविषये एतद्वै परम सुखम् ॥

विवेक-तुष्ट और श्रुतधर्म को यह देखकर सुख है कि लोक मे अव्यावाध सुख प्राणिमात्र का सयम है। विरागता सुख है, पापों से बचना सुख है, इस मनुष्य-लोक में यही परम सुख है।

पानी बद होने पर वे सातवे सप्ताह में मुचलिंद-दह से पश्चिम राजायतन नामक स्थान पर गए। राजायतन * बोधि वृक्ष से ४० धनु पर दक्षिण दिशा में था। यहाँ गौतम बुद्ध एक सप्ताह तक रहे। सप्ताह के अत मे देवताओ ने उन्हें दिव्य हरीतकी, नाग-लता और अनवतप्तह्रद का जल दिया। यहाँ गौतम बुद्ध जल से हाथ मुँह धो नाग-लता से दतधावन कर दिव्य हरीतकी खाकर बैठे थे कि इसी बीच में उत्कल देशवासी त्रपुष और भल्लिक नामक दो

* ललितविस्तर में राजायतन का नाम नारायण लिखा है। उसमें यह भी लिखा है कि उन लोगों की गाडियों के पहिए महात्मा बुद्धदेव के तेज से भूमि में धसने लगे। गाड़ियों के पहिए धंसने पर वे घबराए हुए नारायण के नीचे पहुंचे।

वैश्य, जो पाँच गाडी शालि लिए उत्कल से आ रहे थे, पहुँचे। कहते हैं कि यहाँ पहुँचने पर उनकी गाडियों के चक्के कीचड मे फॅस गए। निदान उन्हे अपनी गाडियो को निकालने की चिता पडी। वे इधर उधर उद्विग्न फिर रहे थे कि वे राजायतन वृक्ष के नीचे पहुँचे और वहाँ महात्मा गौतम बुद्ध को बैठे देख उन्हे प्रणाम कर उन्होने उनके सामने सत्तू और मधु के मोदक अर्पण किए। महात्मा बुद्धदेव ने उनके अर्पित मोदक को सहर्ष अपने भिक्षापात्र * में ले लिया और उनको भक्षण कर उन्हे अपना केश देकर यह आशीर्वाद दिया—

दिशा स्वस्तिकर दिव्य मागल्य चार्थसाधकम्।
अर्था व सम्मता सर्वे भवत्वाशु प्रदक्षिणा।

---

* बौद्ध ग्रंथों में लिखा है कि उस समय गौतम बुद्ध को चातुर्महाराज वैश्रवण धृतराष्ट्र, विरूढक और विरूपाक्ष ने चार पात्र दिए थे जो गया के पर्वत के काले पत्थर के बने थे। महात्मा गौतम बुद्ध ने उन पात्रों को एक दूसरे पर धर के दबा दिया था और वे एक दूसरे में समाविष्ट होकर एक हो गए थे।

(१३) काशी को प्रस्थान

संवल निहत्य मार बोधि प्राप्तो हिताय लोकस्य ।

वाराणसीमुपगतो धर्मचक्रप्रवर्तनाय ॥

त्रपुष और भल्लक नामक वैश्यो के दिए हुए मोदको को खा और उन्हे अपना केश दे बिदाकर गौतम राजायतन वृक्ष-मूल से उठे और अजपाल वृक्ष के नीचे आए । यहाँ आसन लगा बैठ कर वे सोचने लगे कि मैंने अनेक जन्म तपश्चर्या करके इस अपूर्व विशुद्ध बोधिज्ञान को प्राप्त किया है । बडी कठिनाई से इस ससार-रूपी पहेली का गूढतत्व मेरी समझ में आया है । यह तत्व अत्यंत दुर्बोध और सूक्ष्म है । ससारी लोग राग द्वेष मद मत्सर मे ऐसे लिप्त हैं कि उन्हे ससार के तत्व पर विचार करने का अवकाश ही नही है । वे इस क्षणिक आमोद प्रमोद मे ओतप्रोत हो रहे है । यदि मैं इन ससारी लोगो के सामने द्वादश निदान की व्याख्या करूँ तो ये लोग उसे समझ नही सकते । ससार मे अधिकारी पुरुष का अभाव सा हो रहा है । वासना के क्षय होने ही पर मनुष्य मोक्ष का अकिकारी वा मुमुक्षु होता है और ऐसे ही लोग इस तत्व ज्ञान को समझ सकते हैं और निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं । राग द्वेष मोह मत्सर आदि से युक्त ससारी लोग अनधिकारी हैं । वे मेरे नवानु-भूत ज्ञान को नही समझ सकते, और ऐसे लोगो को उसका उप-देश करना भी व्यर्थ ही है । अब क्या करूँ ? मै इस ज्ञान के उप-देश के लिये अधिकारी कहाँ से पाऊँ ? ससार के लोग तो मोह के

मद मे उन्मत्त पडे हैं, उनकी आँखो पर परदा पडा है। वे अपने हित की बात नहीं समझते। उनकी दशा ठीक उस कुत्ते की नाईं है जो बैठा हुआ सूखी हड्डी चबाता है और हड्डी की रगड से अपने गलफडों से निकले हुए रक्त के स्वाद को हड्डी का स्वाद समझ अपनी तृप्ति मानता है। इनका दु ख देखकर तो मेरा कलेजा फटता है। पर यदि मैं उन्हें उनकी अवस्था समझाने जाऊँ तो वे मेरी बात सुनने के लिये तैयार नही हैं। बडी ही गूढ़ और चक्करदार समस्या है। क्या यह बोधि-ज्ञान, जिसे मैंने इतने परिश्रम से प्राप्त किया है, मेरे साथ ही जायगा और यही इसका अत हो जायगा ? पर किया क्या जाता, अधिकारी व्यक्तियो का उस समय सर्वथा अभाव ही अभाव था। पडितगण कर्मकाड के जाल मे फँसे हुए थे और इतर जनो का अध्यात्म की ओर कुछ ध्यान नहीं था। दोनों कोटियो में उन्हे अनधिकारी ही अनधिकारी देख पडते थे। इसी सोच मे वे पडे थे कि अचानक उन्हे आचार्य्य रुद्रक का ध्यान आया। स्मरण आते ही उनका अत करण प्रेम से गद्गद हो गया। उन्होंने अपने मन मे कहा—"अच्छा चलो, मै अपने इस नवाविष्कृत बोधि-ज्ञान को अपने आचार्य्य रुद्रक के सामने, जिनसे मैंने अध्यात्म विद्या अध्ययन की है, गुरुदक्षिणा रूप में समर्पण करूँ। रुद्रक एक वयोवृद्ध सयमी पुरुष हैं। उनका अत करण योगानुष्ठान से विमल हो गया है। उनके राग द्वेष मोहादिक बधन शिथिल पड गए हैं। उनकी बुद्धि शुद्ध और परिष्कृत है। अवश्य वे इस बोधिज्ञान के अधिकारी हैं।" वे यह निश्चय कर अजपाल से चलना ही चाहते थे

कि उनको यह समाचार मिला कि आचार्य्य रुद्रक का परलोकवास हो गया और अब वे इस संसार मे नही हैं। यह जानकर महात्मा बुद्धदेव को बडा शोक हुआ। वे अपने मन मे कहने लगे-"हा! आचार्य्य रुद्रक! शोक है कि आप इस ससार मे नही हैं। नहीं तो आज आप हमारे इस नवीन साक्षात्कृत ज्ञान को सुन कितने प्रसन्न होते।" थोडी देर आचार्य्य रुद्रक के शोक से सतप्त हो कर वे अपने मन में यह विचार करने लगे कि यदि उत्तम अधिकारी नही हैं, तो चलो किसी मध्यम अधिकारी को ही यह ज्ञान दें जिससे यह ज्ञान मेरे बाद ससार मे लोगो के कल्याण करने के लिये रह तो जाय।" बडे सोच विचार के बाद उन्होने आराड कालाम को मध्यम अधिकारी जान उसके पास चलकर उसे अपने धर्म का सदेश सुनाने के लिये राजगृह की ओर जाने का विचार किया। वे उठकर राजगृह का मार्ग लिया ही चाहते थे कि उन्हें यह समाचार मिला कि अराड कालाम भी इस संसार में नहीं है। अब तो गौतम को चारो ओर अँधेरा ही अँधेरा दिखाई देने लगा। उन्हें नैराश्य हो गया और वे बडी चिंता में निमग्न हुए। वे सोचने लगे कि—"क्या मै अकेला इस बोधिज्ञान का सुख भोगूँ? ऐसा करने से मुझ में और इतर जनों मे क्या भेद रह जायगा? क्या अकेले किसी सुख को ऐसी अवस्था मे भोगना जब कि मेरे अन्य भाई दु:ख-सागर मे निमग्न हैं, स्वार्थ नही है? भावी सतान को जब यह मालूम होगा कि सिद्धार्थ ने अश्रुतपूर्व विज्ञान लाभ किया और उसने किसी दूसरे को वह ज्ञान नहीं दिया, तो वे मुझे क्या कहेगे? अब क्या करूँ, अधिकारी कहाँ से लाऊँ?

हाय ! उत्तम और मध्यम अधिकारी जो थे, वे चल बसे। यदि मैं ज्ञान दूँ तो किसे दूँ ? शास्त्रों मे अनधिकारी को ज्ञान का उपदेश करने का निषेध है और यह ठीक भी है। जिस प्रकार ऊसर में बोया हुआ बीज निष्फल होता है, वैसे ही अनधिकारी को ज्ञान का उपदेश करना भी निरर्थक होता है। यही नही, उल्टे अनर्थकारी भी होता है। क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? रोगियो को अपने रोग की खबर नही। कोढी अपने कोढ को ही आरोग्य का चिह्न समझ रहे हैं। हाय, पाप ने मनुष्यो की आत्मा को कहाँ तक कलुषित कर डाला है ! क्या करूँ, किस तरह मनुष्यो की आँखों से परदा हटाऊँ कि वे सत्य धर्म को देख सके ? ”

वे इसी उधेड-बुन मे पडे थे कि उन्हे अचानक पचभद्रवर्गीय भिक्षुओ का स्मरण आया जो उन्हे वहाँ छोड काशी की ओर चले गए थे। उनका स्मरण आते ही एक बार उन्हे फिर आशा बँधी। उन्होंने अपने मन मे कहा कि अच्छा, यदि उत्तम और मध्यम अधिकारी नही मिलते हैं तो अधम अधिकारी ही सही। चलो, उन्ही को इस अपूर्व ज्ञान का उपदेश करे। उनकी आत्मा अवश्य अन्यों की आत्मा से शुद्ध है। उनके सस्कार अच्छे हैं। चाहे व निकृष्ट कोटि के ही सही, अधिकारी तो हैं। उनसे बढकर मुझ इस विज्ञान के दान के लिये इस ससार मे दूसरे पात्र मिलने कठिन हैं। यह सोच वे अपने मन मे काशी चलकर उन पचभद्रवर्गीय भिक्षुओं को उपदेश करने का दृढ सकल्प कर अपने आसन से उठे और भिक्षा-पात्र ले काशी की ओर चलते हुए।

गौतम बुद्ध अजपाल से उठकर काशी की ओर जा रहे थे। अभी थोड़ी दूर गए थे कि मार्ग मे उन्हें आजीवक * संप्रदाय का उपक नामक एक मनुष्य मिला। यह आजीवक मार्ग में सामने से आ रहा था। मार्ग में गौतम को दक्षिण से अपने सन्मुख आते हुए देख उनकी आनन्दमयी मूर्ति का दर्शन कर वह अत्यंत विस्मित हुआ। उनका ब्रह्मानंद मे मग्न रूप उसके अंतःकरण में अंकित हो गया। पास पहुँचने पर उसने उन्हें प्रणाम कर पूछा— "भगवन्! आप के मुख की आकृति शांत, प्रसन्न और आनंदपूर्ण देख पड़ती है, जिससे मालूम होता है कि आप ब्रह्मनिष्ठ हैं। कृपा-पूर्वक मुझे यह बतलाइए कि आपने किस गुरु के मुख से इस अलौकिक ब्रह्मज्ञान की शिक्षा ग्रहण की है।" इस पर महात्मा बुद्धदेव ने हँसकर आजीवक को उत्तर दिया—

सब्बाभिभू सब्बविदो हमस्मि
सब्बेसु धम्मेसु अनुप्पलित्तो।
सब्बजयो तनक्खयो विमुत्तो
सयं अभिञ्ञाय कमुद्दिसेय्य॥

हे आजीवक! मैंने सब कुछ स्वयं अनुभव किया है और जाना है। मैं सब धर्मों से अलिप्त हूँ, मैंने सब को जीत लिया है, मेरी वासनाएँ जिनसे शरीर ग्रहण करना पड़ता है, क्षीण हो गई हैं और मैं जीवनमुक्त हो गया हूँ। मैंने ये सब बातें स्वयं जानी हैं, मैं किसे बताऊँ जिससे मुझे यह ज्ञान प्राप्त हुआ।

---

* यह संप्रदाय वैष्णव धर्म का पूर्वरूप था।

आजीवक ने महात्मा गौतम बुद्ध के इस वचन को सुनकर कहा कि—"यह सभव है, पर भगवन्! यह तो बताइए कि आप कहाँ जा रहे हैं।" आजीवक के प्रश्न पर गौतम बुद्ध ने कहा—

वाराणसी गमिष्यामि गत्वा वै काशिका पुरी।
धर्मचक्र प्रवर्तिष्ये लोकेस्वप्रतिवर्तितम्॥

अर्थात् मै काशी जाता हूँ और वहाँ जाकर मै धर्मचक्र का प्रचार करूँगा। यह वह धर्मचक्र होगा जिसे कोई फिर उलट नही सकता।

आजीवक तो उनकी यह बात सुन दक्षिण को चला गया और महात्मा गौतम बुद्ध गया मे आए। गया मे वे नागराज सुदर्शन के अतिथि रहे। नागराज ने उनकी पूजा अन्न-वस्त्र से की और वे रात भर वहाँ रहकर प्रात काल काशी को रवाना हुए। दूसरे दिन वे रोहितवस्तु में, तीसरे दिन अनाल नामक गाँव में और चौथे दिन सारथिपुर मे ठहरे। उन स्थानो के लोगों ने उनका सत्कार भिक्षा-प्रदान से किया। सारथिपुर से चलकर वे गंगा जी के किनारे पर पहुँचे। वर्षा के कारण गगा जी बढी हुई थी। वहाँ मल्लाह ने उनसे उतरवाई माँगी, पर उनके पास था ही क्या जो वे उसे देते। निदान मल्लाह ने उन्हे उतारने से इन्कार किया। दृढव्रत गौतम गगा को बिना नाव के ही पारकर काशी मे पहुँचे और नगर में भिक्षा कर वे काशी से ऋषिपतन के जगल की ओर चले।

सोय दृढप्रतिज्ञो वाराणसीमुपगतो मृगदावम्।
चक्र ह्यनुत्तरमसौप्रपर्तयिताह्यदभुत श्रीमान्॥

---

(१३) धर्म-चक्र-प्रवर्तन

वाचाय ब्रह्मरुतकिन्नरगर्जिताय
अगै सहस्रनियुतेभि समुद्गताय।
बहुकल्पकोटिसदसत्यसुभाविताय
कौंडिन्यमालपति शाक्यमुनि स्वयभू ॥

काशी नगर मे भिक्षा ले भोजन कर गौतम ने वरुणा नदी पार की और फिर वे ऋषिपतन जगल के मृगदाव नामक प्रदेश मे, जहाँ कौंडिन्य, वप, भद्रिय, महानाम और अश्वजित् नामक पच-भद्रवर्गीय भिक्षु घोर तप करते हुए रहते थे, पहुँचे। ये पचवर्गीय भिक्षु गौतम को गया मे, जब उन्होने अनशन व्रत त्यागा था, छोड कर चले आए थे। उन्हें गौतम से एक प्रकार का नैराश्य हो गया था। उन लोगो ने उन्हें भीरु समझा था और उनका अनुमान था कि गौतम अब योग-भ्रष्ट हो गया। अब उसे बोधि-ज्ञान कभी प्राप्त न होगा।

गौतम को काशी से अपने आश्रम की ओर आते देख पच-भद्रवर्गीयो को अत्यत आश्चर्य हुआ और वे लोग उनसे उपेक्षा करने लगे और परस्पर कहने लगे कि गौतम तो अब भिक्षा खा खा के मोटा हो गया है, वह यहाँ कहाँ आ रहा है ? जब गौतम उनके आश्रम में पहुँचे, तब उन लोगो ने उनका अर्घपाद्यादि से सत्कार कर आसन दिया। उन लोगो ने गौतम से कहा—"कहो गौतम ! अब इधर कैसे तुमने फेरा किया ?" गौतम ने कहा—

"भिक्षुगण ! मैंने बोधि-ज्ञान प्राप्त कर लिया और मैं अब तुम लोगों को उसका उपदेश करने के लिये यहाँ आया हूँ।"

गौतम की बात सुन वे लोग उनकी हँसी उडाने लगे और उनसे उपेक्षा करने लगे। पर गौतम ने उनसे कई बार कहा कि—"भिक्षु-गण ! तुम लोग विश्वास करो, मैंने बोधि-ज्ञान प्राप्त किया है और मैं तुम्हे उपदेश करने के ही लिये यहाँ आया हूँ। मैंने ससार के निदान को जान लिया और अब मैं जीवनमुक्त तथा विगत-शोक हूँ।" उनकी इस प्रकार की दृढतापूर्ण वाणी सुन कौडिन्य, जो उन सब में वयोवृद्ध था, उनके उपदेश सुनने को उत्कठित हुआ। उसने अपने साथियो से कहा—"भिक्षुगण ! बिना सुने तुम लोग यह कैसे कह सकते हो कि गौतम को ज्ञान लाभ नहीं हुआ ? जब वह इस दृढता से कहता है तो हमारा कर्त्तव्य है कि हम उसका उपदेश सुनें और यदि ग्रहण करने योग्य हो तो उसे ग्रहण करें।"

युक्तियुक्तमुपोदय वचन बालकादपि
अन्यत्तृणमिव त्याज्यमप्युक्त पद्मजन्मना।

जब सायकाल हुआ तो सब लोग आश्रम में बैठकर गौतम का उपदेश सुनने लगे। गौतम ने कहा—

*"हे भिक्षुओ सन्यासी वा परिव्राजक को दो अतों का सेवन न करना चाहिए। वे दोनों अत कौन हैं ? पहला काम-विषय-

---

* एव मे सुतं एक समयं भगवा बाराणसिय विहरति इसिपतने मिगदाये तत्र खो भगवा पचवग्गीये भिक्खु आमतेचि -

वासना में सुख के लिये अनुयोग करना। यह अत अत्यत हीन, ग्राम्य, अध्यात्म मार्ग से पृथक् करनेवाला, अनार्य्य और अनर्थ-सहित है। दूसरे शरीर को क्लेश देकर दु:ख उठाना। यह भी अनार्य्य और अनर्थसहित है। हे भिक्षुओ! तथागत अर्थात् मैंने इन दोनों अतो को त्याग कर मध्यमा प्रतिपदा वा मार्ग को जाना है। यह मध्यमा प्रतिपदा चक्षु देनेवाली और ज्ञानप्रदायिनी है। इससे उपशम, अभिज्ञान, सबोधन और निर्वाण प्राप्त होता है।

द्वेमे भिक्खवे अन्ता पब्बजितेन न सेवितब्बा। कतमे द्वे? यो चायं कामेसु कामसुखल्लिकानुयोगो हीनो गम्मो पोथुज्जनिको अनरियो अनत्थ-संहितो यो चायं अत्त किलमथानुयोगो दुक्खो अनरियो अनत्थसंहितो। एते खो भिक्खवे उभो अंते अनुपगम्म मज्झिमा पटिपदा तथागतेन अभिसबुद्धा चक्खु करणी ञाणकरणी उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय सवत्तति।

कतमा च सा भिक्खवे मज्झिमा पटिपदा तथागतेन अभिसंबुद्धा चक्खुकरणी, ञाणकरणी, उपसमाय, अभिञ्ञाय, सम्बोधाय निब्बानाय सवत्तति? अयमेव अरियो अट्ठंगिको मग्गो। सेय्यथीदं-सम्मादिट्ठि, सम्मासंकप्पो, सम्मावाचा, सम्माकम्मंतो, सम्माआजीवो, सम्मावायामो सम्मासति, सम्मासमाधि। अयं खो भिक्खवे मज्झिमा पटिपदा तथागतेन अभिसम्बुद्धा चक्खुकरणी ञाणकरणी उपसमाय अभिञ्ञा सबोधाय, निब्बानाय संवत्तति।

इदं खो पन भिक्खवे दुक्खं अरियसच्चं। जातिपि दुक्खं,जरापि दुक्खो व्याधिपि दुक्खो, मरणापि दुक्खो, अप्पियेहिसंपयोगो दुक्खो, पियेहिविप्प-योगो दुक्खो, यंपिच्छं न लभंति तंपि दुक्खं, संखित्तेन पंचोपादानक्ख-न्धोपि दुक्खं।

इदं खो पन भिक्खवे दुक्खसमुदयं अरियसच्च। याय तण्हापोनोब्भविका नन्दिरागसहगता तत्रतत्राभिनन्दिनी। सेय्यथीदं कामतण्हा, विभवतण्हा।

हे भिक्षुगण ! वह कौन सी मध्यमा प्रतिपदा है जिसे तथागत ने साक्षात् किया है और जो चक्षुकरणी और ज्ञानकरणी तथा उपशम, अभिज्ञा से बोध और निर्माण की ओर ले जानेवाली है ? वह यही आर्य्य अष्टांगिक मार्ग है । वह यह है-सम्यक्कर्मांत, सम्य-

---

इद खो पन भिक्खवे दुक्खनिरोधं अरियसच्च । यो तस्सायेव तण्हाय असेसविरागं, निरोधो, चागो, पटिस्सग्गो, मुत्ति, अनालयो ।

इदं खो पन भिक्खवे दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा अरियसच्च । अयमेव अरियसच्च अट्ठ गिको मग्गो । सेय्यथेद सम्मादिट्ठि, सम्मासंकप्पो, सम्मावाचा, सम्माकम्मन्तो, सम्माआजीवो, सम्मावायामो, सम्मासति, सम्मासमाधि ।

इद दुक्खं अरियसच्चाति मे भिक्खवे पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु चक्खु उदपादि, ञाण उदपादि, पञ्ञा उदपादि विज्जा उदपादि, आलोको उद पादि । तं खो पनिदं दुक्खं अरियसच्च परिञ्ञेय्यन्ति मे भिक्खवे पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु, चक्खुं उदपादि, ञाण उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि, ।

इदं दुक्खसमुदयं अरियसच्चंति मे भिक्खवे पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु चक्खु उदपादि, ञाणं उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि तं खो पनिद दुक्खसमुदय अरियसच्च पहातब्बति मे भिक्खवे पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु, चक्खुं उदपादि, ञाण उदपादि, पञ्ञा उपदादि, विज्जा उपद.दि, आलोको उपदादि ।

इदं दुक्खनिरोधं अरियसच्चंति मे भिक्खवे पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु, चक्खुं उदपादि ञाण उदप.दि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि । तं खे पनिद दुक्खनिरोध अरियसच्चसच्छेति मे भिक्खवे पुब्बेसु अननुस्सुतेसु धम्मेसु, चक्खु उदपादि, ञाण उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आ.लोको उदपादि । त खो पनिदं दुक्खनिरोध अरियसच्चति मे भिक्खवे पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु, चक्खुं उदपादि, ञाणं उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि ।

ग्दृष्टि, सम्यक्सकल्प, सम्यग्वाचा, सम्यगाजीव, सम्यग्व्यायाम, सम्यक्स्मृति और सम्यक्समाधि। हे भिक्षुओ ! यही मध्यमा-प्रतिपदा है जिसे तथागत ने साक्षात् किया है। यह चक्षुकरणी और ज्ञानकरणी है और यही मनुष्य को उपशम, अभिज्ञा, सबोध और निर्वाण तक पहुँचानेवाली है।

हे भिक्षुओ ! पहला आर्य्य-सत्य दु ख है। जाति अर्थात् जन्म भी दु ख है, जरा भी दु ख है, व्याधि दु ख है, मरण वा मृत्यु दु ख है, अप्रिय का मिलना दु ख है, प्रिय का बिछुड़ना दु ख है,

---

इदं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा अरियसच्चन्ति मे भिक्खवे पुब्बेसु अननुस्सुतेधम्मेसु, चक्खु उदपादि, ञाण उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि । तं खे पनिद दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा अरियसच्चं भावेतब्बंति मे भिक्खवे पुब्बेसु अननुस्सुतेसु धम्मेसु, चक्खु उदपादि, ञ ण उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि । तं खो पनिद दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा अरियसच्च भावितंति मे भिक्खवे पुब्बेसु अननुस्सुतेसु धम्मेसु, चक्खुं उपदादि, ञाण उदपादि पञ्ञा उपदादि, विज्जा उपदादि, आलोको उपदादि ।

याव किवच मे भिक्खवे इमेसु चतुस्सु अरियसच्चेसु एवं तिपरिवत्तिं द्वादसाकारं यथाभूतं ञाणदस्सन न सुविसुद्धं अहोसि नेव तावाह भिक्खवे सदेवकेलोके समारके सस्समणब्राह्मणीया पजया सदेवमनुस्साय अनुत्तर सम्मा-सबोधि अभिसम्बुद्धोति पच्चञ्ञासि। यतो च खो मे ि क्खवे इमेसु चतुस्सु अरियसच्चेसु एव तिपरिवत्तिं द्वाद्वाद ाकारं यथाभूत ञाणदस्सन सुविसुद्धं अहोसि । अथाह भिक्खवे सदेवके समारके सस्समणब्राह्मणीया पजया सदेव मनुस्साया अनुत्तरं सम्मासबोधिं अभिसम्बुद्धोति पच्चञ्ञासिं । ञाण च पन मे दस्सन उदपादि अकोपा मे भिक्खवे चित्तो विमुत्ति । अयं मे अन्तिमा जाति नत्थि मे पुनब्भवोति ।

जिसके लिये इच्छा की जाय और वह न मिले तो वह भी दु ख है, सक्षेप में पचोपादान स्कध ही दु ख है।

हे भिक्षुगण ! दु खसमुदय नामक दूसरा आर्य–सत्य यह तृष्णा है जो पुनर्भव का हेतु है और नदिराग के साथ उत्पन्न हुई है और उन उन विषयो मे अभिनदन करनेवाली है। जैसे–कामतृष्णा, भव-तृष्णा, विभवतृष्णा।

हे भिक्षुगण ! तीसरा आर्य्य-सत्य दु खनिरोध नामक है। यह उस तृष्णा से अशेष अर्थात् पूर्ण वैराग्य-निरोध, प्रतिसर्ग मुक्त और अनालय है।

हे भिक्षुगण ! चौथा आर्य्य-सत्य निराधगामिनी प्रतिपदा है। इसी आर्य्य सत्य को अष्टागिक मार्ग कहते हैं। वे अष्टाग ये हैं–सम्यक्‌दृष्टि, सम्यक्‌सकल्प, सम्यक्‌वाचा, सम्यक्कर्मात, सम्यगाजीब, सम्यग्व्यायाम, सम्यक्‌स्मृति और सम्यक्‌समाधि।

हे भिक्षुगण ! यह दु ख नामक (पहला) आर्य्य सत्य पूर्व धर्मो मे सुना नही गया था। इसने मुझ मे चक्षु उत्पन्न किया, ज्ञान उत्पन्न किया, प्रज्ञा उत्पन्न की, विद्या उत्पन्न की और आलोक उत्पन्न किया।

हे भिक्षुओ ! यह दु ख नामक आर्य्य-सत्य परिज्ञेय है। यह पूर्व धर्मो मे सुना नही गया। इसने मुझ मे चक्षु, ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या और आलोक उत्पन्न किया। हे भिक्षुओ ! मैंने इस दु ख नामक आर्य्य सत्य को जान लिया। यह पहले धर्मो में सुना नही गया था। इसने मुझ मे चक्षु, ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या और आलोक उत्पन्न किए।

हे भिक्षुओ ! यह दु खसमुदय नामक दूसरा आर्य्य-सत्य पूर्व धर्मो मे कभी नही सुना गया था ।। इससे मुझ मे चक्षु, ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या और आलोक उत्पन्न हुए । हे भिक्षुओ ! यह दु'खसमुदाय नामक आर्य्य सत्य त्यागने योग्य है । यह पहले धर्मों में नही सुना गया था । इससे मुझ मे चक्षु, ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या और आलोक उत्पन्न हुए । हे भिक्षुओ ! इस दु खसमुदय नामक आर्य्य-सत्य को मैंने त्याग दिया । यह पहले धर्मो मे नहीं सुना गया था । इससे मुझ मे चक्षु, ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या और आलोक उत्पन्न हुए ।

हे भिक्षुओ ! यह दु खनिरोध नामक तीसरा आर्य्य-सत्य पहले धर्मों मे नही सुना गया था । इससे मुझ मे चक्षु, ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या और आलोक उत्पन्न हुआ । हे भिक्षुगण ! यह दु ख-समुदय नामक आर्य्य-सत्य साक्षात् कर्तव्य है । यह पहले धर्मो मे नही सुना गया था । इससे मुझ मे चक्षु, ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या और आलोक उत्पन्न हुए । हे भिक्षुओ ! इस दु खनिरोध नामक आर्य्य-सत्य को मैंने साक्षात् कर लिया । यह पहले धर्मों मे नहीं सुना गया था । इससे मुझ मे चक्षु, ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या और आलोक उत्पन्न हुए ।

हे भिक्षुगण ! यह दु खनिरोधगामिनी प्रतिपदा नामक चौथा आर्य्य सत्य है । यह पहले धर्मों मे नही सुना गया था । इससे मुझ मे चक्षु, ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या और आलोक उत्पन्न हुए । यह दु खनिरोधगामिनी प्रतिपदा नामक आर्य्य-सत्य भावना करने योग्य है । यह पहले धर्मो मे नही सुना गया था । हे भिक्षुगण ! इससे

मुझ मे चक्षु, ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या और आलोक उत्पन्न हुए। हे भिक्षुओ! मैने इस दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा नामक आर्य्य-सत्य की भावना कर ली। यह पहले धर्मों मे नही सुनी गई थी। इससे मुझ में चक्षु, ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या और आलोक उत्पन्न हुए।

हे भिक्षुओ! जब तक इन चारो आर्य्य-सत्यों का जो त्रिप्रवर्त्तित होकर द्वादशाकार हैं, मुझे यथाभूत सुविशुद्ध ज्ञान दर्शन नहीं हुआ था, तब तक मैंने न देवलोक मे न मारलोक में, न श्रमण और ब्राह्मणीय प्रजा मे और न देव और मनुष्यो मे यह स्पष्ट कहा था कि मुझे अनुत्तर सम्यक् सबोधि प्राप्त हुई और मै अभिसबुद्ध हुआ हूँ। हे भिक्षुगण! जिस समय से मुझे इन चारो आर्य्य-सत्यो का जो त्रिप्रवर्त्तित होकर द्वादशाकार हैं, यथाभूत सुविशुद्ध ज्ञान-दर्शन हुआ, तब से मैंने देवलोक मे, मारलोक मे, श्रमण और ब्राह्मणीय प्रजा मे, देवों और मनुष्यों मे यह प्रकट किया कि मुझे अनुत्तर सम्यक् सबोधि हुई और मैं अभिसबुद्ध हुआ, मुझ मे ज्ञान और दर्शन उत्पन्न हुए, मेरा चित्त निर्विकार और विमुक्त हुआ। अब मेरा अतिम पुनर्भव न होगा।"

यह उपदेश सुन कौडिन्य ने सब से पहले महात्मा बुद्धदेव के धर्म को स्वीकार किया। इस प्रकार पाँच दिन तक लगातार रात के समय उपदेश सुनकर धीरे धीरे क्रमश वप, भद्रिय, महानाम और अश्वजित् ने भी महात्मा बुद्धदेव का धर्म स्वीकार किया और सब को भगवान् ने परिव्राज्य ग्रहण करा यह उपदेश किया-"स्वाखातो धम्मो। चरत ब्रह्मचरिय सम्मादुक्खसत किरियायाति याव तेस

आयुस्मन्तान उपसम्पदा अहोसि।" अर्थात् धर्म स्वय ख्यात है। समस्त दु खों का नाश करने के लिये जब तक तुम्हे उपसम्पदा की प्राप्ति न हो, ब्रह्मचर्य्य पालन करो।

(१४) प्रथम चातुर्मास्य

कौंडिन्य प्रथम कृत्वा पचकाश्चैव भिक्षव ।

षष्ठीना देवकोटीना धर्मचक्षुर्वि शोधितम् ।।

पचवर्गी भिक्षुओ को धर्मचक्र का उपदेश कर उन्हे अपने धर्म की दीक्षा दे गौतम बुद्ध वर्षा ऋतु के आ जाने से तीन मास पर्य्यं त काशी के ऋषिपतन नामक बन मे पचवर्गीय भिक्षुओ के आश्रम मे रहे। वे नित्य अपने शिष्यों के साथ नगर में भिक्षा कर भोजन करते और आश्रम मे धर्म का उपदेश करते रहे।

पचवर्गीय भिक्षुओ की दीक्षा हो जाने पर असित देवल का भागिनेय नालक वा नारद यही आकर भगवान् की शरण मे पहुँचा। भगवान् बुद्ध ने उसे धर्म का उपदेश कर मौन व्रत का उपदेश दिया । नालक भगवान् का उपदेश ग्रहण कर मौनी हो गया।

इसी बीच मे काशी के एक समृद्धशाली सेठ को जिसका नाम यश था, वैराग्य उत्पन्न हुआ। महावग्ग मे लिखा है कि यश बडा श्रीसम्पन्न था। उसके तीन अद्भुत प्रासाद थे जिनमे वह जाडे, गर्मी और वर्षा मे अपना जीवन बडे आनद से बिताया करता था। एक दिन यश अपने वर्षा-ऋतु के प्रासाद मे था और दिन रात अपने मित्रोके साथ नाच रग मे लगा रहा। अधिक रात बीतने पर सब लोग थककर इतस्तत पडकर निद्रा के वशीभूत हो गए। उस समय उसे ससार की असारता का ज्ञान हुआ और वैराग्य उत्पन्न हुआ। यश ने अपने प्रासाद से निकलकर मृगदाव की राह ली।

वहाँ उसे भगवान् बुद्धदेव एक वृक्ष के मूल मे योगासन लगाए बैठे मिले। यश "उपद्रुत वत भो! उपस्सठ वत भो!" अर्थात् "घोर उपद्रव है, कठिन आपत्ति है' कहता चला जा रहा था कि भगवान् ने उसे जाते हुए देखकर बुलाया और कहा "यश! सच है, बडा उपद्रव हो रहा है। आओ, हम तुम्हे धर्म का उपदेश देगे।" गौतम की बात सुन यश उनके पास गया और अभिवादन कर बैठ गया। भगवान् ने उससे दानकथा, शीलकथा, स्वर्गकथा आदि कहकर धर्मचक्र का उपदेश किया। यश की आतरिक ~~आँखें खुल गई~~। उसने उनका धर्म स्वीकार कर परिव्राज्य ग्रहण कर लिया।

दूसरे दिन यश का पिता अपने पुत्र के निकल जाने से अत्यत दु खी हो उस को खोजने निकला और खोजता हुआ मृगदाव में भगवान् बुद्धदेव के आश्रम मे पहुँचा। भगवान् ने उसे भी यश की भाँति दान, शील आदि के उपदेश देकर उसके अत करण मे भी वैराग्य का बीज बोया। यश के पिता को भी ज्ञान हो गया। जब पिता ने यश को घर चलने के लिये कहा, तो वह भगवान् का मुँह देखने लगा। गौतम ने कहा "सेठ! यश को तो विराग हो गया, उसने धर्म को जान लिया।" पिता ने उसकी यह दशा देख महात्मा बुद्धदेव और यश दोनों को अपने घर भोजन करने के लिये आमन्त्रित किया। दूसरे दिन गौतम बुद्ध यश को साथ लेकर उसके पिता के घर भिक्षा के लिए आए और उन्होने भिक्षा ग्रहण कर उसके परिवार को शील आदि का उपदेश किया और वे अपने आश्रम को लौट गए।

यश के ग्रह त्याग कर सन्यास ग्रहण करने पर उसके चार मित्रो को जिनके नाम विमल, सुबाहु, पुण्यजित और गवापति थे, बड़ा विस्मय हुआ। वे लोग अपने मन मे कहने लगे—"यश सर्वैश्वर्य्य-सपन्न होने पर भी क्यों घर छोडकर परिव्राजक हो गया।? अवश्य परिव्राजक होने मे उसने कोई अलौकिक लाभ देखा होगा।" यह विचार कर वे चारो ससार से विरक्त हो भगवान् बुद्धदेव के पास पहुँचे और भगवान् का उपदेश ग्रहण कर परिव्राजक हो गए।

इसके बाद ही धीरे धीरे काशी के पचास और मनुष्य भगवान् बुद्धदेव के पास क्रमश आ आकर उनके धर्मोपदेश सुनकर परिव्राजक हो गए। इस प्रकार काशो मे वर्षा ऋतु मे रह भगवान् बुद्धदेव ने पॉच पचवर्गीय भिक्षु, नालक, तथा यश और उसके चार मित्र और पचास अन्य नागरिको को—सब मिलकर एकसठ मनुष्यों को—परिव्राजक बनाया और इसके अतिरिक्त सैकडों गृहस्थों को धर्मोपदेश दिया। कहते हैं कि भगवान् ने यही "सघ" का सगठन किया और यही से 'बुद्ध, धर्म और सघ' तीनों अग बुद्ध धर्म के परिपूर्ण हुए जो बौद्धधर्म के 'रत्न-त्रय' कहलाते हैं।

चातुर्मास्य बीत जाने पर भगवान् बुद्धदेव ऋषिपतन से उरुवेला जाने को उद्यत हुए और आश्विन मास की पूर्णिमा को अपने शिष्यो को बुलाकर उन्होने सब को यह आज्ञा दी—'हे भिक्षुओ! आप लोग चारों दिशाओ मे जाकर सतप्त-हृदय ससारी जीवो को मोक्ष का उपदेश कीजिए। पर एक बात स्मरण रखिए कि सब लोग अकेले अकेले एक एक मार्ग से जाइए और कहीं दो आदमो एक

साथ न जाइए। शिष्यवर्गो! ससार मे धर्म के उपदेश की बडी आवश्यकता है। सब लोग सासारिक सुखो मे, जो वास्तव मे घोर दु ख हैं, निमग्न हैं। उन्हे वास्तविक सुख की जिज्ञासा नही है, अत आप लोग जाइए और चारों ओर धर्म का डका बजाकर सोते हुए जीवों को जगाइए :—

प्रपूरय धर्मशख प्रताडय धर्मदुदभि।
प्रसारय धर्मध्वजं धर्म कुरु धम कुरु धर्म कुरु॥

(१५) उरुवेला

आत्मा वा अरे द्रष्टव्य श्रोतव्यो निदिध्यासितव्य ।

ऋषिपतन मे पहला चातुर्मास्य समाप्त कर महात्मा गौतम बुद्ध अपने शिष्यों को चारो दिशाओं मे उपदेश करने के लिये भेजकर काशी से उरुवेला की ओर चले। मार्ग मे एक जगल पडता था जिसका नाम कापास्य बन था। इस जगल मे भद्रवर्गीय कुमार जिनकी सख्या तीस थी, विहार करने आए थे। इन कुमारों मे उन-तीस राजकुमारों का तो ब्याह हो गया था और वे लोग सपत्नीक विहार के लिये वहाँ पधारे थे, पर उनमे से एक अविवाहित था और उसके लिये एक वेश्या को बुलवाया गया था। तीसों भद्रीय कुमार उसी वन मे डेरा डाले अपनी अपनी स्त्रियों के साथ विहार कर रहे थे। एक दिन सब लोग मद्य पीकर रात के समय उन्मत्त हो गए और अचेत होकर सो गए। वेश्या ने ऐसे समय जो कुछ उसके हाथ लगा, लेकर वहाँ से रास्ता लिया। प्रात काल जब सब लोगो का नशा उतरा तो उन्हे मालूम हुआ कि वेश्या बहुत कुछ माल असबाब लेकर चली गई। सब लोग यह देख बडे व्याकुल हुए और एक साथ उस वेश्या को ढूँढने लगे।

वे लोग वन मे उस वेश्या को इधर उधर ढूँढ रहे थे कि अचानक उन्हें सामने गौतम बुद्ध एक पेड के नीचे बैठे हुए दिखाई पडे। सब लोग महात्मा बुद्ध के पास गए और उनसे पूछने लगे कि- "भगवन् ! आपने किसी स्त्री को जाते देखा है ?" भगवान् बुद्ध-

देव ने उनसे पूछा कि—" कुमार ! तुम क्यों उस स्त्री को ढूँढ रहे हो ? " भद्रवर्गीय कुमारो ने महात्मा बुद्ध से सारा समाचार कह सुनाया। भगवान् उनसे सब हाल सुनकर बोले—" कुमारो ! भला तुम मुझे यह तो बताओ कि तुम स्त्री को तो ढूँढ रहे हो, पर क्या तुम लोगों ने कभी अपनी आत्मा को भी ढूँढने का प्रयत्न किया है ? यह तो मुझे बताओ कि तुम लोग स्त्री-जिज्ञासा को अच्छा समझते हो वा आत्म-जिज्ञासा को ? " भद्रीय कुमारो ने थोडी देर तक विचार करके कहा—" महाराज ! हम लोग आत्मा की जिज्ञासा को श्रेष्ठ समझते हैं। " गौतम ने कहा—" अच्छा कुमार ! यदि तुम लोग आत्मा की जिज्ञासा करना चाहते हो तो आओ, मै तुम्हे बताऊँगा। "

गौतम की बात सुन कर राजकुमार लोग अभिवादन कर उनके पास बैठ गए और गौतम बुद्ध उन्हे उपदेश करने लगे। गौतम ने उनसे दान और शील की महिमा वर्णन कर स्वर्ग की कथा कही। फिर उन्होने कामों की अनित्यता का वर्णन किया और सुकृति की प्रशसा की। फिर निष्कर्म का वर्णन करते हुए दु ख, समुदय, निरोध और मार्ग का उपदेश किया। गौतम का उपदेश सुन भद्रीय कुमारो की आँखे खुल गई और उन्हे वैराग्य हो गया। गौतम ने उन्हे परिव्राजक बना ब्रह्मचर्य्य का उपदेश दे धर्मोपदेश करने के लिये चारो दिशाओ मे भेज स्वय उरुवेला की राह ली।

उरुविल्व-वन मे निरजरा * नदी के किनारे काश्यपगोत्री तीन

---

* इसे निरंजना भी कहते हैं।

महा विद्वान् ब्राह्मण रहते थे। इन विद्वानो का नाम विल्वकाश्यप, नदीकाश्यप और गयकाश्यप था। ये तीनो सगे भाई और वेदपारगत तथा दार्शनिक विद्वान् थे। विल्वकाश्यप उरुविल्ववन मे अपने पॉच सौ शिष्यों को वेदाध्ययन कराता और अग्नि को धारण कर के रहता था, और नदीकाश्यप निरजरा नदी के तट पर अपने तीन सौ विद्यार्थियो को अध्ययन कराता तथा अग्निहोत्र करता रहता था। उसका तीसरा भाई गयकाश्यप गया मे रहता था। उसके पास दो सौ विद्यार्थी विद्याध्ययन करते थे। ये तीनो ब्राह्मण बडे विद्वान, अग्निहोत्री और कर्मनिष्ठ थे।

गौतम बुद्ध कापास्य वन से चलकर उरुविल्व वन मे विल्वकाश्यप के आश्रम पर पहुँचे। विल्वकाश्यप अपने आश्रम में बैठा अपने शिष्यों को अध्ययन कराता था। उसके अग्निकु ड का आकाशव्यापी धूआँ चारो ओर छा रहा था। गौतम ने विल्वकाश्यप से कहा—"यदि आपको कोई कष्ट न हो तो मै आपके आश्रम मे निवास करूँ।" विल्वकाश्यप ने उन्हे अपने आश्रम मे रहने की आज्ञा दी *। भगवान् बुद्धदेव उसके आश्रम के पास एक वृक्ष के

* महावग्ग का मत है कि विल्वकाश्यप ने गौतम बुद्ध के आश्रय मागने पर कहा था कि यहा अग्न्यागार के सिवा दूसरा स्थान नही है और उसमें एक परम विषधर साप रहता है। गौतम रात को वहीं रहे और अपनी दिव्यशक्ति से उस नाग को पकड़कर उन्होंने कमंडल में बद कर दिया। विल्वकाश्यप उनकी इस ऋद्धि तथा अन्य अनेकों ऋद्धियों को देख उनका परम भक्त हो गया और अत को उनसे 'परिव्राज्य' ग्रहण किया।

नीचे रहने लगे। रहते रहते उरुविल्वकाश्यप और भगवान् बुद्धदेव मे मैत्री हो गई और धीरे धीरे उरुविल्वकाश्यप की यह मैत्री श्रद्धा और भक्ति मे परिणत होने लगी। एक दिन बुद्धदेव ने समय देख उरुविल्वकाश्यप से अध्यात्म कथा प्रारभ की और कहा—

न नग्नचरिय न जटा न पक अनासका थडिलसायिका वा।
रजो च भल्ल, उक्कुटकप्पधान, शोधति मिच्च अवितीण्णकख ॥

हे विल्वकश्यप ! जिसकी काक्षा दूर नही हुई है, उस मनुष्य को न नग्न रहना पवित्र कर सकता है और न जटा रखने और पक लपेटने से वह पवित्र हो सकता है। उसके लिये अनशन व्रत और अग्न्यागार मे भूमिशयन करना, शरीर मे भस्म रमाना और उकडूँ बैठे रहना सब व्यर्थ है।

विल्वकाश्यप को भगवान् गौतम बुद्ध की यह बात सुन ज्ञान हो गया। उसने अपने मन मे कहा—"सच है, तब व्यर्थ अपना समय मैंने अब कर्मकांड के आडबर मे गँवाया और अध्यात्म की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। अच्छा, जभी से सोचा जाय, तभी से सही।" यह विचार विल्वकाश्यप अपने तीन हजार अतेवासियो के साथ भगवान् बुद्धदेव का उपदेश सुन परिव्राज्य ग्रहण के लिये उद्यत हो गया और उसने अपनी अरणी आदि अग्निहोत्र के साधनो को निरजरा नदी मे प्रवाहित कर दिया। भगवान् बुद्ध ने उसे और उसके शिष्यो को ब्रह्मचर्य्य का उपदेश दे उन्हें सन्यास ग्रहण कराया।

विल्वकाश्यप के सन्यास ग्रहण करने और अग्निहोत्र के परित्याग करने का समाचार पा नदीकाश्यप और गयकाश्यप भी अपने शिष्यो सहित महात्मा बुद्धदेव की शरण मे आए और उनसे ब्रह्मचर्य्य की दीक्षा ले उन्होंने सन्यास ग्रहण किया।

उरुवेला से गौतम काश्यपत्रय और उनके एक सहस्र अंतेवासियो को साथ लिए गयशीर्ष पर्वत पर गए और वहाँ थोड़े दिनो तक रहे। एक दिन गौतम बुद्ध ने भिक्षुओ के सघ मे सब को आदेश कर के कहा—

*"हे भिक्षुओ ! सब जल रहे हैं। यह विचारना चाहिए कि कौन जल रहे हैं ? चक्षु इंद्रिय जल रही है। रूप जल रहा है। चक्षु इंद्रिय से जो विज्ञान उत्पन्न होता है, वह भी जल रहा है। आँख के विषय जल रहे हैं। यह आँख और जो इस आँख के विषय हैं

* सब्ब भिक्खवे आदित्त। किंच भिक्खवे सब्बं आदित्त ?। चक्खु आदित्त, रूपो आदित्तो, यमिदं चक्खु यं चस्सा विञाण आदित्तं, चक्खुसं फस्सा आदित्तो। यमिदं चक्खु संफस्सा पच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा त पि आदित्त। केन आदित्त ? रागग्गिना दोसग्गिना मोहग्गिना आदित्त। जातिया जराय मरणेन सोकेभि परिदेवेभि दुक्खेभि दोमनस्सेभि उपायासेभि आदित्त। सोत्त आदित्त। सद्दा आदित्ता। घाण आदित्त। गंधा आदित्ता। जिह्वा आदित्ता। रसा आदित्ता। कायो आदित्तो फोटब्बा आदित्ता। मनो आदित्तो। यमिदंमनोसंफस्सपच्चया उपज्जति वेदयित सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तपि आदित्त। केन आदित्तं ? रागग्गिना दोसग्गिना मोहग्गिना आदित्त। जातिया जराय मरणेन सोकेभि परिदेवेभि दुक्खेभि दोमनसेभि उपायासेभि आदित्त ति वदामि। एवं पस्सं भिक्खवे सुतवा अरियसावको चक्खुस्मि पि निब्बिंदति। रूपेसुपि

जिनसे सुख, दु ख वा सुख और दु ख दोनो से भिन्न वेदना उत्पन्न होती है, वह भी जल रहे हैं। पर हे भिक्षुओ ! यह तो समझो कि यह सब किस आग से जल रहे हैं ? हमसे सुनो। यह सब राग की आग से, दोष की आग से और मोह की आग से जल रहे हैं। जाति, जरा, मरण, शोक, परिदेवना, दु ख, दौर्मनस्य इत्यादि परिणामों से जल रहे हैं। इसी प्रकार श्रोत्रेंद्रिय और उसका विषय गध, जिह्वा और उसका विषय रस, शरीर और उसका विषय स्पर्श, मन और उसका विषय धर्म सब जल रहे हैं। रागाग्नि, दोषाग्नि और मोहाग्नि उन्हे जला रही है। जाति, जरा मरण, शोक, परिदेवना, दु ख को जानकर श्रुतवान् आर्य श्रावक को उचित है कि वह चक्षु और रूप, श्रोत्र और शब्द, घ्राण और गध, जिह्वा और रस, शरीर और स्पर्श तथा मन और धर्म से आसक्त न हो। निर्वेद प्राप्त होकर विराग को प्राप्त हो। विराग प्राप्त होने से

निब्बिंदति। चक्खुविञ्ञाणेपि निब्बिदति। चक्खुसम्फस्सेपि निब्बिदति। यमिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति, वेदयितं सुख वा दुक्ख वा अदुक्खमसुख वा तस्मिंपि निब्बिदति। सोतस्मिंपि निब्बिदति। सद्देसुपि निब्बिंदति। घानस्मिंपि निब्बिदति। गधेसुपि निब्बिदति। जिव्हायपि निब्बिंदति। रसेसुपि निब्बिदति। रसेसुपि निब्बिदति। कायस्मिपि निब्बिदति फोट्ठब्बेसुपि निब्बिदति। मनस्मिपि निब्बिंदति। धम्मेसु पि निब्बिन्दति। मनो विञ्ञाणेपि निब्बिदति। मनोसम्फस्सेपि निब्बिदति। यमिद मनो सम्फस्स पच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुख वा दुक्ख वा अदुक्खमसुखं वा तस्मिपि निब्बिन्दति। निब्बिद विरज्जति। विरागो विरज्जति। विरत्तस्मि विरत्तम्हीति ञाण होति। खीणाजाति। वुसित ब्रह्म चरिय। कत करणीय। नापरं इतत्था याति पजानातीति।

ही मनुष्य विरक्त होता है। विरक्त होने पर ज्ञान उत्पन्न होता है। तब उसका जन्मक्षय होता है। तभी उसका ब्रह्मचर्य समाप्त होता है अर्थात् उसे ब्रह्मचर्य पालन का फल मिलता है। वह अपना कर्तव्य समाप्त करता है। वह फिर यहाँ आकर जन्म-ग्रहण नही करता।

(१५) राजगृह

सब्बपापस्स समन कुसलस्स उपसपदा ।
सचित्तपरियोह्वन एत बुद्धानुसासनं ॥

गयशीर्ष पर्वत पर कुछ दिन काल बिताकर महात्मा बुद्धदेव भिक्षु सघ साथ लिए राजगृह गए । राजगृह में वे यष्टिवन मे उतरे । राजा बिंबसार को जब भगवान् बुद्धदेव के आने का समाचार मिला, तब वे अनेक ब्राह्मण पडितों को साथ लेकर यष्टिवन मे भगवान् बुद्धदेव के पास आकर उपस्थित हुए । अभिवादन और कुशल प्रश्नानतर सब लोग यष्टिवन मे बुद्धदेव के पास बैठ गए । महात्मा बुद्धदेव के पास मगध के परमपूज्य विद्वान् अग्निहोत्री उरुविल्व-काश्यप को अपने भाइयों और शिष्य मडली समेत बैठे देख सब पडितो के मन मे यह क्षोभ उत्पन्न हुआ कि उरुविल्वकाश्यप भगवान् बुद्धदेव के अतेवासी हैं अथवा उन्होने सन्यास ग्रहण किया है और बुद्धदेव ने उनसे सन्यास गृहण कर उनका शिष्यत्व स्वीकार किया है । लोगो को उरुविल्वकाश्यप जैसे कर्मनिष्ठ ब्राह्मण को अग्निहोत्र त्याग कर श्रमणरूप धारण किए देख अत्यत विस्मय हुआ । जब लोगों से न रहा गया तो उन्होंने विवश हो उरुविल्व-वासी उरुविल्वकाश्यप से पूछा कि " महात्मन् उरुविल्व-काश्यप, क्या * आप कृपा कर यह बता सकते हैं कि आपने अग्निहोत्र का

*कि मेवदिस्वा उरुवेलवासी, पहासि अ.ग्गिं किसको वदानो ।
पुच्छामि तं कस्सप एतमत्थ कथं पहीनं तव आग्गिहुत्त ।

त्याग क्यों किया ? उरुविल्वकाश्यप ने कहा—" यज्ञो * के करने का फल केवल स्वर्गमात्र है। स्वर्ग मे रूप, शब्द, रस, आदि तथा स्त्रियाँ और कामनाएँ हैं और यह उपाधियो मे मलवत् है, यह जानकर मेरा चित्त अग्निहोत्र और इष्टियो मे नहीं लगता।" यह कहकर उरुविल्वकाश्यप भगवान् बुद्धदेव के चरणो पर यह कहते हुए गिर पडा कि—"आप ही मेरे शासक हैं और मै आपका श्रावक हूँ।" काश्यप की यह बात सुन उन ब्राह्मणो की शका जाती रही और वे लोग सब हो गए। उस समय भगवान् बुद्धदेव ने दान और शील का माहात्म्य वर्णन कर क्रमश ससार की असारता दिखाते हुए चारो आर्य्य सत्य दु ख, समुदय, निरोध और मार्ग का उपदेश किया। सब लोगो ने भगवान् बुद्धदेव का उपदेश सुना। बिंबसार और उनके साथी ब्राह्मणो की आँखे खुल गई और उन लोगो ने बुद्धदेव का नया धर्म स्वीकार कर लिया। राजा बिबसार ने भगवान् बुद्धदेव से कहा—" महाराज! मैंने पूर्व मे पाँच कामनाएँ की थी। पहली यह कि मै राजा होऊँ, दूसरी, मेरे राज्य मे सम्यक् सबुद्ध पधारें, तीसरी, मै भगवान् बुद्ध की पूजा करूँ, चौथी भगवान् बुद्ध हमारे सामने अपने धर्म का उपदेश करे, और पाँचवी मैं उनका उपदेश ग्रहण कर कृतकृत्य होऊँ। भगवन्, आपके अनुग्रह से आज मेरी वे पाँचो कामनाएँ पूरी हुई।" यह कह बिब-

* रूपे च सद्दे च अथो रसे च, कामेत्थि याचभिवदन्ति यञ्ञा।
एत मलति उपधी सुञत्वा, तस्मानयिठ्ठे न हुते अहञ्जिति।

सार ने भगवान् को ससघ अपने प्रासाद मे भोजन करने के लिये आमत्रित किया।

दूसरे दिन भगवान् बुद्धदेव अपना साधुसघ लिए महाराज बिबसार के प्रासाद मे भिक्षा करने के लिये पधारे। राजा बिबसार ने बडे प्रेम से भगवान् बुद्धदेव को भिक्षुसघ समेत उत्तम भोजन कराया और चलते समय बिबसार ने वेणुवन नामक अपना उद्यान कुशोदक ले भगवान् को उनके सघ के लिये दान दिया।

भगवान् बुद्धदेव अपने सघ समेत यष्टिवन से चलकर वेणुवन मे पधारे और वहाँ रहकर अपने शिष्यवर्गों तथा आगतुक गृहस्थ आदिको को उपदेश करते रहे।

उन दिनो राजगृह के पास सजय नामक एक परम विद्वान् परिव्राजक रहते थे। उनके मठ मे दो सौ परिव्राजक रहते थे। उन परिव्राजको मे दो परम विद्वान् परिव्राजक थे जिनका नाम सारिपुत्र और मौद्गलायन था। सारिपुत्र उपतिष्य ग्राम के परम समृद्धिशाली बकत नामक ब्राह्मण का पुत्र था। उसकी माता का नाम रूपसारी था और इसी लिये उसको लोग सारिपुत्र कहते थे। मोद्गलायन कोलित ग्रामनिवासी सुजात ब्राह्मण का पुत्र था जिसे लोग उसकी माता मौद्गली के नाम से मौद्गलायन कहते थे। उन दोनो ब्राह्मण-कुमारों मे बडी मित्रता थी। वे दोनो मित्र एक दिन राजगृह के पास सुप्रतिष्ठित नामक तीर्थ के मेले मे आए थे और वही उन दोनों ब्राह्मणो को वैराग्य उत्पन्न हुआ और दोनों ने सजय परिव्राजक के आश्रम मे जाकर सन्यास ग्रहण किया था। वहाँ वे दोनों

एक दिन अश्वजित् * भिक्षु राजगृह मे भिक्षा के लिये जा रहा था। दैवयोग से उसी दिन सारिपुत्र भी राजगृह मे भिक्षा के लिये गया। मार्ग मे सारिपुत्र ने प्रशात अश्वजित् को भिक्षा के लिये जाते हुए देखा। उसकी प्रसन्न आकृति देखकर उसने अपने मन मे सोचा कि यह साधु अत्यत शातचित्त और शुद्ध अत करण का दिखाई पडता है। इसने अवश्य आत्मतत्व का साक्षात् किया होगा अथवा यह उस मार्ग मे उन्मुख हो गया है। अच्छा चलो, इसके पीछे चलकर जिज्ञासा करे। यह विचार कर सारिपुत्र उसके पीछे हो लिया। जब अश्वजित् भिक्षा लेकर नगर के बहार आया, तो पेड के नीचे बैठकर भोजन करने लगा। सारिपुत्र भी वही उसके पास बैठ गया। जब अश्वजित् भोजन कर चुका, तब सारिपुत्र ने अश्वजित् से सविनय पूछा कि—"भगवान्, आप बड़े प्रशान्त देख पडते हैं। आप कृपा करके मुझे यह बतलाइए कि आपने किससे शिक्षा ग्रहण की है और आप किस धर्म के अनुयायी हैं।" अश्वजित् ने सारिपुत्र का यह प्रश्न सुनकर कहा—

ये धम्मा हेतुप्पभवा तेस हेतु तथागतो आह।
तेस च यो निरोधो एव वादी महासमणो 'ति'॥

हे सारिपुत्र! जो हेतु से उत्पन्न धर्म दु ख रूप है, तथागत ने उनका हेतु समुदय बतलाया है और समुदय का निरोध भी बतलाया है। महाश्रमण गौतम बुद्ध ने उस निरोध का मार्ग समझकर हम लोगों को बतलाया है, वह हमारे शिक्षक हैं। मै उनका एक लघु श्रावक हूँ।

---

* अश्वजित् पचभद्रवर्गियों में से था।

अश्वजित् की यह सारगर्भित बात सुनकर सारिपुत्र को ज्ञान हो गया। उसकी आँखे खुल गईं, वह वही से दौडा हुआ मौद्गलायन के पास गया और उसने उससे सारा समाचार कह सुनाया। मौद्गलायन भी उसके साथ सजय के पास गया और बोला कि हम लोगो को भगवान् बुद्धदेव के पास चलकर धर्म की जिज्ञासा करनी चाहिए। सजय ने उसकी बात नहीं मानी और वह महात्मा बुद्धदेव के पास चलकर धर्मजिज्ञासा करने पर उद्यत नहीं हुए। निदान दूसरे दिन सारिपुत्र और मौद्गलायन दोनों राजगृह से वेणुवन को धर्मजिज्ञासा के लिये गए। सजय के अन्य शिष्य भी उन दोनो के साथ वेणुवन मे जहाँ भगवान् बुद्धदेव भिक्षुसघ को उपदेश कर रहे थे, आए।

दोनो परिव्राजक आकर भगवान् बुद्धदेव के चरणों पर गिर पडे और उन्होंने उनसे उपदेश करने की प्रार्थना की। भगवान् ने उन्हें ब्रह्मचर्य्य का उपदेश देकर कहा कि जाओ, सब दु खों का नाश करने के लिये उस समय तक ब्रह्मचर्य्य का पालन करो जब तक कि उपसपदा लाभ न हो।

भगवान् ने सारिपुत्र और मौद्गलायन को उपदेश दे कर उन्हे अपने शिष्यो में सब पर प्रधानता दी। इस प्रकार राजगृह मे द्वितीय चातुर्मास्य बिताकर उन्होंने अनेक लोगो को समय समय पर उपदेश किया जिसका घटनानुसार सविस्तर वर्णन त्रिपिटक मे भरा पडा है।

राजगृह मे भगवान् के उपदेश से इतने पुरुषो ने सन्यास ग्रहण किया कि स्त्रियोंज को, व वे नगर वा ग्राम मे भिक्षा के लिये

आया करते थे, उन्हे देखकर अत्यत भय होता था और वे परस्पर कहा करती थीं—

आगतो खो महासमणो मगधान गिरिब्बज ।
सब्बे सचेय नीत्वान क सु दानि नयिस्सति ॥

अर्थात् मागधो के गिरिव्रज नामक प्रदेश मे अब तो महाश्रमण आए हैं, सब लोगो को एक एक करके उन्होने सन्यास ग्रहण कराया और उन्हें वे अपने साथ ले गए। आज वे फिर आए हैं। देखे, अब किसे ले जाते हैं।

जब स्त्रियाँ चारो ओर भिक्षुओ को जब वे भिक्षा लेने के लिये जाते थे, देख इस प्रकार बाते करने लगी तो भिक्षुओ ने भगवान् बुद्धदेव से निवेदन किया कि नगर और ग्राम की स्त्रियाँ हम लोगों को देखकर परस्पर तरह तरह की बाते करती हैं और कहती हैं कि ये लोग सब को तो मूँडकर अपने साथ ले गए, अब न जाने किसे लेने के लिये आए हैं। भगवान् ने उस समय उन भिक्षुओ से कहा—"हे भिक्षुओ, जिस समय स्त्रियाँ तुम्हे देख कर ताना मारे, उस समय तुम लोग भी उनसे यह कह दो कि तथागत और उसके भिक्षु लोगों को महावीरो की तरह धर्मपूर्वक पकडकर ले जाते हैं।" जब वे उन्हे धर्म से ले जाते हैं, तब इसमें ईर्ष्या करने की कौन सी बात है। वह गाथा यह है—

नयति हि महावीरा सद्धम्मेन तथागता ।
धम्मेन नीयमानानका उसूया विजानत 'ति' ॥

(१६) कपिलवस्तु

उत्तिट्ठेय पब्बज्जेय धम्म सुचरित चरे।
धम्मचारी सुख सेते इह लोके परम्हि च।

जब महात्मा गौतम बुद्ध धर्म के प्रचार की दु दुभी बजाते उरुवेला से राजगृह में आए और वहाँ उन्होने धर्म का प्रचार करना आरभ किया, तब उन के नए धर्म की ख्याति उत्तरीय भारत मे चारो ओर फैल गई। उनके बुद्ध होने और राजगृह में रहकर धर्म का प्रचार करने का समाचार जब कपिलवस्तु में पहुँचा, तब उनके पिता महाराज शुद्धोदन को अपने पुत्र के देखने की इच्छा और प्रेम ने विह्वल कर दिया। उन्होंने अपने एक मत्रिपुत्र को अनेक पुरुषो के साथ राजगृह मे सिद्धार्थ को जो उस समय बुद्ध हो गए थे, बुलाने के लिये भेजा। पर दैवयोग से वह मत्री और उसके सारे साथी जब राजगृह में पहुँचे, तब वे महात्मा बुद्धदेव के धर्मोपदेशों से इतने प्रभावित हुए कि उन्हे सच्चा वैराग्य उत्पन्न हो गया और सब ने शिखा मुँड़ा भिक्षुओं का भेष ग्रहण कर लिया और कपिलवस्तु या महाराज शुद्धोदन के सँदेसे को वे ऐसा भूल गए कि उन्होंने कभी महात्मा बुद्धदेव के सामने उसकी चर्चा भी न चलाई।

जब महीनों बीत गए और वह मत्रिपुत्र जिसे बुद्ध को बुलाने के लिये भेजा था, नहीं लौटा और न कुछ उसका सँदेसा ही मिला, तब लाचार हो घबराकर महाराज शुद्धोदन ने दूसरे राजपुरुष को

उन्हें बुलाने के लिये भेजा। पर उसकी भी वही दशा हुई जो पहले की हुई थी और वह भी अपने साथियों समेत पात्र चीवर ग्रहण कर भिक्षु हो गया। इस प्रकार महाराज शुद्धोदन ने लगातार कई राजपुरुषों को यथाक्रम कई बार समय समय पर महात्मा बुद्धदेव को बुलाने के लिये भेजा। पर जब राजगृह से उनमें से एक पुरुष भी वापस न आया, तब महाराज शुद्धोदन को बडी चिंता हुई और वे पुत्र-वियोग और प्रेम से अत्यंत विह्वल हो गए। वे अत्यंत घबरा गए और विवश होकर उन्होंने कालउदायिन् नामक अपने मंत्रिपुत्र को जो भगवान् बुद्धदेव के साथ खेलनेवाला और अत्यंत प्रबंधकुशल था, बुलाया और उसे आग्रहपूर्वक राजगृह जाकर गौतम बुद्धदेव को कपिलवस्तु ले आने के लिये आज्ञा दी। काल-उदायी महाराज की आज्ञा पाकर राजगृह चलने के लिये प्रस्तुत हुआ। महाराज शुद्धोदन ने कालउदायी को बिदा करते समय अपनी आँखों मे आँसू भरकर कहा—"बेटा कालउदायी! मुझे स्मरण रखना और दूसरो की भाँति तुम भी राजगृह पहुँचकर इस दुखी बुड्ढे को न भूल जाना। कुमार से मेरा सँदेसा कहना और एक बार उन्हे कपिलवस्तु में अवश्य ले आना। कहना कि तुम्हारा बुड्ढा बाप तुम्हारे वियाग मे रो रोकर अधा हो रहा है। एक बार तो वह मुझे अपने दर्शन दे जाय। इस क्षणभंगुर जीवन का ठिकाना ही क्या है! आज मरूँ वा कल। ऐसा न हो कि कुमार के देखने की लालसा मेरे मन ही में रह जाय और प्राण निकल जायँ।"

कालउदायी महाराज शुद्धोदन से शपथ करके कपिलवस्तु से बिदा हुआ और थोडे ही दिनों में अपने साथियो समेत राजगृह में पहुँचा। भगवान् बुद्धदेव का प्रथम चातुर्मास्य राजगृह मे समाप्त हो चुका था और वे वेणुवन मे भिक्षुसघ मे बैठे लोगो को उपदेश कर रहे थे। भगवान् के उपदेशों को सुन कालउदायी पर, उनका इतना प्रभाव पडा कि वह विवश हो उनके धर्म को स्वीकार कर भिक्षु बन अपने साथियो समेत अन्यो की भाँति सघ मे रहने लगा। थोडे दिनो के बाद हेमत ऋतु का भी अत हो गया और बसत ऋतु के आगमन से प्रकृति मे अद्भुत परिवर्तन प्रारभ हुआ। एक दिन कालउदायी ने भगवान् बुद्धदेव से निवेदन किया— "भगवन्! भिक्षुओं को सदा एक स्थान पर न रहना चाहिए। बहुत दिनो तक एक स्थान मे रहने से उनमे रागादि दोषो के उत्पन्न होने की सभावना है। भिक्षुओं को वर्षा ऋतु के अतिरिक्त अन्य ऋतुओं मे पर्यटन करने की आवश्यकता है। अत यदि अनुचित न हो तो भगवान् इस ऋतु मे भिक्षुसघ के साथ देशाटन के लिये निकले। अच्छा हो, यदि सघ के लोगों के साथ भगवान् कपिलवस्तु की ओर पधारे और महाराज शुद्धोदन को जो आपके वियोग मे अत्य त क्षीण हो गए हैं, शांति प्रदान करें।" भगवान् बुद्धदेव को कालउदायी की बात अच्छी लगी और वे अपने सघ समेत राजगृह से कपिलवस्तु को प्रस्थित हुए।

दो महीने लगातार चलकर भगवान् बुद्धदेव अपने भिक्षुसंघ समत कपिलवस्तु में पहुँचे और कपिलवस्तु के पास न्यग्रोध-

कानन मे ठहरे। कपिलवस्तु में उनके आने की खबर पाकर सब छोटे बडे उन्हें देखने के लिये उठ दौड़े। महाराज शुद्धोदन शाक्यो के साथ बडे दल बल से महात्मा बुद्धदेव के दर्शन के लिये न्यग्रोध-कानन मे आए और सिद्धार्थ को देख अपना जन्म सफल कर बडे आनदित हुए। महाराज शुद्धोदन और उनके भाइयो ने समझा था कि कुमार हम लोगो के साथ वही बर्ताव करेंगे जो वे पहले राजकुमार होने की अवस्था मे करते थे। पर बुद्धदेव ने उनके आने पर न तो उनको अभ्युत्थान दिया और न उन्हे प्रणाम ही किया, किंतु वे अपने स्थान पर बैठे हुए सब लोगो को उपदेश करते रहे। उनका यह अद्भुत आचरण और भाव देख कितनो के मन में क्षोभ हुआ, पर महाराज शुद्धोदन समझ गए कि अब कुमार, सिद्धार्थकुमार नही है। वह ससार को दु ख से छुडानेवाला बुद्ध तथागत है, उसमें भेदभाव नही है, वह सब में समभाव रखता है और सब को समान दृष्टि से देखता है। निदान महाराज शुद्धोदन ने बुद्धदेव को अभिवादन किया और उन्हे देख सब लोग अभिवादन कर बैठ गए। थोडी देर तक सब लोगो ने उनका धर्म-उपदेश सुना और वे उससे शाति लाभ कर कपिलवस्तु नगर में लौट आए।

दूसरे दिन भगवान बुद्धदेव भिक्षुसंघ के साथ कषाय-वस्त्र धारण कर हाथ मे भिक्षापात्र ले कपिलवस्तु मे भिक्षा के लिये पधारे। वे भिक्षुसघ के नियमानुसार घर घर भिक्षा लेने लगे। सब कपिलवस्तुवासी कुमार को भगवा वस्त्र धारण

किए हाथ में भिक्षापात्र लिए देखकर रोने लगे। चारों ओर हाहाकार मच गया कि आज सिद्धार्थकुमार कपिलवस्तु मे भगवा वस्त्र धारण कर भिक्षा पात्र लिए घर घर भिक्षा माँग रहे हैं। यह समाचार राजमहल मे पहुँचा। गोपा कुमार को भीख माँगते देख ढाढ मारकर रोने लगी। वह अपने ससुर महाराज शुद्धोदन के पास दौड़ी हुई गई और बोली—"अत्यत लज्जा की बात है कि कपिलवस्तु में आकर भी आर्यपुत्र को घर घर भिक्षा माँगनी पड़े।" महाराज शुद्धोदन नगे पैर दौडे हुए भगवान् बुद्धदेव के पास पहुँचे और आँखो मे आँसू भरकर कुमार से बोले—"हे वत्स। तुम क्यो द्वार द्वार भिक्षा माँगकर मुझे लज्जित करते हो? क्या तुमने यह समझा है कि मैं तुमको और तुम्हारे सघ को भोजन न दे सकूँगा?" तथागत ने शुद्धोदन की बात सुनकर कहा—"महाराज! यह हमारा कुलधर्म है"। शुद्धोदन कुमार की बात सुन अत्यत विस्मित हुए और भौचक होकर बोले—"कुमार! हम क्षत्रिय राजवश मे उत्पन्न हुए हैं। हमारे कुल मे कभी किसी ने भिक्षा नही माँगी।" बुद्ध ने पिता की यह बात सुनकर कहा—"महाराज, मैं तो राजवश मे नहीं हूँ। मैं तो बुद्धो के कुल मे उत्पन्न हुआ हूँ। वे ही हमारे पूर्व पुरुष हैं। बुद्ध लोग सदा से भिक्षा माँगकर ही अपना भरण पोषण करते आए है और यही भिक्षावृत्ति उनका कुलधर्म है। उसी कुलधर्म के अनुसार मै भी द्वार द्वार भिक्षा माँगता फिरता हूँ। हे पिता! यदि किसी के पुत्र को कही कोई गुप्त निधि मिल जाय, तो उसका एकात कर्तव्य है कि वह उस निधि मे से सर्वोत्कृष्ट रत्न पिता के

चरणो मे अर्पित करे। इसी तरह मुझे जो परम निधि प्राप्त हुई है, उसमे से कुछ रत्न मै आपको समर्पण करता हूँ।"

यह कह बुद्धदेव वही खडे हो गए और पिता से बोले—"हे पिता! उठो, आलस्य मत करो। सद्धर्म का आचरण करो। धर्म करनेवाला इस लोक और परलोक में सुख से रहता है। सद्धर्म का आचरण करो, भूलकर भी असद्धर्म का अनुष्ठान मत करो। सद्धर्म का पालन करनेवाला इस लोक और परलोक दोनों में सुखपूर्वक रहता है।"*

महाराज शुद्धोदन भगवान् बुद्धदेव का यह उपदेश सुन उन्हे उनके भिक्षुसघ समेत राजमहल मे ले गए और उन्होने उन्हे वहाँ अनेक प्रकार के भक्ष्य भोज्य खिलाकर उनका और भिक्षुसघ का सत्कार किया। भोजन कर भगवान् बुद्धदेव ने राजमहल में राजमत्री, राजपरिवार और राजकर्मचारियो को अनेक प्रकार से धर्म का उपदेश दिया और सब लोगो ने उनका धर्मोपदेश सुनकर आध्यात्मिक शाति लाभ की। इस राजमहल के उपदेश में समस्त राजपरिवार और राजमहिलाएँ उपस्थित थी, पर यशोधरा वहाँ न थी। वह अपनी कक्षा में बैठी रो रही थी और धर्मोपदेश सुनने नहीं आई थी। जब लोग उसे बुलाने गए, तब उसने स्पष्ट शब्दो मे कह दिया

---

* उत्तिट्ठे न प्पमज्जेय्य धम्म सुचरितं चरे।
धम्मचारी सुखं सेते अस्मिलोके परम्हि च॥
धम्मं चरे सुचरित न त दुच्चरितं चरे।
धम्मचारी सुखं सेते अस्मिंलोके परम्हि च॥

—" मै वहाँ न जाऊँगी। यदि भगवान् को मेरा स्नेह होगा, तो वे स्वय यहाँ मुझे उपदेश करने और दर्शन देने के लिये पधारेंगे।"

उपदेश समाप्त होने पर भगवान् बुद्धदेव महाराज शुद्धोदन की अनुमति ले अपने शिष्य सारिपुत्र और मौद्गलायन को साथ ले यशोधरा की कक्षा की ओर पधारे। चलते समय उन्होंने अपने दोनों शिष्यों सारिपुत्र और मौद्गलायन से कह दिया कि—"यदि यशोधरा विलाप करते समय विह्वल होकर मुझे स्पर्श कर ले तो तुम लोग उसे रोकना नहीं।" भगवान् अपने दोनों शिष्यों समेत यशोधरा की कक्षा मे पधारे। यशोधरा अपने गृह मे भूमि पर बैठी थी। उसने भगवान् को भगवा वेष धारण किए देखकर विलाप करना प्रारभ किया। वह विह्वल हो उनके पैरों पर गिर पडी और फूट फूट कर रोने लगी। भगवान् बुद्धदेव ने उसे अनेक प्रकार के उपदेश दे-कर उसको सात्वना की। यशोधरा को शाति दे भगवान् अपने भिक्षु-सघ के साथ न्यग्रोधाराम को लौट आए।

अब तक तो महाराज शुद्धोदन को आशा थी कि सिद्धार्थ कुमार आकर राजपद स्वीकार करेगा और वह इस वृद्ध अवस्था मे उनसे राज्य का भार लेकर उनका बोझ हलका करेगा, पर उन्होंने जब सिद्धार्थ कुमार की यह अवस्था देखी तो उन्हें नितात नैराश्य हो गया। अब उन्होंने मत्रियों से मत्रणा कर अपने दूसरे राजकुमार नद को, जो प्रजावती का पुत्र था और जिसका जन्म भी उसी दिन हुआ था जिस दिन भगवान् बुद्धदेव ने जन्म लिया था, युवराज पद पर अभिषिक्त करने का विचार किया और अच्छे अच्छे ज्योति-

षियों को बुलाकर उसके अभिषेक के लिये दिन निश्चित किया। अभिषेक का सामान होने लगा और सब सामग्री एकत्र की गई। शुभ मुहूर्त आने पर अनेक ब्राह्मणों और विद्वानो को भोजन कराया गया। इस उपलक्ष में भगवान् बुद्धदेव को भी ससघ निमत्रण दिया गया। अभी अभिषेक का मुहूर्त नही आया था कि भगवान् बुद्धदेव जो अपने सघ समेत राजगृह में भोजन कर रहे थे, अपने स्थान से उठे और नद के हाथ में जो उनके पास ही खडा था, अपना भिक्षापात्र देकर अपने सघ समेत न्यग्रोधाराम को सिधारे। नद भी उनका भिक्षापात्र लिए उनके साथ ही साथ न्यग्रोधाराम को चल पडा। जब नद चलने के लिये राजमहल से निकला, तब उसकी स्त्री ने उसे भगवान् बुद्धदेव के साथ पीछे पीछे जाते देख पुकारकर कोठे पर से कहा—" आर्य्यपुत्र! शीघ्र लौटना।" इसका उत्तर नद ने भी " अच्छा " कहकर दिया। कौन जानता था कि क्या होनेवाला है। किसे अनुमान था कि नद कुमार जिसका अभी थोडी देर मे यौवराज पद पर अभिषेक होनेवाला है, न्यग्रोधाराम मे जाकर अभी सिर मुँडाकर भगवा वस्त्र धारण कर लेगा। अस्तु।

जब नद कुमार भगवान् बुद्धदेव के पीछे उनके सघ के साथ न्यग्रोधाराम मे पहुँचा, तब भगवान् वहाँ बैठ गए और उनके सघ के लोग उनके चारों ओर घेरा बाँधकर बैठे। नद कुमार ने भिक्षा-पात्र उनके सामने रख दिया और विनीत भाव से वह उनके सामने खडा हो गया। भगवान् बुद्धदेव नद कुमार को अभिमुख करके बोले—"नदकुमार! क्या तुम ब्रह्मचर्य्य नहीं पालन कर सकते?"

नद कुमार बडे उत्साह से बोल उठा—"मैं क्षत्रिय कुमार होकर कैसे कहूँ कि मैं ब्रह्मचर्य्य नही पालन कर सकता। मै अवश्य कर सकता हूँ।" भगवान् ने उसी दम उसका सिर मुँडा उसे चीवर पहना भिक्षा पात्र दे भिक्षु बना सघ मे सम्मिलित होने को आज्ञा दी।

बहुत देर तक जब नद कुमार न लौटा, तब महाराज शुद्धोदन न अपने आदमियों को न्यग्रोधाराम से नद कुमार को बुलाने के लिये भेजा। जब वे लोग न्यग्रोधाराम में पहुँचे, तब उन्होने नद कुमार को वहाँ भगवा वस्त्र धारण किए भिक्षुसघ में बैठे हुए देखा। वे लोग वहाँ से लौटकर कपिलवस्तु गए और महाराज शुद्धोदन से उन्होंने सारा समाचार निवेदन किया। महाराज शुद्धोदन नदकुमार के भिक्षु होने का हाल सुन शोक सागर मे डूब गए। पर मत्रियों के समझाने से उन्होने धैर्य्य धारण किया और कुमार राहुल को देख अपने मन में सतोष किया।

इस घटना को हुए बहुत दिन नहीं बीते थे कि एक दिन भगवान् बुद्धदेव अपने भिक्षुसघ के साथ राजमहल में भोजन करने के लिये पधारे। जब वे भोजन कर के अपने सघ समेत उठकर न्यग्रोधाराम चलने लगे, उस समय राहुल की माता यशोधरा ने अपने पुत्र राहुल से कहा-"हे पुत्र, वह सन्यासी जो भिक्षापात्र लिए भिक्षुसघ के आगे आगे जा रहे है, तुम्हारे पिता हैं। तुम उनके पास जाकर अपने पैतृक दाय की याचना करो।" सात आठ वर्ष का कुमार राहुल राजमहल से दौडता हुआ भगवान् बुद्ध के पास पहुँचा और उनकी छाया को बचाता हुआ उनके पीछे साथ-साथ न्यग्रोधाराम मे पहुँचा।

न्यग्रोधाराम में पहुँचने पर भगवान बुद्धदेव अपने सघ समेत वहाँ बैठ गए। राहुल भी उनके पास बैठकर विनीत भाव से बोला—"भगवन्! आप मेरे पिता है। आप मेरा पैतृक स्वत्व, जिसका मै उत्तराधिकारी हूँ, कृपापूर्वक मुझे प्रदान कीजिए।" राहुल की यह प्रार्थना सुन बुद्धदेव ने अपने शिष्य सारिपुत्र को बुला कर कहा-"सारिपुत्र! तुम राहुल को प्रव्रज्या प्रदान करो।" सारिपुत्र ने उसी समय राहुल के केश मुँडा, उसे पीला भगवा वस्त्र पहना बुद्ध, धर्म और सघ की वदना करने की आज्ञा दी और राहुल ने बुद्ध, धर्म और सघ की शरण ग्रहण की।

जब राहुल के सन्यास ग्रहण करने का समाचार महाराज शुद्धोदन को मालूम हुआ, तब वे घबराकर दौडे हुए न्यग्रोधाराम मे बुद्धदेव के समीप पहुँचे और आँखो में आँसू भरकर उनसे बोले—"भगवन्! जब आपने ससार त्याग किया, तब मुझे अत्यत क्लेश हुआ। मैं दु ख सागर मे डूब गया। तदनतर जब नदकुमार गृह-त्यागी हुआ, उस समय मुझे और भी अधिक दु ख हुआ। पर मैंने राहुल कुमार को देखकर अपने मन में ढारस बाँधा था। आज आपने कुमार राहुल को भो सन्यास ग्रहण करा के मुझे अत्यत कष्ट पहुँचाया। मेरे दु ख का हाल मेरे अत करण से पूछिए। मैं इस दु ख से विकल हूँ। मेरा जो कुछ सत्यानाश होना था, सो तो हो ही गया। अब वह बदल नही सकता। पर अब आपसे एक बात के लिये आग्रह करता हूँ कि आगे आप किसी बालक को उसके पिता और माता की आज्ञा के बिना सन्यास न दें। यही मेरी अतिम

प्रार्थना है।" महाराज शुद्धोदन की यह बात सुन भगवान् बुद्धदेव ने उसी समय सघ मे इस आज्ञा की घोषणा कर दी कि जो कोई किसी बालक को उसके माता-पिता की आज्ञा और अनुमति के विरुद्ध सन्यास ग्रहण करावेगा, उसे दुष्कृत पाप लगेगा।

(१७) तृतीय चातुर्मास्य

चातुर्मास्य के समीप आ जाने से भगवान् बुद्धदेव ने अपने शिष्यों समेत कपिलवस्तु से प्रस्थान किया। मार्ग मे वे अनामा नदी के किनारे अनुपिय नामक आम्रवन में ठहरे थे कि कपिलवस्तु के छ राजकुमार जिनका नाम अनिरुद्ध, आनद, भद्रिय, किमिल, भगु और देवदत्त था, उपालि नामक नापित के साथ वहाँ आए और भगवान् के उपदेश सुनकर उन्हों ने ब्रह्मचर्य्य ग्रहण किया। कहते हैं कि कुमारो के पहले उपालि को लोगों ने शिष्य होने के लिये बाध्य किया जिसमें शाक्यकुमारो का जाति-अभिमान जाता रहे। इन शिष्यो मे अनिरुद्ध दिव्यचक्षु हो गया और उपालि विनयपिटक का आचार्य्य तथा आनद पिटक का सग्रह करनेवाला हुआ।

राजगृह मे पहुँचकर बुद्धदेव ने वेणु वन मे अपना तृतीय चातुर्मास्य किया। इसी चातुर्मास्यमें उन्होंने महाकश्यप को अपना शिष्य किया। यह महाकश्यप राजगृह के पास के महातीर्थ नामक गाँव का रहनेवाला था। इसके पिता का नाम कपिल था। कपिल मगध मे अत्यत प्रसिद्ध विद्वान् और धनधान्यसपन्न था। उसका एक ही पुत्र था जिसका नाम पिप्पल था और जो अपने पिता ही के समान विचार-बुद्धि-सपन्न था। पिप्पल का विवाह मद्रास की एक सुदरी से हुआ था जिसका नाम भद्रकापिलानी था। एक दिन पिप्पल अपने घर पर बैठा था और उसके नौकर चाकर कोठी में से चावल निकाल निकालकर धूप में सुखाने के लिये आँगन मे डाल रहे

थे। धूप लगने से चावल में से पाई निकल निकलकर अपनी प्राण-रक्षा के लिये बाहर भाग रहे थे और पक्षी उन्हे खा रहे थे। उस समय पिप्पल की दृष्टि दैवयोग से उन पाइयो पर पडी। उसने अपने मन मे उनकी दशा देख विचार किया तो उसे गृहस्थाश्रम हिंसापूर्ण कर्म दिखाई पडा, जिसमें रहकर कभी मनुष्य हिंसा से सर्वथा बच नही सकता। विशेषकर कृषि-कर्म तो उसे सर्वथा परमार्थ का बाधक प्रतीत होने लगा। उसके अत करण मे विराग उत्पन्न हुआ और उसने यह निश्चय किया कि चाहे जो हो, अब मै अवश्य गृहस्थाश्रम परित्याग करूँगा। उसने अपने चित्त मे विराग उत्पन्न होने का समाचार अपनी सहधर्मिणी भद्रकापिलानी से कहा और वह भी उसके साथ गृहत्याग करने को उद्यत हो गई। रात के समय पिप्पलकाश्यप और उसकी स्त्री भद्रकापिलानी दोनों घर से निकलकर चुपके से राजगृह की ओर भाग निकले। थोडी दूर तक तो दोनों एक ही मार्ग पर आगे पीछे गए, पर आगे चल कर वह मार्ग दो शाखाओं में फूट गया था। उस स्थान पर पहुँच कर पिप्पल ने भद्रकापिलानी से कहा—"कापिलानी! हम लोग घर से वैराग्य प्राप्त कर के निकले हैं। हमारा उद्देश्य ससारत्याग करना है। जब हमें वैराग्य प्राप्त हो गया, तो फिर साथ रहकर राग उत्पन्न करना अच्छा नही है। विधाता को भी यही ठीक जँचता है। देखो, आगे के मार्ग की दो शाखाएँ हो गई हैं, एक दक्षिण को जाती है और एक वाम को। अब हम लोगों को पृथक् होना चाहिए। मै पुरुष हूँ, अत मैं स्वभाव से दक्षिण का मार्ग ग्रहण

करता हूँ, तुम भी वाम मार्ग ग्रहण करो। अब यहाँ हमारे पारस्परिक सबध का अत होता है।" भद्रकापिलानी पति की बात सुनकर रोने लगी और बोली—"प्राणनाथ! आप क्या कह रहे हैं? पर मै आप की दासी हूँ। आपकी आज्ञा का पालन करना ही मेरे लिये श्रेयस्कर है। अस्तु, जो आज्ञा।" यह कहकर उसने पिप्पल की प्रदक्षिणा कर वाम दिशा का मार्ग ग्रहण किया और पिप्पल दक्षिण के मार्ग से आगे बढा। उस मार्ग से पिप्पल बहुत दूर नहीं गया था कि मार्ग मे पीपल के एक पेड के नीचे उसे भगवान बुद्धदेव अपने कुछ भिक्षुओं के साथ बैठे हुए मिले। पिप्पल भी जाकर अश्वत्थ के नीचे भगवान् के पास बैठ गया और उनके उपदेश सुनने लगा। भगवान् ने उसे धर्म, शील दान, सतोष, ब्रह्मचर्य्य आदि का उपदेश दिया जिसका प्रभाव उस पर इतना पडा कि उसने उसी समय भगवान् की शरण लेकर प्रव्रज्या ग्रहण की और वह सतोष में एतदग्र हुआ। यही महाकाश्यप सूत्रपिटक का आचार्य्य हुआ।



(१८) चतुर्थ चातुमास्य

तृतीय चातुर्मास्य के विगत हो जाने पर इसी साल भगवान् बुद्धदेव को लिछिवी के महाराज की प्रार्थना से वैशाली जाना पडा।

राजगृह की उत्तर दिशा मे गगा के बाएँ किनारे पर वैशाली का राज्य था। वहाँ उस समय लिछिवी राजवश का अधिकार था। वह राज उस समय बडा ही समृद्धिशाली था। पर उन दिनो जब भगवान् बुद्धदव राजगृह मे ठहरे हुए थे, तब वैशाली मे घोर दुर्भिक्ष पडा जिससे प्रजा बहुत दुखी हुई। दुर्भिक्ष रोग से पीडित प्रजा पर जनक्षयकारी अहिवात रोग फैला जिससे सारे राज्य की प्रजा व्याकुल हो गई। लिछिवी महाराज को प्रजा की यह दशा दख बडी चिता हुई। वे व्याकुल हो गए और अपने मन्त्रियो को बुलाकर दुर्भिक्ष और अहिवात रोग के निवारणार्थ उपाय पूछने लगे। मत्रियो मे से इस आपत्ति के निवारणार्थ किसी ने पूरणकश्यप को, किसी ने मस्करीगोशाल को, किसी ने निर्ग्रंथ-नाथपुत्र को, किसी ने अजित केशकबल को, किसी ने ककुधकात्यायन को और किसी ने सजय वेलस्थिपुत्र को बुलाने के लिये कहा *। इसी बीच में किसी

* महात्मा बुद्धदेव के समय मे उनके अतिरिक्त छ और सशोधक मगध के आस पास अपने सिद्धात का प्रचार कर रहे थे। उन सशोधकों को बौद्धग्रथो में तीर्थंकर लिखा है और उनका नाम पूरणकश्यप आदि कहा गया है। [१] पूरणकश्यप का पिता ब्राह्मण और माता चिजा-तीया थी। वह पहले कहीं दरवान था और वहीं उसे वैराग्य उत्पन्न

ने गौतम बुद्ध का नाम लिया और कहा कि आज कल वे महाराज बिंबसार के यहाँ राजगृह के वेणुवन विहार मे भिक्षुसघ के साथ ठहरे हैं। राजा ने बुद्धदेव को ऐसे समय मे आमत्रित करना उचित समझा और महाराज बिबसार के पास उन्हे बुलाने के लिये अपने मत्री को भेजा। महाराज बिबसार ने बडी धूमधाम से महात्मा बुद्धदेव को वैशाली भेजा और गगा के तट तक वे स्वय उनके साथ गए। वैशाली के लिछिवी महाराज उधर गगा के तट तक उन्हें लेने के लिये आए। गगा पार करत ही उन्हें बडे गाजेबाजे के साथ ले कर वे अपनी राजधानी वैशाली को लौटे। कहते है कि वैशाली मे

हुआ। वह वहा से भागकर जगल की ओर चला। मार्ग मे डाकुओं ने उसके वस्त्र छीन लिए। वह नगा एक गाव में गया। गाववालों ने उसे कपडा देना चाहा, पर उस ने यह कह कर वस्त्र का तिरस्कार कर दिया कि लज्जा की निवृत्ति के लिये ही वस्त्र की आवश्यकता पडती है। पाप से लज्जा होती है। निर्धूतपाप के लिये वस्त्र की आवश्यकता नहीं। वह नगा रहता था। उसके पाच सौ शिष्य थे और अस्सी हजार मनुष्य उसके अनुयायी थे। [२] मस्करीगोशाल को मंखलीगोसाल भी कहते हैं। वह गोशाल का पुत्र था जो एक दासी से उत्पन्न हुआ था। कहते हैं कि वह अपने सिर पर अपने स्वामी का घी लेकर कहीं जा रहा था। मार्ग में पैर फिसलने से गिर पडा। वह भय से भागा, पर स्वामी ने उसके वस्त्र छीन लिए। वह नगा जगल में भाग गया और विरक्त हो गया। उसके भी पाच सौ शिष्य और अस्सी हजार अनुयायी थे। [३] अजित केशकंबल, किसी पुरुष के यहा नौकर था और वहीं उसे विराग हुआ था। वह सिर मुडाता

महात्मा बुद्धदेव के पदार्पण करते ही बडी वृष्टि हुई और प्रजा के सब कष्ट दूर हो गए। वहाँ भगवान् बुद्धदेव ने रत्नसूत्र का उपदेश किया और पद्रह दिन महाराज के अतिथि रहकर वे राजगृह को लौट गए और वही उन्होने अपना चतुर्थ चातुर्मास्य व्यतीत किया।



और बाल का कंबल पहनता था। उसके मत से हिसक और खादक समान पापी थे और वह लताछेदन को प्राणिवध के समान ही दूषित मानता था। [४] ककुध कात्यायन एक विधवा ब्राह्मणी का पुत्र था। ककुध वृक्ष के नीचे उसका जन्म हुआ था, इसलिये उसे लोग ककुध और कात्यायन गोत्री ब्राह्मण के पालने से उसे कात्यायन कहते थे। अपने पालक कात्यायन ब्राह्मण के मरने पर उसने सन्यास ग्रहण किया था। उसका मत था कि शीतल जल में अनेक जीव रहते हैं, अत जल को विना उष्ण किए व्यवहार में नही लाना चाहिए। शीतल जल के व्यवहार से हिसा दोष होता है। [५] संजय के शिर में संजय वा कपित्थ के फल के समान बनौरी थी, इसलिये उसे लोग संजय कहते थे। वह वेलास्थि नामक दासी का पुत्र था। उसका मत था कि इस जन्म में जिस प्राणी से जो भाव विद्यमान रहता है, ठीक वही भाव लेकर वह दूसरा जन्म ग्रहण करता है। [६] निर्ग्रंथ नाथपुत्र नाथ नामक एक कृषक का पुत्र था। उसके पाच सौ शिष्य थे। जैनियों का कथन है कि पार्श्वनाथ के अनुयायी को नाथपुत्र कहते हैं।

(१६) कपिलवस्तु-गमन और पंचम चातुर्मास्य

चतुर्थ चातुर्मास्य राजगृह मे व्यतीत कर भगवान् बुद्धदेव भ्रमण के लिये अपने सघ समत राजगृह से रवाना हुए और वैशाली की ओर गए। वहॉ वे वैशाली नगर से थोडी दूर पर कूटागार मे ठहरे। उनके आगमन का समाचार पा लिछिवी महाराज अपने इष्ट मित्रों समेत उनके दर्शन के लिये पधारे और उनके उपदेश सुनकर उन्होंने अपनी आत्मा को शात किया। महाराज ने वही उनसे अगामी चातुर्मास्य वैशाली में व्यतीत करने के लिये प्रार्थना की और भगवान् ने उनका निमत्रण स्वीकार किया।

कूटागार मे एक मास रहने पर उन्ह समाचार मिला कि महाराज शुद्धोदन बीमार हैं और उनकी कामना है कि वे अतिम बार अपने प्रिय पुत्र बुद्ध को देख ल। बुद्धदेव ने यह समाचार पाते ही पॉच सौ भिक्षुओ को साथ ले वैशाली से कपिलवस्तु की राह ली और कपिलवस्तु पहुँचकर उन्होंने न्यग्रोधाराम मे आसन लिया। वहॉ से वे कपिलवस्तु में महाराज शुद्धोदन के राजमहल मे उन्हे देखने के लिये पधारे और महाराज को अपने अमूल्य उपदेश सुना कर उन्होंने उनकी आतमा को शाति प्रदान की। तीसरे दिन महाराज शुद्धोदन इस असार ससार को त्याग परलोक सिधारे। बुद्धदेव ने स्वय अपने हाथो से अपने पिता का अग्नि-सस्कार किया और शास्त्रानुसार उनकी अत्येष्टि क्रिया की। इस बीच में जब तक वे कपिलवस्तु मे रहे, अपनी विमाता महाप्रजावती और अन्य शाक्य

परिवार और बधुओ को अपने उपदेश से शाति प्रदान करते रहे और उन्हे दान, शील, धर्म, ब्रह्मचर्य्यादि का उपदेश देते रहे। उनके उपदेश सुनकर उनकी विमाता महाप्रजावती और अन्य शाक्य स्त्रियो ने ब्रह्मचर्य्य ग्रहण करने और भिक्षुणी होने के लिये अपनी इच्छा प्रकट की। पर भगवान् ने उन्हे यह कहकर टाल दिया कि ब्रह्मचर्य्य का पालन स्त्रियो के लिये गृहत्याग की अवस्था मे अत्यत कठिन है। वे बिचारी निराश हो रोती हुई रह गई।

थोडे दिन कपिलवस्तु मे रहकर और शाक्यो को सात्वना देकर भगवान् बुद्धदेव अपने सघ समेत वैशाली को रवाना हुए। कई सप्ताह मे मार्ग चलकर वे वैशाली पहुँचे। उन्हे वहाँ पहुँचे बहुत दिन न हुए थे कि प्रजावती गौतमी पाँच सौ शाक्य स्त्रियो को लेकर नगे पाँव कपिलवस्तु से राह के कष्ट झेलती हुई वैशाली पहुँची। पर भगवान् ने उसे कपिलवस्तु ही मे प्रव्रज्या ग्रहण करने का निषेध कर दिया था, इसलिये उसे फिर उनके पास जाने का साहस न होता था। निदान वह थकी हुई एक वृक्ष के नीचे अपनी साथिनियो समेत बैठ कर रो रही थी कि अचानक आनद, जो कहीं से आ रहा था, उन्हे मिल गया। आनद ने प्रणाम कर महाप्रजावनी से वहाँ आने और बैठकर रोने का कारण पूछा। प्रजावती ने रोकर कहा—"आनद! मैंने कुमार से कपिलवस्तु मे ब्रह्मचर्य्य पालन और प्रव्रज्या ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की थी, पर उन्होने मुझे प्रव्रज्या देने से इन्कार कर दिया था। पर मुझे ससार से विरागहो गया है। सारा जगत्

मुझे दु खमय जान पडता है। मैं विवश होकर कपिलवस्तु से इतनी शाक्य स्त्रियो को साथ लेकर प्रव्रज्या लेने के सकल्प से यहाँ आई हूँ। पर मुझे कुमार के पास जाकर फिर प्रार्थना करते डर मालूम होता है कि कही वे फिर अस्वीकार करे। इसी लिये मै यहाँ बैठी अपने भाग्य को रो रही हूँ। आनद उन्हे धैर्य्य दे कर महात्मा बुद्धदेव के पास गया और वहाँ उसने प्रजावती के आने का समाचार कह सुनाया। महात्मा बुद्धदेव ने पहले तो इन्कार किया और कहा कि स्त्रियो कि प्रव्रज्या का सदा निषेध है। ब्रह्मचर्य्य बहुत कठिन है। जब पुरुष उसके पालन करने मे असमर्थ है, तब स्त्रियों से क्या आशा की जा सकती है। पर आनद के बहुत कुछ कहने सुनने पर उन्होने महाप्रजावती को अष्टागिक * धर्म स्वीकार करने के लिये कहा और उसे वचन दिया कि इनके स्वीकार करने पर वे सघ मे ली जा सकती हैं। आनद महात्मा बुद्धदेव की आज्ञा पा हँसता

---

* भिक्षुणी के अष्टागिक धर्म ये हैं। [१] भिक्षुणी को यदि वयोवृद्धा हो तो भी, नवीन और युवक भिक्षु की भी प्रतिष्ठा करना। (२) जहा भिक्षु न हों, ऐसे शून्य स्थान में चातुर्मास्य न करना। [३] पूर्णिमा और अमावास्या के दिन भिक्षुओं से उपदेश सुनना। [४] चातुर्मास्य के अत मे भिक्षुओ के साथ संकल्प निवृत्ति करना। (५) प्रति वर्ष सघ के समक्ष पापदेशना करना। [६] भिक्षुणी होनेवाली स्त्रियों को दो वर्ष तक अपने सामने स्वधर्म की शिक्षा देकर उन्हें भिक्षुणी बनाने के लिये भिक्षु और भिक्षुणियों के संघ में उपस्थित करना। [७] भिक्षुओ की निंदा या उन पर कटाक्ष न करना। [८] भिक्षुओं के उपदेश के अनुसार चलना।

हुआ महाप्रजावती के पास आया और उन्हे लेकर भगवान् बुद्ध-देव के पास पहुँचा। वहाँ महात्मा बुद्धदेव ने उससे अष्टांगिक धर्म के पालन की प्रतिज्ञा करने के लिये कहा जिसे उसने सहर्ष स्वीकार किया और वह अपनी साथिनियो समेत भिक्षुणी बनाई गई। यह महाप्रजावती पहली स्त्री थी जिसने उपसपदा ग्रहण की।

महात्मा बुद्धदेव ने अपना पचम चातुर्मास्य वैशाली नगर के पास कूटाराम मे व्यतीत किया और वर्षा ऋतु के समाप्त हो जाने पर उन्होने कार्तिक मास मे राजगृह को प्रस्था किया।

(२०) छठा चातुर्मास्य

राजगृह पहुँचकर वे वेणु वन मे ठहरे। इस वर्ष वे राजगृह के आसपास ही उपदेश करते रहे। इसी वर्ष उन्होने महाराज बिबसार की पट्टमहिषी क्षेमा को उपसपदा ग्रहण कराई। यह क्षेमा शाकल्य-नगर के राजकुल मे उत्पन्न हुई थी और बडी रूपवती थी। एक दिन वह अपने उद्यान मे जो वेणुवन के पास था, विहार करने गई थी। वहाँ से लौटते समय वह वेणुवन मे गई। वहाँ भगवान् बुद्धदेव के उपदेश सुनकर क्षेमा को विराग उत्पन्न हो गया और उसने महाराज बिबसार की आज्ञा लेकर उपसपदा ग्रहण की।

उसी वर्ष अनेक स्त्रियो ने उपसपदा ग्रहण की जिनमे महा-कश्यप की स्त्री भद्रकापिलानी, धर्मदीना, नदमात, उत्तरा, उपनदा और राहुल-माता यशोधरा मुख्य थी।

उसी वर्ष भगवान् ने आनद के योग-विभूति प्रदर्शन पर सदा के लिये भिक्षुसघ को योग की विभूतियाँ दिखलाने से वारित किया। इसके बाद तीर्थ करो ने जब यह सुना कि बुद्धदेव ने अपने सघ को विभूति-प्रदर्शन करने से मना किया है, तब उन लोगो ने बार बार भगवान् बुद्धदेव को योग-विभूति दिखलाने के लिये आह्वान किया। जब महात्मा बुद्धदेव ने उनके आह्वान को अस्वीकार किया तब, वे लोग अनेक प्रकार की निंदा और परीवाद करने लगे।

उस वर्ष भगवान् ने राजगृह के पास मुकुल नामक पर्वत पर अपना छठा चातुर्मास्य बिताया और फिर वे राजगृह के वेणुवन मे आ विराजे।

---

(२१) सातवाँ चातुर्मास्य

वेणुवन मे आने पर महाराज बिबसार ने उनसे निवेदन किया—"महाराज ! आपके योग-विभूति-प्रदर्शन वर्जित करने से अन्य तीर्थ करो ने ससार मे बहुत प्रकार का प्रवाद फैला रखा है और वे लोग आपको पाखडी प्रसिद्ध कर रहे हैं।" महाराज ने उनसे एक बार योग-विभूति-प्रदर्शन करने के लिये आग्रह किया, जिस पर उन्होंने आगामी आषाढ पूर्णिमा के दिन उत्तर कौशल मे विभूति-प्रदर्शन करना स्वीकार किया।

उसी वर्ष श्रावस्ती का एक वैश्य जिसका नाम सुदत्त था, राजगृह मे आया और उसने महात्मा बुद्धदेव के उपदेश सुन उनका धर्म ग्रहण किया। उसने, चलते समय भगवान् से श्रावस्ती पधारने के लिये प्रार्थना की जिसे उन्होंने स्वीकार किया और चातुर्मास्य के समीप पधारने का वचन दिया।

सुदत्त ने श्रावस्ती पहुँचकर भगवान् के सघ के लिये वहाँ ज्येष्ठ कुमार का आराम मोल ले वहाँ जेतवन नामक विहार बनवाया और राजगृह से श्रावस्ती तक एक एक योजन पर धर्मशालाएँ और प्याऊ बनवाए। वसत ऋतु के आगमन के समय सुदत्त स्वय भगवान् बुद्धदेव को लाने के लिये फिर राजगृह गया और वहाँ से उन्हे सघ समत लेकर आषाढ मास के अत मे श्रावस्ती पहुँचा।

यहाँ उनके साथ साथ पुराणकश्यप, मस्करीगोशाल आदि तीर्थंकर भी श्रावस्ती आए। आषाढ पूर्णिमा के दिन बुद्धदेव अपना भिक्षापात्र लेकर आनद के साथ श्रावस्ती मे गए और, भिक्षा ले कर जब वे नगर के द्वार पर पहुँचे, तब महाराज का एक प्रधान

माली उनसे मिला और उसने एक पक्का आम उन्हे भेट किया। इस आम को भगवान् ने वहीं लेकर खा लिया और बीज वहीं फेक दिया। कहते है कि वह आम का बीज उसी समय उग गया और देखते देखते बढकर वृक्ष होकर फल गया। भगवान् वहाँ से उठकर जेतवन विहार मे आए। इसके बाद ही आँधी आई और पानी बरसा। आँधी पानी के निवृत्त होने पर महात्मा बुद्धदेव ने आम्रवन मे सब लोगो को युग्म-प्रतिहार नामक योग-लीला दिखा कर अपना विराट् स्वरूप दिखाया और एक पैर युगधर पर्वत पर रखकर और दूसरा पैर त्रयस्त्रिश नामक स्वर्ग मे रखकर वे वहा से अतर्धान हो गए। कहते हैं कि उस वर्ष भगवान् ने त्रयस्त्रिश नामक देवलोक मे अपना चातुर्मास्य किया और अपनी माता मायादेवी को, जिसने इस ससार को छोडने पर वहाँ जन्म-ग्रहण किया था, अभिधर्म का उपदेश किया।

---

(२२) आठवाँ चातुर्मास्य

जब चातुर्मास्य अत होने को आया तब सारिपुत्र और मौद्गलायन भगवान् बुद्धदेव के पास त्रयस्त्रिंश में गए और उन्होने उनसे फिर ससार मे पधारने के लिये कहा । भगवान् ने उनसे कहा कि अब हम सकाश्य नगर मे उतरेंगे । तदनुसार भगवान् आश्विन पूर्णिमा के दिन सकाश्य नगर के दक्षिण द्वार के पास उतरे ।

सकाश्य नगर से वे श्रावस्ती आए । वहाँ जेतवन विहार मे रह कर वे धर्मोपदेश करने लगे । सहस्रो मनुष्य नित्य धर्मोपदेश सुनने आने लगे । यह देख अन्य तीर्थ करो को बडी डाह हुई और वे लोग बुद्धदेव को अपमानित करने के प्रयत्न मे लगे । एक दिन उन लोगो ने सध्या के समय चिंचा नाम की एक स्त्री को भगवान् बुद्धदेव के पास उपदेश सुनने के लिये भेजा । तब से वह बराबर कई दिन तक लगातार उपदेश सुनने जाती रही । तीन मास बाद उन्होने चिंचा से यह खबर उडवा दी कि मुझे महात्मा बुद्धदेव से गर्भ रह गया है और इस प्रकार महात्मा बुद्धदेव के चालचलन पर लाछन लगाने की चेष्टा की । उन लोगो ने चिंचा को गौतम बुद्ध के पास भेजा । उसने भगवान् बुद्धदेव के पास जाकर कहा—"महाराज मुझे, आपके ससर्ग से गर्भ रह गया है, आप इसका प्रबध कीजिए । " गौतम को चिंचा की बात सुन अत्यत विस्मय हुआ और उन्होंने कहा—"चिंचा ! तू क्यों झूठ कह रही है ? तू झूठी है। सत्य का परित्याग करा मिथ्या बोलनेवाला, जिसे परलोक का भय नहीं है, कौन सा पाप नहीं कर

सकता।" * अत को यही हुआ। उसका सारा आरोप मिथ्या प्रमाणित हुआ और महात्मा बुद्धदेव का नाम और आदर और भी बढ गया। तीर्थं कर लोग अपने किए पर लज्जित हुए।

श्रावस्ती से चलकर भगवान् बुद्धदेव शिंशुमारगिरि पर गए। वहाँ नकुलपिता और नकुलमाता नाम के ब्राह्मण दंपती रहते थे। वे दोनों महात्मा बुद्धदेव को आते देख दौडे और उन्हें पकड़कर अपना ज्येष्ठ पुत्र कहकर रोने लगे और बडे आदर से अपने घर ले गए। उन लोगो ने अपने पुत्रो से उन्हें मिलाया और कहा कि यह तुम्हारे बडे भाई हैं। भगवान् ने उनका आतिथ्य स्वीकार किया।

जब शिंशुमारगिरि के राजा बोधिकुमार को भगवान् बुद्धदेव के आगमन की सूचना मिली, तब उसने भगवान् बुद्धदेव को अपने नवीन घर में जिसे उसने बनवाया था, गृह-प्रवेश के अवसर पर आमन्त्रित किया। कहते है कि उसने अपने राज्य मे अपने एक वास्तु-विद्या-विशारद बढई से, जिसका नाम चित्रवर्धकी † था, एक नवीन काष्ठ गृह बनवाया था। गृह-प्रवेश के समय राजा की रानियो ने पुत्र

---

* एक धम्म अतीतस्स मुसवादिस्स जतुना
बितिण्णपरलोकस्स नत्थिपाप अकारिय।

† कहते हैं कि घर बनने पर राजा ने चित्रवर्धकी के प्राण लेने का इसलिये विचार किया था जिससे कि वह फिर वैसा दूसरा घर न बनावे। इसका पता पा चित्रवर्धकी एक गरुड बना अपने परिवार समेत उस पर चढ उत्तर पर्वत को भाग गया और वहा काष्ठवाह नामक नगर बनाकर रहने लगा।

उत्पन्न होने की इच्छा से मार्ग मे अपने वस्त्र इसलिये बिछवा दिए कि भगवान् उन वस्त्रो पर से होकर जायँगे और उनके प्रसाद से उन्हे पुत्रलाभ होगा। पर भगवान् ने राज-प्रसाद मे जाते समय उन वस्त्रों पर पैर नही रखा और उन्हे हटवाकर वे भीतर गए। वहाँ भोजन कर उन्होने राज-परिवार को अनेक धर्मोपदेश किए और रानियो को उनके पुनर्जन्म का हाल बतला कर कहा—

अत्तान चे पिय जन्या रक्खेय्य न सुरक्खित।

तिन्न मन्यतर याम परिजग्गेय पण्डित।

यदि आत्मा प्रिय जानते हो तो इसे सुरक्षित रखो और तीन पहर मे कभी न कभी पडित होकर इसके शुभ के लिये चिंतन और प्रयत्न किया करो।

शिशुमारगिरि के महाराज के अनुरोध से भगवान् बुद्धदेव अपने शिष्यो समेत उस वर्ष वर्षा ऋतु मे वही रहे और वही उन्होने अपना आठवाँ चातुर्मास्य किया। वे चार महीने तक वहाँ के लोगों को और सघ के लोगो को उपदेश करते रहे। वर्षा का अत होने पर वे वहाँ से फिर श्रावस्ती चले आए।

(२३) नवाँ चातुर्मास्य

कोशाबी नगरी मे जहाँ का राजा उस समय उदयन * था, कुक्कुट, गोशित और पावरिक नाम के तीन वैश्य रहते थे। ये तीनो अत्यत श्रीसपन्न, उदारचरित, आस्तिक तथा दानशील थे। ये लोग साधुओ की बडी सेवा और सत्कार करते थे और अनेक साधु सन्यासी इनके यहाँ चातुर्मास्य व्यतीत किया करते थे। जिस समय भगवान् बुद्धदेव श्रावस्ती मे विराजमान थे, उस समय अनेक सन्यासियो को उनका सुयश सुनकर उनके दर्शन को उत्कठा हुई। पर वे लोग चातुर्मास्य आ जाने से कौशाबी मे उन्ही वैश्यो के यहाँ रुक गए और श्रावस्ती आकर भगवान् बुद्धदेव के दर्शन न कर सके। चातुर्मास्य के काल मे उन लोगो ने एक दिन कुक्कुट, गोशित और पावरिक से महात्मा बुद्धदेव के चरित का वर्णन किया जिसे सुनकर उन लोगो को भी बुद्धदेव के दर्शन की आकाक्षा हुई। वे लोग इस चिता मे लगे कि यदि भगवान् हमारी प्रार्थना स्वीकार करें तो हम लोग उन्हें आगामी वर्षा मे कौशाबी मे चातुर्मास्य व्यतीत करने के लिये आमन्त्रित करे। यह विचार कर उन लोगों ने गोशिताराम, कुक्कुटाराम और पावरिकाराम नामक तीन आराम कौशाबी मे अपने अपने नाम से बनवाए और तैय्यार हो जाने पर

* यह वही उदयन है जिसने मालवा देश जीतकर वहा उदयिनपुरी बसाई थी जो उज्जयिनीपुरी वा उज्जैन कहलाती है और जिसके विषय में कालिदास ने अपने मेघदूत में लिखा है—आख्यायंते उदयन कथा कोविद-ग्रामवासी। यह कुरुवंशी राजा परीक्षित के वंश का था।

उनके आमन्त्रण के लिये तैयारी कर के अनेक खाद्य द्रव्य छकड़ों पर लादकर वे चातुर्मास्य आने के पूर्व ही वसत ऋतु मे श्रावस्ती को रवाना हुए।

भगवान् बुद्धदेव शिशुमार मे अपना चातुर्मास्य व्यतीत कर वहाँ से श्रावस्ती आए और वहाँ दस पाँच दिन रहकर पश्चिम दिशा मे कुरुपाचाल की ओर चले गए। एक दिन वे कर्मासदम्म नामक गाँव मे प्रात काल गए। उस गाँव मे मागधय नामक एक ब्राह्मण रहता था। उस ब्राह्मण की एक अति रूपवती कन्या थी जिसका नाम मागधी था। ब्राह्मण सदा इस चिंता मे रहता था कि यदि कोई रूपवान विद्वान् ब्राह्मण वा क्षत्रिय मिले तो वह उसके साथ अपनी उस परम रूपवती कन्या का विवाह कर दे। जब भगवान् बुद्धदेव उस ब्राह्मण के गाँव से होकर प्रात काल निकले तो मागधय ब्राह्मण ने जो उस समय शौच को जा रहा था, उन्हे स्नातक जान प्रणाम कर गाँव के बाहर ठहरने के लिये उनसे प्रार्थना की और वह भागा हुआ अपनी स्त्री के पास गया। उसने हर्ष से अपने स्त्री से कहा—"लो, ईश्वर ने घर बैठे मनोरथ पूरा कर दिया। अभी एक स्नातक इस गाँव मे आया है। मैं शौच को जाता था, दैवयोग से वह गाँव के बाहर मिला। वह अत्यत रूपवान है। चलो देख लो, मुझे आशा है कि तुम भी उसे देखकर पसद करोगी। मागधी को भी साथ लेती चलो। यदि हो सके तो आज ही मागधी का उसके साथ पाणिग्रहण करा दे।" उसकी स्त्री उसकी बात सुन अपनी कन्या के साथ चटपट चलने को तैयार हो गई और तीनोउस स्थ ान पर

गए, जहाँ ब्राह्मण भगवान् बुद्धदेव को ठहराकर घर गया था। पर इसी बीच मे बुद्धदेव वहाँ से थोडी दूर चलकर आगे एक वृक्ष की छाया में जाकर बैठ गए थे। जब वे तीनो वहाँ पहुँचे तब वहाँ उनके पद-चिह्न के सिवाय और कुछ न था। ब्राह्मणी जो सामुद्रिक-शास्त्र की पडिता थी, उनके पद-चिह्नों को जो मार्ग मे अङ्कित हो गए थे, देखकर कहने लगी—"ब्राह्मण! यह तो चक्रवर्ती राजा वा परिव्राट् बुद्ध के पैरो के चिह्न हो सकते हैं। भला हमारा ऐसा भाग्य कहाँ जो ऐसे पुरुष को अपना जमाई बनावें। ऐसे महापुरुषों के तो दर्शन ही बडे भाग्य से हुआ करते है।" अब तीनों उनके पैरों के चिह्नो को देखते हुए आगे बढे और थोडी दूर चलकर उस वृक्ष के नीचे पहुँचे जहाँ भगनान् बुद्धदेव योगासन मारे बैठे थे। उन्हें देख ब्राह्मण मारे हर्ष के गदगद हो गया और अपनी स्त्री के साथ वहाँ वैठ उसने कुशोदक ले कन्या को भगवान् बुद्धदेव को समर्पण करना चाहा। पर भगवान् बुद्धदेव ने उससे हँसकर कहा—

दिस्वान तरह्ह् हरति रकिच
न होसि छदो अपि मेथुनस्मि।
किमेविद मुत्तकरीसपुरण्ण
पादायित सफुसितु न इच्छे॥

"हे ब्राह्मण! मार की तृष्णा, आरति और रति नाम की तीनो कन्याओं को देखकर जब मुझे इच्छा न हुई तो इस मूत्रपुरीष से पूर्ण मागधी को तो मैं पैर से भी स्पर्श करना नहीं चाहता।"

मागधी तो यह बात सुन मन ही मन जल भुनकर रह गई, पर ब्राह्मण के हृदय पर इसका प्रभाव पडा। वह समझ गया कि यह कोई महापुरुष हैं जो इस प्रकार स्त्री-रत्न का तिरस्कार कर रहा है। उसने भगवान् से पूछा—"हे भगवन्। आप इस प्रकार सर्व लक्षणयुक्त नारी—रत्न का जिसकी बडे बडे राजा चाहना करते है, तिरस्कार करते हैं। दार-परिग्रह की महिमा शास्त्रो मे वर्णन की गई है। फिर आप यह बतलाइए कि शीलव्रताननुजीवी पुरुषों की कैसे भवोत्पत्ति होती है ?" भगवान ने कहा—"हे मागधिय ! सासारिक लोगों की न ता धर्म मे प्रवृत्ति होती है और न वे यथेच्छ आध्यात्मिक शाति लाभ कर सकते हैं। आध्यात्मिक शाति न दृष्टि से, न श्रुति से और न ज्ञान से प्राप्त होती है। शीलव्रत भी आध्यत्मिक शुद्धि नहीं दिला सकता। पर इतने से यह न समझना कि ये निरर्थक है और इनका त्याग करने से ही शुद्धि प्राप्त होती है। जब तक सम, विशेष और हीन का भाव बना रहता है तभी तक विवाह है। जिस मनुष्य को भेदभाव कपित नही कर सकते, भला वह किससे विवाह करेगा। इस प्रकार जो भेदभाव-शून्य हो, गृहाश्रम त्याग कर विरक्त हो, सन्यास-ग्रहण कर लोक मे विचरता हो, वही नाग वा अधिकारी है। वह कमल-पुष्प की तरह जल और पक से उत्पन्न होने पर भी जल और पक से लिप्त नहीं होता। वेदज्ञ पुरुष भी यदि दृष्ट और आनुश्राविक सुखों में अनुरक्त हो तो वह समान वा समाधि को नहीं प्राप्त कर सकता। किंतु वह दृष्ट और आनुश्राविक सुखो मे तन्मय रहता है। ऐसे पुरुष को क्या कर्म और क्या श्रुति

त्रिविध भेदो से पृथक् कर सकती है ? सज्ञारहित और प्रज्ञारहित पुरुष को शाति नहीं मिलती। सज्ञा और दृष्टि को जिसने वशीभूत कर लिया है, वही पुरुष ससार में न लिप्त होकर घटी यत्र की तरह निर्मनस्क फिरता है और कर्म करता हुआ भो उनमे लिप्त नही होता।"

इस प्रकार मागधिय ब्राह्मण को उपदेश कर भगवान बुद्धदेव वहाँ से आगे बढे। दैवयोग से इस घटना के थोडे ही दिन बाद, कौशाबी महाराज उदयन उस गाँव में आए और मागधी का रूप लावण्य देख उसे ब्याहकर वे कौशाबी पुरी को सिधारे।

भगवान बुद्धदेव देशाटन से वसत ऋतु मे फिर श्रावस्ती गए और उनके पहुँचने के बाद ही कुक्कुट, गोशित और पावरिक अपनी भेट की सामग्री लिये श्रावस्ती मे पहुँचे और भगवान् बुद्धदेव के पास उन साधुओं के साथ जिनसे उन्हे समाचार मिला था, जाकर उनका उपदेश श्रवण किया। कई दिन रहकर उन्होंने भगवान् से कौशाबी मे नवम चातुर्मास्य करने के लिये प्रार्थना की। भगवान् ने उनका निमत्रण स्वीकर किया और वे लोग उन्हे प्रणाम कर कौशाबी को सिधारे।

वर्षा ऋतु के आगमन के समीप भगवान बुद्धदेव अपने पाँच सौ शिष्यो सहित कौशाबी पधारे और उन्होंने कुक्कुटाराम मे निवास किया। वहाँ एक मास तक वे उन तीनो श्रेष्ठो के अतिथि रहे, फिर नगरवासियो के यहाँ भिक्षा करने लगे।

महाराज उदयन की तीन रानियाँ थीं—वासवदत्ता, श्यामावती

और मागधी। उनमे मागधी कनिष्ठा थी। वासवदत्ता पाचालराज की कन्या थी और श्यामावती एक वैश्य की पुत्री थी। उन तीनो में महाराज का श्यामावती पर अधिक प्रेम था। श्यामावती की एक दासी खुज्जुहारा नाम की थी। एक दिन भगवान् एक माली के घर, जिसके यहाँ से राजप्रासाद मे फूल जाया करते थे, भिक्षा के लिये गए। माली ने भगवान् को ससघ बडे प्रेम से भिक्षा दी और उनके सदुपदेशों को श्रवण किया। दैवयोग से भगवान् के उपदेश के समय श्यामावती की दासी खुज्जुहारा भी वहाँ उपस्थित थी। भगवान् के उपदेश का प्रभाव उस दासी पर भी पड़ा। उस दिन वह फूल लेकर देर से राजमहल में गई। श्यामावती ने उससे देर से आने का कारण पूछा तो उसने साफ साफ कह दिया—"मैं जब माली के घर फूल लेने गई, तब भगवान् बुद्धदेव वहाँ भिक्षा के लिये पधारे थे। मैं उनका उपदेश सुनने लगी, इसी कारण मुझे आज देर हो गई"। जब रानी ने फूल देखे तो नित्य से उसे द्विगुण फूल दिखाई पडे। महारानी ने हँसी से पूछा—"आज तू क्यो अधिक फूल लाई है?" खुज्जुहारा ने हाथ जोडकर कहा—"महारानी की जय हो, नित्य मै मूल्य का आधा स्वय ले लेती थी, पर आज मै कुल मूल्य का फूल लाई हूँ। मैने आज से भगवान् बुद्धदेव का उपदेश सुन यह प्रतिज्ञा की है कि अब चोरी, असत्य भाषण, हिसा आदि न करूँगी। उन्हीं के उपदेश-रत्नों का यह फल है।" श्यामावती को यह सुन भगवान् बुद्धदेव पर श्रद्धा उत्पन्न हुई। उसने अपने मन मे कहा—"जिस महापुरुष के उपदेश से लोगो

की दशा में अलौकिक परिवर्तन होता है, वह महापुरुष अवश्य दर्शनीय और पूजनीय है।" यह विचार उसने अपनी दासी से भगवान् के सारे उपदेशो को जो उन्होंने माली के यहाँ दिए थे, शब्द प्रति शब्द सुना और उसे उनके दर्शनों की विशेष उत्कंठा हुई। उसने अपनी दासीसे पूछा—"भगवान् बुद्धदेव किस मार्ग से भिक्षा के लिये नगर में आया जाया करते हैं ?" और जब उ से यह ज्ञात हुआ कि भगवान् उसके महल के नीचे से होकर भिक्षा के लिये नगर मे आते जाते हैं, तब उसने अपने प्रासाद की दीवार में उनके दर्शन के लिये एक रंध्र बनवाया और वह उसमे से नित्य प्रति भगवान् के दर्शन करने लगी।

एक दिन दैवयोग से मागधी, जो भगवान् बुद्धदेव के तिरस्कार करने से उनसे मन ही मन जलती थी, श्यामावती के प्रासाद में गई। वहाँ इधर उधर घूमते हुए उसकी दृष्टि उस रंध्र पर पडी जिसे श्यामावती ने भगवान् बुद्धदेव के दर्शन के लिये बनवाया था। मागंधी ने श्यामावती से पूछा—"बहन, यह रंध्र किस लिये है ?" श्यामावती ने कहा—"यह रंध्र मैंने भगवान् बुद्धदेव के लिये बनाया है और जब भगवान् इस मार्ग से जाते हैं, तब मैं उनके दर्शन करती हूँ।" यह सुन मागधी मौन हो गई और उसने अपने घर आ श्यामावती से सवतिया डाह निकालने का इसे एक अच्छा शस्त्र बनाया।

एक दिन जब महाराज उदयन मागधी के महल मे आए तब उसने श्यामावती की अनेक प्रकार से निंदा कर के कहा—"महा-

राज ! जिस श्यमावती पर आप इतने मुग्ध हैं, उसने अपने जार से वार्तालाव करने के लिये अपने महल मे एक रध्र बना रखा है। मैंने उस रध्र को स्वय अपनी आँखों से देखा है, और जब मैंने उससे रध्र बनाने का कारण पूछा तब वह भौचक्की सी रह गई। आपको यदि मेरी बातो में आपत्ति हो तो आप स्वय श्यामावती के महल मे जाकर देख लीजिए कि अमुक स्थान में रध्र है वा नहीं।" राजा यह सब सुन विस्मित होकर रह गया और मागधी ने समझा कि अब मैं अपने प्रयत्न में सफलीभूत हो गई। एक को तो आज ले लिया, अब दूसरी वासवदत्ता रह गई। यदि हो सका तो किसी न किसी दिन उसका भी मान ध्वंस कर मैं अकेली महाराज की प्रेमपात्री महिषी बनूँगी।

दूसरे दिन जब महाराज उदयन श्यामावती के प्रासाद में गए तब उन्होने उस स्थान पर जहाँ मागधी ने बतलाया था, रध्र देखा। महाराज ने श्यामवती को बुलाकर रध्र का कारण पूछा तो उसने स्पष्ट शब्दो मे कह दिया कि मैंने यह रध्र भगवान् के दर्शन के लिये बनवाया है और मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप भी ऐसे महापुरुष के दर्शन करें और एक दिन आप उन्हें निमन्त्रित कर के भोजन कराने की मुझे आज्ञा दें। राजा को श्यामावती की यह स्पष्टवादिता बहुत रुची और उन्होंने तुरत आज्ञा दी कि यहाँ एक खिडकी लगा दी जाय। उन्होने श्यामावती को भगवान् बुद्धदेव को भिक्षा कराने की आज्ञा दी और श्यामावती ने बडे उत्साह और हर्ष से भगवान को उनके सघ समेत एक दिन निमंत्रित करके

भोजन कराया। उस दिन महाराज उदयन भी श्यामावती के प्रासाद में उपस्थित रहे और भगवान् को सप्रीति भोजन करा के उन्होंने उनके उपदेश सुने।

यह सब समाचार सुनकर मागधी और अधिक कुढी और उसने कई लडकों को लोभ देकर भगवान् बुद्धदेव और सघ के लोगो को जब वे नगर मे भिक्षा के लिये निकलते थे, गाली दिलवाना प्रारंभ किया। यद्यपि गालियों से भगवान् बुद्धदेव को कुछ कष्ट न हुआ, पर उनके संघ के भिक्षुओं को बहुत दु ख पहुँचा। उनके दु ख से दु खी हो आनद ने एक दिन भगवान् से कहा—"महाराज! यहाँ के लोग बडे दुष्ट हैं। यह लोग गाली देकर आपके भिक्षुओं का अपमान करते हैं। अत अब यहाँ से अन्यत्र चलना चाहिए। चातुर्मास्य भी अब अ त को पहुँच गया है।" आनद की यह बात सुन भगवान् बुद्धदेव ने कहा—

अहं नागोव सगामे चपतो पतित सर।
अतिवाक्य तितिक्खिस्स दुस्सीलो हि बहुज्जनो।

हे आनद! ससार में चारो ओर दु शील पुरुष हैं, तुम कहीं जाकर उनसे नहीं बच सकते हो। मैं तो हाथी की तरह, जैसे वह सग्राम में धनुष से निकले हुए बाणों को सहता है वैसे, इनके गाली-प्रदान को सहता हुआ अतिवाक्य की तितिक्षा करूँगा।

जब मागधी गाली दिलाकर थक गई और महात्मा बुद्धदेव और भिक्षु वहाँ से न टले और उधर श्यामावती को राजा और भी चाहने लगे, तब उसने एक दिन वन्य कुक्कुट मँगवाकर महाराज

से कहा—"महाराज ! श्यामावती कुक्कुट का मास बहुत अच्छा पकाती है।" महाराज ने उसकी बात सुन कुक्कुटों को श्यामावती के यहाँ भेज दिया और कहला दिया—"आज मैं वहाँ भोजन करूँगा। यह कुक्कुट श्यामावती मेरे लिये पकावे।" श्यामावती ने उस दिन अनेक प्रकार के व्यंजन महाराज के लिये बनाए और जब महाराज उदयन उसके घर मे भोजन के लिये गए तो उसने सब कुछ परोसकर उनके आगे धरा। महाराज ने कुक्कुट का मास न देख श्यामावती से पूछा कि कुक्कुट का मास कहाँ है ? उसने हाथ जोडकर कहा—"महाराज आपके सब कुक्कुटों को मैंने छोड दिया। मैं जीवहिंसा न करूँगी। जैसा मुझे दु ख होता है, वैसे अन्य प्राणियों को भी होता है। फिर इस अधम पेट के लिये कौन बुद्धिमान् पुरुष प्राणिहिंसा करना उचित समझेगा ?" राजा को श्यामावती की बात बहुत अच्छी लगी और जो कुछ व्यजन उनके सामने रखा था, उसीको खाकर वे अत्यंत सतुष्ट हुए।

अब तो मागधी और जली। उसके दो दो प्रयत्न निष्फल गए। अब वह यह सोचने लगी कि किस प्रकार वह श्यामावती को राजा का कोपभाजन बनाए। अ त को उसने यह निश्चय किया कि अब श्यामावती पर महाराज के प्राण लेने का दोष लगाना चाहिए। यह दोष प्रमाणित होने पर महाराज उसके प्राण लिए बिना न छोड़ेंगे। यह विचारकर उसने एक नाग का बच्चा मँगवाया और जिस दिन राजा श्यामावती के यहाँ जानेवाले थे, उस दिन उनकी हस्तिस्क धीणाध में उस नाग के बच्चे को भरकर श्यामावती के

यहाँ भेज दिया। जब राजा श्यामावती के यहाँ पधारे तो मागधी उनके साथ वहाँ गई। बात ही बात मे वह वीणा उठा उसके तार ठीक करने लगी। ज्योंही उसने वीणा की खूँटी मुरेडी, साँप का बच्चा जो उसमे छिपा था निकल पडा। मागधी वीणा फेंककर उठ खडी हुई और श्यामावती से कुरुख होकर बोली "अरे दुष्टा! यह तूने क्या किया?" महाराज भी उस साँप के बच्चे को देख चकित हो गए। अब तो मागधी ने श्यामावती पर महाराज के प्राण लेने के लिये प्रयत्न करने का आरोप लगाया। श्यामावती ने बार बार कहा कि साँप को वीणा मे डालना तो दूर रहा, मैं तो इसे जानती तक नहीं। पर वहाँ सुनता कौन था। महाराज क्रोध के मारे लाल हो गए और श्यामावती को बाण से बेधने के लिये उन्होंने स्वय बाण चलाया। पर धन्य अहिंसा का माहात्म्य! वे बाण बराबर छोडे जाते थे, पर श्यामावती के पास तक एक नही पहुँचता था*। निदान राजा ने श्यामावती का निर्दोष होना स्वीकार किया और उसकी सत्यता का प्रभाव देख वे उसकी शरण को प्राप्त हुए। पर श्यामावती ने कहा—"महाराज! आप भगवान् बुद्धदेव की

* बुद्धघोष ने धम्मपद की अर्थकथा मे लिखा है कि राजा ने जब बाण चलाए तब बाण श्यामावती की ओर जाकर फिर लौट आए। उस समय राजा ने श्यामावती के पैर के पास बैठकर कहा था—

सम्मुय्हामि पमुय्हामि सब्बमुय्हंति मे दिसा।
सामावती मं तायस्सु त्वं च मे सरणं भव॥
इदं सुत्वा सामवती सम्मासम्बुद्धसाविका।

शरण को प्राप्त हों।" महाराज ने कहा—"श्यामावती। मैं तेरी और महात्मा बुद्ध दोनों को शरण हूँ।"

मागधी इस घटना से भयभीत होकर भाग गई। पर वह शांत न रही और फिर एक दिन जब राजा कौशांबी से कहीं दूर चले गए थे, अवकाश पा उसने श्यामावती के प्रासाद के कपाट बंद करा के आग लगवा दी जिससे वह अपनी सखियों समेत जल कर नष्ट हो गई। जब राजा कई दिनों के बाद कौशांबी पहुँचे तो उन्हें श्यामावती के दहन का समाचार सुनकर बड़ा खेद हुआ। वे समझ गए कि यह सब करतूत मागधी की है। इस पर उन्होंने मागधी का इष्ट-मित्र सहित नाश कर दिया।

मा मं त्वं सरणं गच्छ यमहं सरणं गता ॥
स संबुद्धो महाराज एसबुद्धो अनुत्तरो ।
सरणं गच्छ तं बुद्ध त्वं च मे सरणं भव ॥

(२४) दसवाँ चातुर्मास्य

कौशाबी मे नवे चातुर्मास्य के अत मे सघ मे सौत्रातिक और विनयातिक आचार्य्यों में मतभेद हो गया। मतभेद का कारण अत्यन्त तुच्छ था। विनयानुसार पाखाना फिरने के पीछे पानी के लोटे को उलटकर रखने का विधान है और अब तक अयोध्या के आसपास की ऐसी ही परिपाटी है। एक दिन किसी सौत्रातिक आचार्य्य ने भूल से पाखाने का लोटा औंधा नही किया। इस पर विनयातिको ने बडा कोलाहल मचाया। बात बढती गई और द्वेष की आग इतनी बढ गई कि महात्मा बुद्धदेव के भी शात करने पर शात न हो सकी। महात्मा बुद्धदेव को भिक्षुओं की इस उद्दडता से बडा दु ख हुआ। महात्मा बुद्धदेव कौशाबी से श्रावस्ती गए, पर वहाँ भी वह विरोधाग्नि जो मौद्गलि नामक भिक्षु ने प्रज्वलित की थी, शात न हुई। बुद्धदेव वहाँ से अकेले आनद को साथ ले चुपके से मगध की ओर भाग निकले और राजगृह भी न जाकर वहीं एक जगल में जिसका नाम पललेय बन था, चले गए और वहाँ उन्होंने अपना दशम चातुर्मास्य व्यतीत किया। *

उसी वर्ष देवदत्त भी, जब वे कौशाबी मे थे, आनद, सारिपुत्र और मौद्गलायन की प्रधानता न सहकर रुष्ट होकर सघ से राज-

---

* कहते हैं कि इस चतुर्मास्य में भगवान् ने आनंद को भी बन के बाहर ही छोड़कर अकेले उस घोर कानन में एक वृक्ष के नीचे मौन होकर चातुर्मास्य व्यतीत किया था। इस चातुर्मास्य में केवल एक हाथी और एक बदर उन्हें वन्य फल मूल लाकर दिया करते थे।

गृह चला गया था और वहाँ महाराज बिंबसार के राजकुमार अजातशत्रु को अपने वश मे लाने के लिये प्रयत्न करने लगा। देवदत्त उस समय से राजगृह मे रहने लगा और भगवान् बुद्धदेव से विरोध करने के लिये गुप्त रीति से उद्योग करने लगा।

वर्षा ऋतु के अत मे सारिपुत्र और मौद्गलायन उन्हे ढूँढते हुए पललेय वन के पास पहुँचे। वहाँ उन्हें आनद मिला और उससे उन्हें यह मालूम हुआ कि भगवान् इस जगल मे अकेले एकातवास कर रहे हैं। आनद को साथ ले सारिपुत्र और मौद्गलायन भगवान् बुद्धदेव के पास गए और उनसे सघ की दुरवस्था निवेदन कर श्रावस्ती चलने के लिये प्रार्थना की। बहुत कहने सुनने पर भगवान् बुद्धदेव ने श्रावस्ती जाना स्वीकार किया और एक दिन जङ्गल में रहकर वे उनके साथ श्रावस्ती चलने को रवाना हुए।

भगवान् बुद्धदेव का श्रावस्ती आना सुन भडनकारी भिक्षुसंघ के लोग, जिन्हें परस्पर वाद विवाद और विरोध करने के कारण भगवान् बुद्धदेव ने परित्याग कर दिया था, श्रावस्ती की ओर चले। जब महाराज प्रसेनजित् को यह समाचार मिला कि फिर भडनकारी भिक्षु श्रावस्ती में आ रहे है और यहाँ आकर फिर परस्पर वैर विरोध कर के भगवान् को कष्ट देंगे, तब उन्होंने उन्हें आने से रोकना चाहा, पर भगवान् बुद्धदेव ने महाराज प्रसेनजित् को रोका कि यदि भिक्षुगण आना चाहते हैं तो उन्हें आने दो। जब सघ के लोग वहाँ आए तो उन लोगो ने भगवान् बुद्धदेव से क्षमा-प्रार्थना की और भगवान् ने उन्हें क्षमा कर दिया।

(२५) ग्यारहवाँ चातुर्मास्य

श्रावस्ती में थोड़े दिन रहकर नदोपनद और वक को उपदेश कर वसत ऋतु में भगवान् बुद्धदेव राजगृह गए और वहाँ ग्रीष्म ऋतु व्यतीत कर वर्षा ऋतु के आगमन के पूर्व राजगृह से दक्षिण दिशा के पर्वत के नाडक ग्राम मे गए। नाडक ग्राम राजगृह से तीन गव्यूति (जितनी दूर तक गौ की आवाज जाती है) से दूनी दूरी पर था और इस ग्राम में ब्राह्मणो की बस्ती थी। एक दिन भगवान् बुद्धदेव पूर्वाह्ण के समय अपना भिक्षापात्र और चीवर उठाकर गॉव मे भिक्षा के लिये गए। उस दिन उस गाव मे भारद्वाजगोत्रीय एक ब्राह्मण के यहाँ सीतायाग था। भगवान् बुद्धदेव कृषक भारद्वाज के यहाँ भिक्षा के लिये गए। भारद्वाज ने, उन्हे भिक्षा के लिये बैठे देखे, कहा—"हे श्रमण! मैं तो जोतता हूँ, बोता हूँ तब मुझे खाने को मिलता है, आप भी क्यो जोत बोकर नहीं खाते?" गौतम बुद्ध ने कहा—"हे ब्राह्मण! मैं भी जोत बोकर खाता हूँ।" ब्राह्मण ने यह सुन विस्मित हो हँसकर कहा—"गौतम! मेरे यहाँ तो जूआ, हल, फाल, बैल आदि कृषि की सामग्रियाँ हैं, पर आपके पास तो कुछ भी नहीं है। फिर आप कैसे जोत बो कर खाते हैं? मैं आपको कैसे कृषक मानूँ? आप तो भिक्षुक देख पडते हैं।" भगवान् ने भारद्वाज से कहा—

"भारद्वाज, मेरे पास श्रद्धा का बीज है, तप, तुष्टि और प्रज्ञा मेरा जूआ और हल है, ह्री की हरिस, मन की जोत, और स्मृति की

फाल से जोतता हूँ। कायगुप्ति, वचोगुप्ति और आहार में संयम और सत्य ही दाना और सौवर्च प्रमोचन, ओसाना है। वीर्य्य मेरे बैल हैं, योगक्षेम अधिवाहन है और मैं इस हल को नित्य अविश्रात चलाया करता हूँ जिससे मुझे किसी प्रकार का सोच नहीं होता। हे भारद्वाज ! मैं यही कृषि करता हूँ। इस कृषि से अमृत फल मिलता है और कृषक सब दु:खो से छूट जाता है।" *

भारद्वाज गौतम की यह बात सुन उनके चरणों पर गिर पड़ा और प्रव्रज्या ग्रहण कर भिक्षु हो गया।

नाडक ग्राम में गौतम ने अपना ग्यारहवाँ चातुर्मास्य बिताया और चातुर्मास्य के समाप्त होने पर वे राजगृह चले गए।

— ० —

* सधा बीजं तपो वुट्ठि पञ्जा में युगनंगल ।
हिरि ईसा मनो योत्त सति में फालपाचन ।
कायगुत्ति वचोगुत्ति आहारे उदरे यतो ।
सच्च करोमि निद्दानं, सोरच्च मे पमोचनं ।
विरिय मे धुरिधोरय्हं, योगक्खेमाधिवाहणं,
गच्छति अनिवत्तत यत्थं गत्वा न सोचति ।
एवमेसा कसी कट्ठा सा होति अमतप्फला,
एत कसी कसित्वान सब्बदुक्खा पमुच्चति ।

(२६) बारहवाँ चातुर्मास्य

राजगृह में थोडे दिन निवास कर भगवान् बुद्धदेव अपने सघ को साथ ले देशाटन को निकले और फिरते फिरते वेरजर ग्राम में पहुँचकर एक वृक्ष के नीचे बैठे। वहाँ के ब्राह्मणो ने उनकी यथा-वत् पूजा की और उनके उपदेश सुनकर उन्हें आगामी वर्षा मे वहाँ चातुर्मास्य करने के लिये आमन्त्रित किया। उनका निमत्रण स्वीकार कर भगवान बुद्धदेव वहाँ से आगे चले गए।

वर्षा ऋतु के आगमन पर वे अपने सघ समेत फिर वेरजर ग्राम मे आए। पर वहाँ उस वर्ष अनावृष्टि के कारण घोर अकाल पडा और दुर्भिक्ष के कारण वहाँ के ब्राह्मण लोग भगवान् बुद्धदेव और उनके सघ का कुछ विशेष सेवा सत्कार न कर सके। सघ को दुर्भिक्ष पडने से भिक्षा मे बडी कठिनता पडने लगी। दैवयोग से उस चातुर्मास्य मे उत्तरापथ से घोडे के व्यापारी घोडे लेकर आए और उन लोगों ने घोडो के दाने मे से कुछ काट कपटकर भिक्षुओ को देना आरम्भ किया जिसे लेकर सघ के लोगो ने अपना निर्वाह किया। आनद के अतिरिक्त सघ के सब लोग घोडो का दाना लेकर उसे कूट काटकर खाते रहे। पर आनद ने दाना लेकर उसे साफ सुथरा कर पीसकर स्वय खाया और भगवान् बुद्धदेव को खिलाया। कहते हैं कि कितने ही सघ के भिक्षुओं ने इस अनावृष्टि और दुर्भिक्ष के समय बासी रखना और दूसरे दिन बासी अन्न खाना प्रारभ किया। भगवान् बुद्धदेव को उन लोगो का

यह आचरण भला न लगा और उन्होंने उससमय से भिक्षुओं को अन्न कूटने का निषेध किया और बासी अन्न खाने पर प्रायश्चित्त का विधान किया।

वर्षा ऋतु के समाप्त होने और नवीन अन्न उपजने पर ब्राह्मणों को अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण हुआ। उन लोगों ने भगवान् बुद्धदेव के पास जाकर क्षमा प्रार्थना की और अन्न वस्त्रादि से उनका और संघ का पूजन और सत्कार किया।

(२७) तेरहवाँ चातुर्मास्य

चातुर्मास्य की समाप्ति पर भगवान् बुद्धदेव वेरुजर ग्राम से चलकर अपने सघ समेत राजगृह आए और वहाँ सघ को छोड अकेले गया चले गए। एक दिन वे गया में एक यक्ष के घर में जाकर बैठे। थोडी देर मे उस घर के स्वामी शूचीलोम और खरलोम नामक दो यक्ष जो कही गए थे, आए। उन दोनो को अपने द्वार पर एक भिक्षु बैठा हुआ देख बडा क्रोध हुआ। खर ने शूचीलोम से कहा "भाई, तुम जाओ और देखो यह कौन पुरुष है।" शूचीलोम घर पर आया और भगवान् बुद्धदेव के पास उनसे सटकर बैठा और बोला "श्रमण! मैं तुमसे कुछ प्रश्न करूँगा। यदि तुमने उत्तर दिया तो ठीक है, अन्यथा मैं तुम्हारी टाँग पकडकर गगा पार फेंक दूँगा और तुम्हारा हृदय फाड डालूँगा।" उसकी यह बात सुन भगवान् बुद्धदेव ने कहा—"मेरी टाँग पकडकर फेंकने और मरा हृदय फाडने के लिये कहना तो तुम्हारा साहस मात्र है। ससार में आज तक मुझे कोई ऐसा नही मिला जो मेरी टाँग पकडकर फेकने या मेरा हृदय फाडने का साहस करे। पर तुम प्रश्न करो, मैं उत्तर दूँगा।" यक्ष ने पूछा –

* हे गौतम! राग और दोष कहाँ से उत्पन्न होते हैं? अरति,

---

*रागो च दोसो च कुतोनिदाना
आरती रती लोमहंसो कुतोजा।
कुतोसमुट्ठाय मनोवितक्का
कुमारका धकमिवोस्सजंति।

रति और लोमहर्ष कहाँ से पैदा होते हैं? मन मे वितर्क कहाँ से होता है? जिससे यह मन एक कनकौए के समान है जिसे कुमार वा बालक इधर उधर उडाया करते हैं।"

गौतम ने कहा*—"यही आत्मा राग और दोष का निदान है। इसी से रति, अरति और लोमहर्ष उत्पन्न होते हैं। इसी से मन में वितर्क उत्पन्न होता है। यह उस कनकौए के समान है जिसे अबोध कुमार इधर उधर उड़ाया करते हैं। ये राग आदि, स्नेह से आत्मा में न्यग्रोध के स्कध के समान उत्पन्न होते हैं और कामों में बार बार मालू नामक लता के समान ओतप्रोत लपटते हैं।

हे यक्ष! जो इनका निदान जानते है, वे आनद प्राप्त करते हैं, और इस ओघ को जो अत्यत दुस्तर है, पार कर के निर्वाण प्राप्त करते हैं और उनका पुनर्भव नहीं होता।"

---

* रागो च दोसो च इतो निदाना
अरती रती लोमहसो इतोजा।
इतो समुट्ठाय मनो वितक्को
कुमारका धंकमिवोस्सजति।
स्नेहजा अत्तसम्भूता निग्रोधस्सेव खंधजा,
पुथू विसत्ता कामेसु मालुवा विततावने।
येनं पजानन्ति यतो निदानं।
तेन विनोदेन्ति सुणोहि यक्ख।
ते दुत्तर ओघमिम तरंति।
अतरुण पुब्ब अपुनब्भवाय।

भगवान् का यह उत्तर और उपदेश सुन यक्ष का सतोष हो गया और उसने उनकी अनेक प्रकार से पूजा की।

भगवान् बुद्धदेव गया से राजगृह लौट गए और ग्रीष्म ऋतु बिताकर चालिय पर्वत पर बकुलवन में उन्होंने अपना तेरहवाँ चातुर्मास्य व्यतीत किया। चातुर्मास्य के अत होने पर वे चालिय पर्वत से राजगृह गए और वहाँ शरद ऋतु व्यतीत करने लगे।

(२८) चौदहवाँ चातुर्मास्य

जाडा बीतने पर भगनान् बुद्धदेव राजगृह से श्रावस्ती को चले। श्रावस्ती मे महाराज प्रसेनजित् के पुरोहित के घर एक लडका उत्पन्न हुआ था जो बडा ही क्रूर और हिसक था। वह किसी तान्त्रिक प्रयोग के लिये पुरुषो की तर्जनी उगली काट काटकर सग्रह किया था और उन उगलियो की वह एक माला बनाकर पहने रहता था। इसी कारण लोग उसे अगुलिमाल कहा करते थे। अगुलिमाल के अत्या-चार से श्रावस्ती की प्रजा बडी दुखी थी। जब भागवान् बुद्धदेव श्रावस्ती में पहुँचे, तब वहाँ चारो ओर अगुलिमाल के अत्याचार और राक्षसी व्यवहार की चर्चा फैली हुई थी। स्वय महाराज प्रसेनजित् उसके अत्याचारों से अत्यत क्रुद्ध थे और उन्होंने उसे पकडने की आज्ञा दी थी, पर वह पकड़ा नही जाता था।

एक दिन भगवान् बुद्धदेव को भिक्षा के लिये श्रावस्ती के आप पास के किसी ग्राम मे जाते हुए देख अगुलिमाल ने उन्हें पुकारकर कहा—"हे भिक्षु! खडे रहो।" भगवान् बुद्धदेव ने उसकी बात सुन कर कहा—"मैं ठहरा हूँ।" यह कहकर वे आगे बढे, पर अगुलिमाल ने जब देखा कि वे कहते तो हैं कि मैं ठहरा हूँ पर वे आगे बढते जा रहे हैं, तब उसने फिर कहा—'भिक्षु! आप मिथ्या कह रहे हैं कि आप ठहरे हैं, आप तो भागे जाते है।" भगवान् ते उसकी यह बात सुनकर कहा—"अगुलिमाल! मै सच कहता हूँ। इस ससार में

एक मै ही स्थिर हूँ, और शेष सब चल रहे है, और सब से अधिक तुम।" अगुलिमाल को भगवान् की यह बात सुन ज्ञान उत्पन्न हो गया। वह उनके चरणो पर गिर पडा और भगवान् ने उसे साथ लिए जेतवन में आ उसे पात्र और चीवर दे भिक्षु बना दिया।

उस दिन सायकल को जब महाराज प्रसेनजित् महात्मा बुद्धदेव के दर्शन के लिये आए, तब उन्होने भगवान् बुद्धदेव से अगुलिमाल के पकडने के लिये स्वय प्रस्थान करने की अपनी इच्छा प्रकट कर के उनका आशीर्वाद मॉगा। महाराज की बातें सुन भगवान् बुद्धदेव ने हँसकर अगुलिमाल की ओर सकेत कर के कहा—'राजन्! अगुलिमाल तो आपके पास ही बैठा है। आप किसे पकडने जाइएगा ?" महाराज उनका यह वचन सुन और अगुलिमाल को प्रशात भिक्षु रूप मे देख अत्यत विस्मित हो वहाँ से अपने प्रासाद को पधारे। उस वर्ष भगवान् बुद्धदेव ने अपना चौदहवाँ चातुर्मास्य श्रावस्ती के जेतवन बिहार मे व्यतीत किया।



(२९) पंद्रहवेंहाँ, सोलहवाँ, सत्रहवाँ और अठारहवाँ चातुर्मास्य

श्रावस्ती मे चौदहवाँ चातुर्मास्य व्यतीत कर भगवान् बुद्धदेव अपने शिष्यों समेत वहाँ थोडे दिन ठहरकर देशाटन को निकले और भ्रमण करते हुए पंद्रहवीं वर्षा के प्रारंभ मे कपिलवस्तु नगर में पहुँचे और वहाँ न्यग्रोधाराम में उन्होंने अपना पंद्रहवाँ चातुर्मास्य व्यतीत किया। कपिलवस्तु से चलकर भगवान् बुद्धदेव फिर श्रावस्ती आए। वहाँ से वे एक दिन आडविक नामक ग्राम की ओर चले। यह आडविक ग्राम श्रावस्ती से तीस योजन पर हिमालय पर्वत में था। इस गाँव से एक गव्यूति पर पीपल का एक पेड था जिसके नीचे आडवक यक्ष का घर था। एक दिन आडवक ग्राम का राजा मृगया को गया था और लौटकर थककर उसी पीपल के नीचे यक्ष के यहाँ ठहर गया था। जब वह वहाँ विश्राम कर के चलने लगा तो आड-विक यक्ष आकर आगे खडा हो गया और राजा के प्राण लेने पर तुल गया। बडी कठिनाई से राजा ने उसे प्रति दिन एक मनुष्य और एक हाँडी भात देने की प्रतिज्ञा कर अपने प्राण बचाए और अपने नगर का मार्ग लिया। उस समय से प्रति दिन उस राजा की ओर से एक मनुष्य और एक हाँडी भात नगर से यक्ष के लिये भेजा जाने लगा।*

---

* यह कथा महाभारत की उस कथा से बहुत मिलती जुलती है जिसमें भीम

पहले तो राजा दंडित पुरुषो को भेजा करता था, पर जब कारागार में कोई न रह गया तब वह नवजात बालकों को भेजने लगा। दैवयोग से जिस दिन भगवान् बुद्धदेव उस ग्राम के पास पहुँचे, उसी दिन महाराज के यहाँ कुमार उत्पन्न हुआ था और नियमानुसार दूसरे दिन उसी नवजात कुमार को यक्ष के पास भेजने की पारी थी।

भगवान् बुद्धदेव आडविक ग्राम के पास पहुँचकर आडविक यक्ष के घर पर गए। उस समय यक्ष घर पर नही था। भगवान् बुद्धदेव उसके घर के द्वार पर, जिस आसन पर आडवक यक्ष बैठता था, जाकर बैठ गए। थोड़ी देर मे आडवक भी अपने घर पर आया और आते ही भगवान् बुद्धदेव से बोला,—"आप निकल जाइए।" भगवान् वहां से निकलकर बाहर खडे हो गए। उसने फिर उनसे कहा—"श्रमण, आइए"। बुद्धदेव भीतर जाकर बैठ गए। इस प्रकार उसने तीन बार गौतम बुद्ध को चले जाने और फिर आकर बैठने के लिये कहा और वे उसके आज्ञानुसार जब जब उसने निकलने को, कहा निकल गए और जब आकर बैठने को कहा, तब जाकर बैठ गए। जब उसने फिर चौथी बार निकलने को कहा, तब उन्होंने कहा—"अब तो मै न निकलूँगा। जो तेरे जी मे आवे सो कर।" यक्ष ने कहा "मैं आपसे प्रश्न करूँगा और यदि आप उत्तर न दे

का एक चक्राग्राम में रहकर बकासुर का बध करना लिखा है। अंतर यही है कि भीम ने बकासुर का बध किया और गौतमबुद्ध ने आडविक को उपदेश दे शांति प्रदान की।

मकेगे तो मै आपका हृदय फाडकर आपको मार डालूंगा।" भगवान् बुद्धदेव ने कहा—"यक्ष! मारने की तो बात ही और है। मुझे मारनेवाला ससार में कोई उत्पन्न ही नही हुआ। अस्तु, तुम प्रश्न करो, मैं तुम्हें उत्तर दूंगा।"

*यक्ष—"पुरुष के लिये कौन श्रेष्ठ धन है? सुचीर्ण सुख देनेवाला कौन है? ससार मे स्वादुतम कौन वस्तु है? किस प्रकार का जीवन व्यतीत करनेवाला श्रेष्ठ (जीवित) है?"

गोतम—'श्रद्धा पुरुष के लिये श्रेष्ठ धन है, धर्म सुचीर्ण सुख देनेवाला है, सत्य ससार मे स्वादुतम पदार्थ है, प्रज्ञा से जीवन निर्वाह करनेवाला ही ससार मे श्रेष्ठ (जीवित) है।

यक्ष—' ओघ को किससे भर सकते है? अर्णव को किससे पार कर सकते हैं? दुःख का नाश कैसे कर सकते हैं और परिशुद्धि किससे होती है?"

---

*यक्ष—किसूध वित्तपुरिसस्स सेट्ठ किसू सुचीरणो सुखमा वहाति।
किंसूहवे साद्रुतर रसानं, कथं जीविं जीवितमाहु सेट्ठ ॥
गौतम -सद्धीधवित्त पुरसस्स सेट्ठ, धम्मों सुचीरणो सुखमावहाति।
सच्च हवे साद्रुतरं रसान, पञ्ञाजीविं जीवितमाहु सेट्ठ ॥
यक्ष–कथ सुतरती ओघ, कथ सुतरति आरणवं।
कथ सुदुक्खं अच्चेति कथ सुपरिसुज्झति ॥
गौतम -सद्धाय तरती ओघ अप्पमादेन अरणावं।
विरियेन दुक्खं अच्चेति पञ्ञाय परिसुज्झति ॥

गौतम-"श्राद्ध से ओघ पार कर सकते हैं, अप्रमाद से अर्णव उतर सकते हैं, वीर्य्य से दु ख का नाश हो सकता है और प्रज्ञा से परिशुद्धि पाप्त होती है।"

यक्ष-"प्रज्ञा किससे प्राप्त होती है ? धन किससे मिलता है ? कीर्ति किससे मिलती है, किससे इस लोक से परलोक को प्राप्त हो, कर मनुष्य सोच नहीं करता ?"

गौतम—"श्रद्धावान् अप्रमत्त विचक्षण पुरुष निर्वाण की प्राप्ति के लिये आर्हत धर्म की सुश्रूषा से प्रज्ञा प्राप्त करता है। प्रत्युपकारी सहनशील पुरुष उत्थान अर्थात् आलस्य-त्याग से धन प्राप्त करता है, सत्य से कीर्ति प्राप्त करता है और दान से मित्र मिलते है। जिस गृहस्थ मे सत्य, धर्म, धृति और त्याग नामक चार धर्म होते हैं, वही मरकर इस लोक से परलोक को प्राप्त होकर सोच नही करता।*"

यक्ष-कथ सुलभते पञ्ञं कथ सुविन्दते धनं ।
कथ सुकित्ति पप्पोति कथमित्तानि गन्थति ॥
अस्मालोकापरलोक कथं पेच्चनसोचति ।
*गौतम सद्दहानो अरहत धम्मं निब्बाणपत्तिया ॥
सुस्सूसा लभते पञ्ञ अप्पमत्तो विचक्खणो ।
पतिरूपकरी धुरवा उट्ठाता विदते धन ॥
सच्चेन कित्ति पप्पोति ददं मित्रानि गंथति ।
यस्सेते चतुरो धम्मा सद्धस्स घरमेसिनो ॥
सच्च धम्मो धिती चागो सवे पेच्च न सोचति ।
अस्मा लोका परलोक स वे पेच्च न सोचति ॥

यक्ष ने भगवान् बुद्धदेव का उत्तर सुन हाथ जोडकर कहा—"भगवान्, आपके इस उपदेश से मुझे ज्ञान हो गया। आपने मेरे अंत करण मे ज्ञानरूपी दीपक जला दिया। मैं आप की शरण मे हूँ।"

उस रात को भगवान् बुद्धदेव उसी यक्ष के स्थान पर रहे। प्रात काल होते ही राजा ने अपने राजकुमार और भात की हाँडी के साथ मत्री को भेजा। यक्ष ने राजकुमार को लेकर भगवान् बुद्ध देव के आगे समर्पण किया। भगवान् ने कुमार को दीर्घायु और यक्ष को सुखी होने का आशीर्वाद देकर वह कुमार मत्री को दे दिया। मत्री राजकुमार को लिए हुए राजा के पास गया। उसे सकुशल कुमार सहित आते देख सब लोगो को हर्ष और विस्मय हुआ। राजमहल में आनद के बाजे बजने लगे।

मंत्री के चले जाने पर भगवान् बुद्धदेव यक्ष के आश्रम से उठे और अपना पात्र लेकर नगर में भिक्षा के लिये पधारे। महाराज को जब यह समाचार मिला कि भगवान् बुद्धदेव जिनकी कृपा से राजकुमार के प्राण बचे थे, नगर मे भिक्षा के लिये पधारे हैं, तब उन्होने भगवान् को बुलाकर भोजन-वस्त्र से उनकी उचित पूजा की। भगवान् ने राजप्रासाद मे भिक्षा कर राजपरिवार को उपदेश दिया। जब वे अपने स्थान से उठे और चलने के लिये खडे हुए, तब महाराज ने उनसे आगामी चातुर्मास्य आलवी ग्राम मे व्यतीत करने के लिये प्रार्थना की, जिसे स्वीकार कर भगवान् वहाँ से श्रावस्ती का वापस आए।

श्रावस्ती से भगवान् संघ समेत देशाटन को निकले और भिन्न भिन्न स्थानों में विचर कर उपदेश करते रहे। वर्षा ऋतु के आगमन पर भगवान् आलवी ग्राम मे पधारे और वहाँ महाराज के बनवाए एक आराम मे ठहर कर उन्होने अपना सोलहवाँ चातुर्मास्य व्यतीत किया।

आलवी ग्राम मे सोलहवाँ चातुर्मास्य व्यतीत कर भगवान् बुद्धदेव श्रावस्ती होते हुए राजगृह गए और वहाँ गृध्रकूट पर ठहरे। वहाँ भगवान् दो वर्ष तक रहे और अपना सत्रहवाँ और अठारहवाँ चातुर्मास्य उन्होंने वहीं व्यतीत किया।

इन दो वर्षों मे देवदत्त ने उनके साथ अनेक चाले चलीं। पहले तो उसने भगवान् से यह कहा कि राजाओं के उत्तराधिकारी युवराज होते हैं, आप धर्मराज हैं, आपको उचित है कि आप मुझे अपने युवराज पद पर नियुक्त कीजिए। भगवान् बुद्धदेव ने उसकी बात सुन कर कहा—"देवदत्त! अपने प्रिय शिष्य सारिपुत्र और मौद्गलायन के होते हुए हमें किसी को युवराज के पद पर नियुक्त करने की आवश्यकता नहीं है।" देवदत्त भगवान् का यह उत्तर सुन उनसे और खिन्न हो गया और उनका विरोध करने के लिये प्रयत्न करने लगा।

कहते हैं कि जिस वर्ष भगवान् बुद्धदेव ने अपना पद्रहवाँ चातुर्मास्य कपिलवस्तु मे बिताया था, उसी वर्ष महाराज बिंबसार ने अपने पुत्र अजातशत्रु को, जिसकी अवस्था सात वर्ष की थी, युवराज पद पर अभिषिक्त किया था। यह अजातशत्रु देवदत्त का अनन्य भक्त

था और सदा उसी के कहने मे रहता था। देवदत्त ने कई वर्ष राज-गृह मे रहकर उस पर अपना आतक जमा लिया था और अनेक साधुओं को अपना अनुयायी बना लिया था जिनमें कोकालिक, कतमोरतिष्य, खडदेव और समुद्रदत्त उसके प्रधान शिष्य थे।

एक दिन देवदत्त ने भगवान् बुद्धदेव के पास जाकर सघ के भिक्षुओ के लिये पाँच बातें स्वीकार करने के लिये आग्रह किया। वे पाचों बातें ये थी—

१—भिक्षु आजीवन वन में रहें और भिक्षा के सिवा और किसी कार्य्य के लिये ग्राम वा नगर में प्रवेश न करें।

२—भिक्षु सदा वृक्ष-मूल वा श्मशान मे अपना वास रखे और जाडे, गरमी, या बरसात मे कभी पर्णशाला वा आराम में न रहें।

३—भिक्षु सदा पासुकूल धारण करे और किसी का दिया वस्त्र धारण न करे।

४—भिक्षु सदा टुकड़ा माँगकर खायँ और किसी एक घर में भोजन न करें।

५—भिक्षु सदा निरामिष भोजन करें और भिक्षा मे भी सामिष भोज्य पदार्थ ग्रहण न करें।

देवदत्त का यह प्रस्ताव सुन कर भगवान् बुद्धदेव ने स्पष्ट शब्दो में इसका निषेध कर दिया और कहा—"मैं केवल कृत, दृश्य और उद्दिष्ट हिंसा का निषेध करता हूँ। मैं इन कृत्यों को श्रेष्ठता अवश्य स्वीकार करूँगा, पर सघ के लिये उन्हें ऐसा कर्त्तव्य नहीं ठहरा

सकता कि जिनके त्याग मे वे प्रायश्चित्तीय ठहरे।"

जब देवदत्त भगवान् बुद्धदेव की सम्मति न मिलने से निराश हो गया, तब वह यह कहकर उनके पास से बिदा हुआ कि चाहे जो हो, मैं और मेरे अनुयायी भिक्षु इन पॉच प्रस्तावित नियमों का अवश्य पालन करेंगे।

भगवान् बुद्धदेव ने देवदत्त का यह आचरण देखकर कहा—"देवदत्त, तुमने अच्छा नही किया, सघ मे भेद उपस्थित किया। जो सघ मे भेद उपस्थित करता है, ससार मे उससे बढकर कोई पापी नही हो सकता"

सुकर साधुंनासाधु साधु पापेन दुक्कर।
पाप पापेन सुकर पाप येहि दुक्कर॥

साधु के लिये अच्छा काम करना सुगम है, पर वही अच्छा काम दुष्ट मनुष्य के लिये कठिन है। वैसे ही दुष्ट के लिये बुरा काम करना सुगम है, पर साधु के लिये उसी का करना महा कठिन है।

यहॉ से देवदत्त अपने शिष्यो सहित गया को चला गया और वहाँ रह कर उपदेश करता रहा। उसके चले जाने पर भगवान् ने राजगृह से सारिपुत्र और मौद्गलायन को गया मे भेजा और जब देवदत्त आलस्य-ग्रस्त हो गया, तब सारिपुत्र और मौद्गलायन ने पारी पारी से भिक्षु सघ को मध्यमा प्रतिपदा का उपदेश करना प्रारभ किया और सबको स्पष्ट रूप से यह समझा दिया कि निर्वाण न तो दु ख सहन से प्राप्त हो सकता है और न सुख में लिप्त होने से प्राप्त हो सकता है। गीता में भगवान् ने कहा है—

योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाधिगच्छति ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ।।
उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बधुरात्मैव रिपुरात्मन ।।

अर्थात् योगयुक्त मुनि ब्रह्म को शीघ्र नहीं प्राप्त होता, पर जिसने ममत्व का नाश कर सब भूतो को अपनी आत्मा जाना है, वह सब कुछ करता हुआ भी कर्म दोष से लिप्त नही होता। इसलिये मनुष्य को अपने आप अपना उद्धार करना चाहिए और अपने शरीर को कष्ट नहीं देना चाहिए। मनुष्य आप ही अपना मित्र और आप ही अपना शत्रु है।

दूसरे दिन जब सारिपुत्र और मौद्गलायन गया से राजगृह को चले, तब देवदत्त के साथ के सब भिक्षु उसे छोड़कर उनके साथ चले गए और देवदत्त अकेला रह गया।

जब देवदत्त को भिक्षुओं ने त्याग दिया तब तो देवदत्त का क्रोध और भी भड़का और वह भगवान् बुद्धदेव के प्राण लेने के प्रयत्न मे लगा।

(३०) उन्नीसवाँ और बीसवाँ चातुर्मास्य

भगवान् बुद्धदेव अपना अठारहवाँ चातुर्मास्य राजगृह में कर के देशाटन को निकले और देशाटन करते हुए अपना उन्नीसवाँ चातुर्मास्य चालिय पर्वत मे व्यतीत कर राजगृह लौट आए और गृध्रकूट पर ठहरे। देवदत्त तो पहले ही से उनके प्राण लेने के प्रयत्न मे लगा था, एक दिन जब भगवान् बुद्धदेव नगर मे भिक्षा के लिये पधारे तो उसने अजातशत्रु से मन्त्रणा कर के नालागिरि नामक मत्त हाथी को छुडवा दिया। पर मत्त हाथी भगवान् बुद्धदेव के सामने कुत्ते की तरह बैठ गया और उन पर आक्रमण न कर सका। देवदत्त जब हाथी से उनके प्राण लेने मे अकृतकार्य्य हुआ, तब लज्जित होकर उनके मारने के लिये उसने धनुर्धरो को नियत किया, पर वे लोग भी उनके मारने में असमर्थ हुए। निदान हारकर देवदत्तने भगवान् बुद्धदेव पर जब वह गृध्रकूट पर्वत के नीचे से जा रहे थे, ऊपर से पत्थर लुढका दिया, जिससे भगवान् बुद्धदेव के बाए पैर के अँगूठे में चोट आ गई।

भगवान् को इस चोट से अधिक व्यथा हुई, जिसकी चिकित्सा के लिये उन्होंने जीवक नामक चिकित्सक को बुलाया। यह जीवक राजगृह का रहनेवाला था और तक्षशिला के विद्यालय मे इसने शिक्षा प्राप्त की थी। यह अट्ठारह विद्याओं और चौंसठ कलाओ का जानकार था। महाराज बिबसार ने इसे अपने दरबार मे राजवैद्य नियत किया था। यह भगवान् बुद्धदेव का बडा भक्त था और सघ की धर्मार्थ

चिकित्सा किया करता था। एक बार लोग, देश मे रोग फैलने पर केवल सुलभ चिकित्सा के लालच से भिक्षु बन सघ मे घुसकर भगवा वस्त्र पहन बिना सच्चे वैराग्य के भिक्षु हो गये थे और जीवक को विवश हो उनकी चिकित्सा करनी पडती थी। जब भगवान् बुद्धदेव को यह भेद मालूम हुआ, तब उन्होंने आगे के लिये यह नियम कर दिया कि अब से कोई रोगी पुरुष सघ मे भिक्षु बनाकर न लिया जाय। जीवक ने राजगृह मे भगवान् के लिये एक विहार भी बनवाया था, जहाँ भगवान् बुद्धदेव कभी कभी जाकर रहा करते थे। भगवान् के बुलाने पर जीवक तुरत उनके पास दौडा हुआ आया और उसने उनकी चोट की मरहम पट्टी की। उस समय जीवक ने भगवान् बुद्धदेव से पूछा—

"महाराज! लोग आपको जीवन्मुक्त कहते हैं, पर क्या आपको भी विविध ताप सताते है और शरीर मे कष्ट होता है?" इस पर बुद्धदेव ने कहा—

गतद्धीनो विसोकस्स विप्पमुत्तस्स सब्बधी।
सब्बगगठपहीनस्स परिणाहोन विज्जति॥

हे जीवक! रोगहीन, शोकहीन, सर्वधी और विप्रमुक्त पुरुष को जिसकी सब ग्रथियाँ छूट गई हो, कष्ट अवश्य होता है। पर उस कष्ट से उसे राग द्वेष नही उत्पन्न होता, वह ससार का धर्म समझ उसे सहता है। सुख-दु ख उसे होते तो हैं, पर उनसे उसकी वृत्ति मे चंचलता नही आती। यही बद्ध और मुक्त मे अतर है। जीवक

ने भगवान् का यह उपदेश सुन बौद्ध धर्म स्वीकार किया और जब तक भगवान् बुद्धदेव राजगृह मे रहते थे, वह प्रति दिन तीन बार उनके दर्शन को आया करता था।

भगवान् बुद्धदेव ने अपना बीसवाँ चातुर्मास्य राजगृह मे व्यतीत किया। यह उनका अंतिम चातुर्मास्य था जो उन्होंने राजगृह मे किया था। राजगृह में देवदत्त का अधिकार बहुत बढ गया था और वह राजकुमार का गुरु बना हुआ था। राजकुमार अजातशत्रु उसके हाथ मे था और काठ की पुतली की तरह उसके कहने पर काम करता था। देवदत्त के संग में रहकर राजकुमार का स्वभाव क्रूर हो गया था। वह बात बात में अपने पिता महाराज बिंबसार की अवज्ञा करता था और सदा उन लोगो को जो बूढे महाराज के विश्वासपात्र और प्रीति-भाजन थे, कष्ट पहुँचाया करता था। सच है, संगत का बड़ा प्रभाव होता है।

महात्मा बुद्धदेव ने जब यह देखा कि दुष्ट अजातशत्रु अपने पिता के इष्टमित्रो और विश्वासपात्र पुरुषों को कष्ट देने पर तुला हुआ है, तब वे अपना बीसवाँ चातुर्मास्य येन केन प्रकारेण राजगृह मे बिताकर श्रावस्ती को चले गए, और आगे के लिये उन्होंने यह संकल्प किया कि अब यावज्जीवन श्रावस्ती के अतिरिक्त अन्यत्र वर्षा ऋतु व्यतीत न करूँगा।

—***—

(२१) श्रावस्ती

राजगृह त्याग कर भगवान् बुद्धदेव श्रावस्ती पहुँचे और जेतवन-विहार मे ठहरे। यहाँ थोडे दिन रहकर वे फिर देशाटन को निकले और भिन्न भिन्न स्थानो मे उपदेश करते हुए वर्षा ऋतु के आगमन पर श्रावस्ती मे लौट आए और उन्होंने अपना इक्कीसवाँ चातुर्मास्य जेतवन-विहार में व्यतीत किया। इस प्रकार भगवान् बुद्धदेव श्रावस्ती मे पचीस वर्ष तक अपने चातुर्मास्य व्यतीत करते रहे। यद्यपि वे शरद ऋतु मे कुछ दिनो के लिये कपिलवस्तु, कुशीनार, पावा, कौशाबी, काशी, वैशाली, राजगृह आदि स्थानों मे यथाभिरुचि भ्रमण के लिये चले जाया करते थे और लोगो को अपना अमूल्य उपदेश अनेक उपचारों से देते थे, पर फिर भी वे अपना विशेष काल श्रावस्ती ही में बिताया करते थे। उनके उपदेशो से सारा त्रिपिटक परिपूर्ण है। पर यहाँ दो एक ऐसी घटनाओ का उल्लेख करना उपयोगी जान पडता है जिनसे इस बात का ठीक ठीक परिचय मिलता है कि महात्मा बुद्धदेव ने किसी नवीन धर्म की शिक्षा नही दी, किंतु उन्होने प्राचीन ऋषियो के आध्यात्मिक विज्ञान का ही, जिस पर कर्म कांड और पाखंड का आवरण चढ गया था, परिमार्जित रूप से उपदेश किया था।



(३२) जातिवाद

कहते हैं कि एक दिन भगवान अपना भिक्षापात्र उठा भिक्षा के लिये जेतबन से निकले और श्रावस्ती के पास ही एक ग्राम मे भिक्षा के लिये गए। उस गाव मे अग्नीक भारद्वाज नामक एक वेदपारग अग्निहोत्री ब्राह्मण रहता था। गौतम बुद्ध उसके द्वार पर भिक्षा के लिये गए। उस समय भारद्वाज अग्निहोत्र कर रहा था। उसने बुद्ध-देव को भिक्षा के लिये द्वार पर खडे देखकर कहा—"हे मुडी, हे वृषल, वही रहो, भीतर मत आओ।" भगवान् बुद्धदेव ने उसकी बात सुनकर कहा—"भारद्वाज ! क्या तुम जानते हो कि वृषल किसे कहते हैं ?" भारद्वाज ने कहा—"नहीं, मै तो नही जानता कि वृषल किसे कहते हैं।। आपही बतलाइए।" इस पर भगवान् बुद्ध-देव ने उसे उपदेश करना प्रारभ किया और कहा,—

"चाहे द्विज हो वा शूद्र, जो दयाहीन पुरुष प्राणियो की हिंसा करता है, वही वृषल है। गाव और नगर के मार्ग को जो बद करता वा रूँधता है, उसे वृषल कहते हैं। चाहे गृही हो वा वनी, जो पराया धन हरता वा चोरी करता है वा बिना दिए हुए पदार्थ को ल लेता है, वही वृषल है। जो ऋण लेकर मागने पर भाग जाता है वा मागने पर यह कहता है कि मै तुम्हारा ऋणी नहीं हू, वही वृषल है। जो अपने वा पराए स्वार्थ के लिये धन लेकर मिथ्या साक्षी देता है, वही वृषल है। जो जाति, मित्र या सखा की स्त्री को सहसा दूषित करता है वही वृषल है। जो माता पिता आदि पूज्य वृद्ध जनो का भरणपोषण

नहीं करता वही वृषल है। जो पाप कर के उसे छिपाता है, वही वृषल है। जो ब्राह्मण, श्रमण वा अन्य त्यागी पुरुषों को झूठ कह कर धोखे में डालता है, जो ब्राह्मण, श्रमणादि, अतिथियो को भोजन के समय आने पर भोजन नहीं देता और उनसे क्रोध-पूर्वक कटु भाषण करता है, वही वृषल है। कहाँ तक कहें, जो पापी वा दुष्ट होकर अपने को पूज्य और साधु प्रकट करता है, वह चोर ब्राह्मण होते हुए भी वृषलाधम है। हे भारद्वाज ! जन्म से न कोई ब्राह्मण होता है और न कोई वृषल, कर्म ही से मनुष्य ब्राह्मण और कर्म ही से वृषल होता है। देखो, मातङ्गऋषि चाडाल के घर में उत्पन्न हुए थे, पर वे कर्म से ब्राह्मण हो गए थे। उनके पास बडे बड़े ब्रह्मर्षि और राजर्षि उपदेश के लिये आते थे। वे विशुद्ध देवयान होकर काम और राग को वशीभूत कर के ब्रह्मलोक गए और उन्हें उनकी जाति ने ब्रह्मलोक जाने से न रोका। कितने मन्त्रकार ऋषियों के गोत्र मे उत्पन्न पुरुष पापकर्म करने से दुर्गति को प्राप्त हुए हैं। उन्हे उनकी जाति दुर्गति से न बचा सकी।"

इसी प्रकार एक दिन बुद्धदेव के पास अनेक ब्राह्मणो ने आकर उनसे प्रार्थना की कि—"गौतम ! आप प्राचीन ऋषियों का बहुत गुणगान किया करते हैं। भला यह तो बताइये, उन ऋषियों का धर्म क्या था, और उनके धर्म मे कैसे कैसे विकार उत्पन्न हो गया।" इस पर बुद्धदेव ने कहा—"प्राचीन ऋषि लोग संयतात्मा और तपोधन थे। कहाँ तक कहें, वे अपने भोजन के लिये धान्य का भी सग्रह नही करते थे। उनका स्वाध्याय ही धन-धान्य था

और वे ब्रह्मनिधि वा वेदों की रक्षा करते थे। लोग बलि वैश्वदेव में जो भाग निकालकर द्वार पर रख देते थे, उसी को खाकर वे लोग अपना और अपने शिष्यों का निर्वाह करते थे। उस समय लोग बडे सुखी थे और सब लोग धन-धान्य और रत्न आदि से सपन्न थे और सब ब्राह्मणो का आदर करते थे। ब्राह्मण लोग अवध्य, अजेय और धर्म के रक्षक होते थे, वे आचार, विद्या और यज्ञो का पालन तथा आचरण करते थे। ब्राह्मण लोग पर-स्त्री-गमन नही करते थे। वे लोग इतर वर्णों को ब्रह्मचर्य्य, शील, आर्जव, मृदुता, तप, सौवर्च और अहिसा तथा क्षांति की शिक्षा देते थे। उनमे जो सब से बडा, विद्वान् और दृढपराक्रम होता था वह ब्रह्मा कहलाता था। यह ब्रह्मा आजन्म ब्रह्मचारी रहता था और स्वप्न मे भी अपना वीर्य्य स्खलित नहीं होने देता था। ब्राह्मण लोग चावल, घी, तेल, वस्त्र आदि गृहस्थो से माँगकर लाते थे और उसी से धर्मपूर्वक अग्निहोत्रादि यज्ञ करते थे। उनके यज्ञो में गौ आदि पशुओ की हिंसा कभी नही होती थी। उनका यह कथन था कि जैसे माता, पिता, भाई बधु है, वैसे गौएँ भी है। उनसे औषध रूपी दूध का लाभ होता है। गौएँ अन्नदा, बलदा, बुद्धिदा और वर्णदा हैं। उस समय के ब्राह्मण महाकाय, वर्णवान, यशस्वी, अपने धर्म मे परायण और कर्तव्यों के पालन मे उत्सुक होते थे। जब तक ब्राह्मणों का ऐसा आचरण रहा तब तक वे सुख, मेधा, स्त्री और प्रजा से सपन्न थे। पर धीरे धीरे पीछे के ब्राह्मणों की प्रकृति बदल गई। जब उन लोगों ने देखा कि इतर वर्ण भी

सुख और ऐश्वर्य्य भोग रहे हैं, ससार मे बडे बडे राजा हैं जिनकी स्त्रियाँ आभूषणो से लदी हैं, वे लोग अच्छे अच्छे घोडों से युक्त रथो पर चढते हैं, अच्छे अच्छे घरों मे रहते हैं, उनके पास अच्छी अच्छी गौएँ हैं, अनेक दास दासियाँ है तो उनके मुँह से लार टपकने लगी। तब उन लोगों ने अनेक मत्रों की रचना की और वे महाराज इक्ष्वाकु के पास गए और उन से बोले—'महाराज! आप धन धान्य सपन्न हैं, आप को यज्ञ करना चाहिए, आप यज्ञ कीजिए।' उनके कहने से महाराज इक्ष्वाकु ने अनेक अश्वमेध, पुरुषमेध, वाजपेयादि यज्ञ किए और उन ब्राह्मणों को अनेक गौएँ, शैय्या, वस्त्र, धनधान्य, दास, दासी, रथ, घोडे आदि दक्षिणा में दिए। जब वे लोग इक्ष्वाकु से धनधान्य आदि दक्षिणा में लेकर अपने अपने घर गए और आनन्द से दिन काटने लगे, तब उनकी तृष्णा और बढ गई और बार बार नए नए मत्रों की रचना कर के उन्हो इक्ष्वाकु से अनेक यज्ञ कराए और विपुल धनधान्य प्राप्त किया। उस यज्ञ मे सहस्रो घडे दूध देनेवाली गौए मारी गईं जिसे देख कर देव, पितर, इद्र, राक्षस आदि सभी चिल्लाकर कहने लगे कि यह गोहिंसा का घोर अधर्म हो रहा रहा है। इसके पूर्व मनुष्यों में केवल इच्छा, भूख और बुढापा ही था, कोई रोग नहीं थे और पशुओ की हिंसा से ही अट्ठानबे रोग उत्पन्न हुए। यज्ञों में इस हिंसा रूपी अधर्म का प्रचार इक्ष्वाकु के समय से प्रारभ हुआ। इस प्रकार के धर्म को पुराना होते हुए भी गर्हित जानना चाहिए, और जो लोग ऐसा जानते हैं वे याजको को गर्हित समझते हैं।

इस धर्म के फैलने पर पहले शूद्र और वैश्य वर्ण पृथक हो गए, फिर क्षत्रिय वर्ण भी पृथक् हुआ और स्त्रियाँ अपने पतियों का अनादर और अवज्ञा करने लगीं। क्षत्रिय, ब्राह्मण तथा अन्य लोग जातिवाद को लेकर काम के वशीभूत हो गए।"



(३३) कृषा गोतमी

एक दिन भगवान् बुद्धदेव के पास एक स्त्री अपनी गोद मे एक मृतक बालक लिए हुए आई और उनसे प्रार्थना करने लगी कि आप अनेक औषध जानते हैं, आप कृपा कर ऐसा औषध बतलाइए जिससे मेरा यह मृत बालक पुन जोवित हो जाय। उस स्त्री-का नाम कृषा गोतमी था। वह बडे सपन्न घराने की थी। उसके एक ही पुत्र था। उसके मर जाने पर वह पुत्रशोक से विक्षिप्त हो गई थी और मृतक बालक को अपनी गोद में लिये साधु सन्यासियों से उसके जीवित होने के औषध पूछा करती थी। भगवान् बुद्धदेव ने उस पगली की बात सुनकर कहा—"गोतमी ! मै तुम्हारे बालक को जिला सकता हूँ, पर तुम मुझे ऐसे घर से एक मुट्ठी सरसों ला दो जिस मे आज तक कोई आदमी न मरा हो।" कृषा गोतमी बुद्धदेव के पास से दौडी हुई एक गाँव मे गई और ऐसा घर ढूँढने लगी जिसमे कोई आदमी न मरा हो। पर जिस घर मे वह पूछती थी, वहीं से यह उत्तर मिलता था कि अमुक पुरुष मर चुका है। इस प्रकार कई दिन वह इधर उधर मारी मारी फिरी, पर उसे एक घर भी ऐसा न मिला जिसमें कोई पुरुष न मरा हो। अत को उसे ससार में जीवन की अनित्यता का बोध हो गया और उसने अपने पुत्र को यह गाथा पढकर श्मशान में फेंक दिया—

'नगामधम्मो नो निगमस्स धम्मो न चापि य एक कुलस्स धम्मो।
सब्बस्स लोकस्स सदेवकस्स एसेव धम्मो यदिदं अनित्यता।'

अनित्यता न नगर-धर्म है, न ग्राम-धर्म है और न यह किसी कुल का धर्म है, किन्तु सब मनुष्यों और देवताओ का यही स्वभाव है कि वे एक न एक दिन मरेगे।

कृषा गोतमी अपने पुत्र को श्मशान मे फेंककर गौतम बुद्ध के पास गई। बुद्धदेव ने उसे देखकर पूछा—"गोतमी! सरसों लाई?" गोतमी ने उत्तर दिया—"महाराज! अब मुझे सरसों की आवश्यकता नही है, मरा चित्त अब स्वस्थ है।" भगवान् बुद्धदेव ने गोतमी की यह बात सुन उससे कहा—"हे गोतमी! पुत्र और पशु मे आसक्त मनुष्यो पर मृत्यु उसी प्रकार आक्रमण करती है जैसे रात को गाँवो में जल-प्रवाह आकर सोए हुए लोगों को बहा ले जाता है। जब किसी की मृत्यु आ जाती है, तब न उसके पुत्र न पिता और न बधु उसे बचा सकते हैं। शीलवान् पडितगण इसे जान कर अपने लिये निर्वाण का मार्ग साफ करते हैं।"

गोतमी को महात्मा बुद्धदेव का उपदेश सुन ज्ञान हो गया। उसने उनसे प्रव्रज्या और उपसपदा ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की और भगवान् बुद्धदेव ने उसे प्रव्रज्या और उपसपदा प्रदान की। गोतमी प्रव्रज्या लेते समय बडे हर्ष से यह गाथा गाने लगी—

पेमतो जायतो सोको पेमतो जायतो भयम्।
पेमतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयम्॥

अर्थात् प्रेम से ही शोक होता है, प्रेम से ही भय होता है, जो प्रेम से विप्रमुक्त है, उसे शोक नहीं है, और फिर भय कहाँ।

---

(३४) विशाखा

श्रावस्ती मे महाराज प्रसेनजित् के कोषाध्यक्ष मृगार के पुत्र पुण्यवर्धन की स्त्री का नाम विशाखा था। वह अगराज के कोषाध्यक्ष धनजय की पुत्री थी। विशाखा ने श्रावस्ती मे भगवान् बुद्धदेव के लिये एक आराम बनवा दिया था जिसका नाम पूर्वाराम था। वह भगवान् बुद्धदेव पर बडी श्रद्धा और भक्ति रखती थी और सदा अनेक भिक्षुओ और भिक्षुनियो की अन्न वस्त्र से पूजा किया करती थी। भगवान् बुद्धदेव जब श्रावस्ती मे रहते थे, तब कभी जेतवन विहार में और कभी पूर्वाराम मे रहा करते थे।



(३५) अजातशत्रु

महात्मा बुद्धदेव जब राजगृह से अपना बीसवाँ चातुर्मास्य कर के श्रावस्ती चले आए, तब से महाराज बिंबसार को उनका पुत्र अजातशत्रु देवदत्त के उकसाने से अधिक सताने लगा। उसने महाराज के समय के सब नौकरो को महाराज से पृथक् कर दिया और अंतिम अवस्था मे अपने पिता महाराज बिंबसार को पकड़कर कारागृह में डाल दिया। इस कारागृह में अजातशत्रु ने महाराज बिंबसार को अनेक प्रकार की यातनाएँ दीं और बूढ़े महाराज बिंबसार ने बड़ी धीरता से सब प्रकार के कष्ट सहकर कारागार में ही अपने प्राण त्याग दिए।

कहते हैं कि जिस दिन महाराज बिंबसार ने प्राण-त्याग किया, उसी दिन अजातशत्रु की राजमहिषी को दो पुत्र एक साथ ही उत्पन्न हुए। इधर कारागार से नियुक्त पुरुष महाराज बिंबसार की मृत्यु का समाचार लेकर पहुँचे, उधर राजमहल से निवेदक राजकुमारो के जन्म का समाचार लेकर आया। ऐसी अवस्था में लोगों ने पहले पुत्रों के जन्म का समाचार देना उचित समझकर युवराज को पुत्र-जन्म का समाचार सुनाया। पुत्र-जन्म के आनद से युवराज विह्वल हो गया और मन्त्रियो से कहने लगा कि मेरे जन्म के समय मेरे पिता को भी ऐसा ही आह्लाद हुआ होगा। वह महाराज को कारागार से मुक्त करने की आज्ञा देना ही चाहता था कि कारागार के प्रधान का पत्र जिसमें उसने महाराज की मृत्यु की सूचना

दी थी, राजकुमार के हाथ मे दिया गया। उसे पढते ही अजातशत्रु पितृशोक से व्याकुल होकर रोने लगा और सारा आनन्द भूल गया। उस समय उसने अपने किए पर बडा पश्चात्ताप किया और वह दौडा हुआ श्मशान पर गया। अपने पिता के शव का दाह उसने अपने हाथो किया। उस समय से अजातशत्रु को सारे ससार का सुख, राज्य और ऐश्वर्य फीका मालूम पड़ने लगा। भगवान् बुद्धदेव अपना सत्ताइसवॉ चातुर्मास्य समाप्त कर श्रावस्ती से भ्रमण करते हुए इसी बीच राजगृह मे गए। देवदत्त जब कई बार महात्मा बुद्धदेव के प्राण लेने के प्रयत्न में कृतकार्य्य न हुआ तो उसकी चिंता बढती गई और उसे राजयक्ष्मा रोग हो गया। उसकी यह दशा देख अजातशत्रु को और भी भय हुआ। राजकार्य्य मे उसका चित्त नहीं लगता था। निदान मत्रिगण जीवक से परामर्श कर अजातशत्रु को भगवान् बुद्धदेव के पास ले गए। वहाँ भगवान् बुद्धदेव अपने शिष्यो को उपदेश कर रह थे। अजातशत्रु भगवान् बुद्धदेव के पास गया और वहॉ वह उनके उपदेशो को कई दिन तक निरतर श्रवण करता रहा जिसका फल यह हुआ कि उसकी आत्मा को शाति प्राप्त हुई और उसने बौद्ध-धर्म स्वीकार किया।

देवदत्त ने जब यह देखा कि अजातशत्रु महात्मा बुद्धदेव का भक्त हो गया, तब उसे और भी अधिक चिंता हुई और वह दिनों दिन क्षीण होने लगा। उसने कई बार चाहा कि भगवान् बुद्धदेव से क्षमा प्रार्थना करे, पर भगवान् बुद्धदेव उसके मिलने से सदा किनारा करते रहे।

महात्मा बुद्धदेव राजगृह से चलकर कपिलवस्तु होते हुए श्रावस्ती गए और वहाँ जेतवन विहार मे ठहरे। इसी बीच में देवदत्त की बीमारी ने भीषण रूप धारण किया। वह अपने जीवन से निराश हो गया। सारे जीवन के दुष्कर्म और कपट तापसता उसकी आँखो के सामने फिरने लगी। अत को वह निराश होकर कोकाली आदि अपने चारो शिष्यो को लेकर पालकी पर चढ महात्मा बुद्धदेव से क्षमा-प्रार्थना करने के लिये श्रावस्ती को रवाना हुआ। कई दिन चलकर वह श्रावस्ती में पहुँचा और जेतवन विहार के उत्तर फाटक पर एक तालाब के किनारे उतरा। वहाँ उसने स्नान करना चाहा और यह निश्चय किया कि स्नान कर के महात्मा बुद्धदेव के आगे जाकर क्षमा माँगे। लोगों ने उसे आते देख बडा कोलाहल मचाया और भगवान् बुद्धदेव को उसके आगमन की सूचना दी। बुद्धदेव ने लोगों को व्याकुल देखकर कहा—"तुम लोग घबराओ मत, देवदत्त यहाँ नहीं आ सकता।" कहते हैं कि देवदत्त स्नान करने के लिये ज्यों ही तालाब में घुसा, चाहे दुर्बलता के कारण हो वा तालाब में दलदल रही हो, वह उसी तालाब मे फँसकर रह गया और उसके प्राण वहीं निकल गए।

इसके अनतर भगवान् बुद्धदेव अपना अट्ठाइसवाँ चातुर्मास्य श्रावस्ती में कर के राजगृह को रवाना हुए। वे पहले कपिलवस्तु के न्यग्रोधाराम में पहुँचे। सुप्रबुद्ध जो भगवान् बुद्धदेव का श्वसुर और देवदत्त का पिता था, अपने पुत्र देवदत्त के मरने का समाचार सुनकर मन ही मन जल रहा था। वह उनको गाली देता हुआ उनके

मार्ग में एक वृक्ष के नीचे यह संकल्प कर के बैठा कि उनको रास्ते में रोककर उनसे तकरार करे। भगवान् बुद्धदेव थोडी देर में न्यग्रोधाराम से चलकर उसी मार्ग से अपने संघ समेत निकलनेवाले थे। लोगों ने उनसे कहा कि सुप्रबुद्ध मार्ग में आपका मार्ग रोकने के लिये बैठा है। भगवान् बुद्धदेव ने उनकी बात सुनकर कहा—"सुप्रबुद्ध हमारा मार्ग नहीं रोक सकेगा।" और हुआ भी ऐसा ही। महात्मा बुद्धदेव के आने के पहले सुप्रबुद्ध के प्राण उसी पेड के नीचे निकल चुके थे।

इस प्रकार भगवान् बुद्धदेव कपिलवस्तु से होकर कुशीनार होते हुए राजगृह चले गए। वहाँ थोडे दिन रहकर देशाटन करते हुए वर्षा के आगमन के पहले ही वे श्रावस्ती लौट आए।

इस प्रकार भगवान् बुद्धदेव पचीस वर्ष तक अपना चातुर्मास्य श्रावस्ती मे करते रहे। वर्षा ऋतु का अंत हो जाने पर वे अपने संघ समेत देशाटन का निकला करते थे और कौशल, मगध, कौशांबी, कुरु आदि देशो में उपदेश के लिये चले जाया करते थे। उनके लगातार चालीस पैंतालीस वर्षों के उपदेश का यह परिणाम हुआ था कि मल्ल, लिच्छिवो, शाक्य आदि सभी राजवंश उनके अनुयायी हो गए थे। उत्तरी भारत मे कोई ऐसा गाँव वा नगर न था जहाँ उनके नए धर्म के दस पाँच अनुयायी न थे। इसके अतिरिक्त भगवान् बुद्धदेव और उनके संघ के लोगों के पवित्र जीवन, सच्चे त्याग और शील-संतोष का सर्वसाधारण पर इतना प्रभाव पड़ा था कि जो लोग बौद्ध नहीं थे, वे भी श्रमणों का आदर और मान करते

थे। महात्मा बुद्धदेव अपने जीवन में शांति का उपदेश करते रहे। बुढापे के कारण जब उनकी इंद्रियाँ शिथिल हो गई, तब वे विशेष काल तक देशाटन के लिये नही निकल सकत थे, पर फिर भी साल मे एक बार वे अवश्य देशाटन के लिये निकला करते थे।

(३६) महापरिनिर्वाण

ये तरंति अएणव सेतु कत्वा न विसज्जपल्ललानि।
कुल्ल हि जनो पवधति तिएणा मेधाविनो जनाति ॥

महात्मा बुद्धदेव अपना पैंतालीसवाँ चातुर्मास्य श्रावस्ती में व्यतीत कर वहाँ से राजगृह को चले। मार्ग मे कपिलवस्तु के खँडहर को जिसे प्रसेनजित् के पुत्र विरूढक ने कपिलवस्तु को ध्वस कर के अवशिष्ट छोड दिया था, देखते हुए मल्ल आदि के राज्यो से होकर वे राजगृह पहुँचे। राजगृह मे वे गृध्रकूट पर्वत पर ठहरे। उस समय मगधाधिप महाराज अजातशत्रु वृजि जाति पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहे थे। मत्रि-परिषद् को महाराज अजातशत्रु ने इस काम के लिये आहूत किया और उन लोगो के सामने अपना वह विचार उपस्थित किया। मत्रियों मे इस विषय पर वाद विवाद हुआ और उनमे से बहुतेरों की यह सम्मति हुई कि इस विषय में महात्मा बुद्धदेव की भी सम्मति, जो उस समय दैवयोग से गृध्रकूट पर विराजमान थे, ली जाय। सर्वसम्मति के अनुसार परिषद् ने यह निश्चय किया कि परिषद् की ओर से महात्मा बुद्धदेव की सम्मति लेने के लिये वर्षकार उनके पास भेजा जाय।

वर्षकार महाराज अजातशत्रु की ओर से महात्मा बुद्धदेव की सेवा मे उपस्थित हुआ और एकात में जब महात्मा बुद्ध के पास आनंद के अतिरिक्त और कोई न रह गया, तब उसने उनसे सानुनय निवेदन किया—"महाराज! अजातशत्रु ने हाथ जोड़कर आप से

इस विषय पर सम्मति माँगी है, कि मैं यदि महा समृद्धिशाली वृजि जाति पर आक्रमण करूँ तो उनका ध्वस कर सकूँगा वा नहीं ?" महात्मा बुद्धदेव ने वर्षकार की बात सुनकर थोडी देर विचार कर उससे कहा—"हे ब्राह्मण ! जब तक वृजि जाति मे ऐक्य है, वा जब तक वे मिलकर काम करते रहेंगे, वा जब तक वे लोग सदाचार और सत्प्रथा का पालन करते रहेंगे, जब तक उनमे वृद्ध जनो का सम्मान रहेगा, वा जब तक उनमे कुल-स्त्री और कुमारियों का आदर और सम्मान रहेगा, वा जब तक वे लोग चैत्यों की वदना और पूजा करते रहेगे, वा जब तक वे अर्हत् पूज्य पुरुषों की रक्षा और पालन करते रहेंगे, तब तक वृजि जाति के अध पतन की सभावना नहीं है। उसकी क्रमश वृद्धि होती जायगी।" भगवान् बुद्धदेव का उत्तर सुन वर्षकार ने कहा—"भगवन् ! जब इन सातो धर्मों मे से एक का भी पालन करने से वृजि जाति का ध्वस नही हो सकता और जब उनमें ये सब हैं, तब उनके अभ्युदय और सौभाग्य-वृद्धि मे आश्चर्य्य ही क्या है। हे गौतम ! वृजि जाति मे परस्पर भेद कराना अत्यत कठिन है। अवश्य अजातशत्रु का उनके ध्वस के लिये तैयारी करना व्यर्थ है।" यह कहकर भगवान् बुद्धदेव की आज्ञा ले वर्षकार गृध्रकूट से राजगृह चला गया।

उसके दो ही चार दिन बाद बुद्धदेव ने आनद को आज्ञा दी कि भिक्षुसघ को उपस्थान-शाला मे आह्वान करो। आनद ने उनकी आज्ञा पाकर भिक्षुसघ को उपस्थान-शाला मे आमन्त्रित किया। सघ के सब लोगो के आ जाने पर भगवान् बुद्धदेव ने उनसे

कहा—"भिक्षुगण ! तुम्हे सात अपरिहातव्य धर्मो का उपदेश करता हूँ, सुनो—

जब तक तुम लोग (१) कर्म (२) भस्म (३) निद्रा और (४) आमोद मे रत न होगे, (५) तुम्हारी पापेच्छा प्रबल न होगी, (६) तुम पापी मित्रो का सग न करोगे और (७) निर्वाण के लिये प्रयत्नशील रहोगे तब तक तुम्हारा अध पतन न होगा।

हे भिक्षुगण ! दूसरे सात अपरिहेय धर्म सुनो—जब तक तुम (१) श्रद्धावान् (२) वीर्य्यवान (३) हीमान् (४) विनयी (५) शास्त्रज्ञ (६) वीर्य्यशाली और (७) स्मृति तथा प्रज्ञावान् रहोगे तब तक तुम्हारा क्षय नही होगा।

इन के सात अपरिहातव्य धर्म ये हैं—जब तक तुम लोग स्मृति, पुण्य, वीर्य्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि और उपेक्षा नामक सात ज्ञानागो की भावना करते रहोगे, तब तक तुम्हारा अध पतन न होगा।

इसके अतिरिक्त अन्य सात अपरिहातव्य धर्म सुनो। जब तक तुम लोग अनित्य, अनात्मा, अशुभ, आदीनव, प्रहाण, विराग और निरोध नामक सात प्रकार की सज्ञाओ की भावना करते रहोगे तब तक तुम लोगो का पतन कभी न होगा।

हे भिक्षुगण ! यह षड्विधि अपरिहातव्य धर्म है, सुनो-"जब तक तुम लोग ब्रह्मचारियो से कायिक, वाचिक और मानसिक मैत्री रखोगे और भिक्षा का उनके साथ सम विभाग करके भोजन

करोगे तथा सदाचार की रक्षा और सद्धर्म पर दृष्टि रखोगे तब तक तुम लोगो का क्षय नही होगा ।"

इस प्रकार उपस्थान-शाला मे भिक्षु-सघ को उपदेश कर भगवान् बुद्धदेव आनद को साथ लेकर राजगृह से अबलस्थिका नामक स्थान मे गए और वहाँ उन्होने अनेक भिक्षुओं को बुलाकर उन्हे शील, समाधि, प्रज्ञा आदि का उपदेश किया। वहाँ कुछ दिन रहकर वे नालद गए । नालद पहुँच कर वे प्रवरिकाम्र वन मे ठहरे। वहाँ सारिपुत्र को जब उनके आने का समाचार मिला तब वह भगवान् बुद्धदेव के पास आया और अभिवादन करके बोला—"भगवन् ! मेरी यह धारणा है कि आपके समान भूतकाल मे आज तक कोई श्रमण वा ब्राह्मण इस ससार मे उत्पन्न नही हुआ है, भविष्यत् मे भी आपके सदृश किसी के होने की आशा नही है ।" बुद्धदेव ने कहा—"सारिपुत्र ! यह तुम्हारी अत्युक्ति है । तुम्हे मालूम नहीं है कि भूत काल के ज्ञानी लोग कैसे शील-सपन्न, धर्म-परायण और प्रज्ञावान् थे और न तुम्हें यही मालूम है कि भविष्य मे कैसे कैसे ज्ञानी उत्पन्न होंगे। तुम यह भी नही जानते कि मै कहाँ तक शीलसपन्न, धर्म-परायण और प्रज्ञावान् हूँ ।" सारिपुत्र भगवान् की यह नम्रता देखकर विस्मित हो गया। सारिपुत्र ने कहा—"भगवन् ! ज्ञानियों ने यह उपदेश किया है कि जिज्ञासु को पहले काम, हिंसा, आलस्य, विचिकित्सा और मोह को जो पच-विध प्रतिबधक कहलाते है, दूर करना चाहिए । फिर क्रोध, उपनाह, म्रक्ष, प्रदाश, ईर्ष्या मात्सर्य्य, शाठ्य, माया, मद, विहिंसा, अह्री, अनपात्रपा, स्त्यान

उद्धत्य, अश्रद्धा, कौसीद्य, प्रमाद, मुपितस्मृता, विक्षेप, असप्रजन्य, कौकृत्य, मिद्ध, वितर्क और विचार नामक चतुर्विंशतिधा उपक्लेशो का शमन करना उचित है। चित्त के शुद्ध होने पर उन्हें चतुर्विध स्मृत्युपस्थान की भावना करके उनमें उसे सुप्रतिष्ठित होना चाहिए। वे चतुर्विध स्मृत्युपस्थान ये हैं—(१) शरीर अपवित्र है, (२) वेदनाएँ दु खमयी हैं, (३) चित्त चचल है और (४) ससार के सब पदार्थ अलीक वा क्षणिक है। इसके अनतर उसे सप्तविध सबोध्यग की भावना करनी चाहिए जिनके नाम स्मृति, पुण्य, वीर्य्य, प्रीति, प्रसिद्धि, समाधि और उपेक्षा है। इस प्रकार निरतर भावना करने से सबोधि और परम ज्ञान की प्राप्ति होती है। प्राचीन काल के ज्ञानियो ने इसी प्रणाली से सबोधि प्राप्त की है और भविष्यत् मे भी वे इसी प्रणाली से सम्बुद्ध होंगे। भगवान् ने भी इसी मार्ग का अवलबन करके सबोधि ज्ञान प्राप्त किया है।"

वहाँ से भगवान् बुद्धदेव पाटलिपुत्र गए। उस समय उस बडे नगर का वहाँ नाम निशान तक नहीं था, किंतु वहाँ एक छोटा गाँव था जिसे पाटलिग्राम कहते थे। इसी के पास उस समय राजगृह के महाराज अजातशत्रु के दो मत्री सुनिध और वर्षकार एक विकट दुर्ग बनवा रहे थे। भगवान् बुद्धदेव पाटलिग्राम के एक बाग में ठहरे। वहाँ उनके उपासकगण जो उस गाँव मे रहते थे, भगवान् के पास उनकी परिचर्य्या के लिये आए और उन्होने उनकी अनेक प्रकार के भक्ष्य और भोज्य से पूजा की। भगवान् बुद्धदेव ने अवसथ्यागारमें बैठ कर उन लोगों को संबोधन करके कहा—"दु शील और

सुशील पाँच प्रकार की क्षति और लाभ प्राप्त करते हैं। दुःशील पुरुष जीवित अवस्था मे घोर दरिद्रता को प्राप्त होता है, उसकी चारो ओर बदनामी होती है, मनुष्यो के समाज मे वह सदा डरता हुआ जाता है, मरने के समय भी उसके चित्त की उद्विग्नता दूर नहीं होती और अंत को शरीर त्याग कर वह नरक मे पड़ता है। सुशील पुरुष की दशा इसके विपरीत है। वह जीवित अवस्था मे महासुख भोगता है, उसका सुयश चारो ओर फैल जाता है, वह मनुष्य समाज मे प्रसन्न चित्त से जाता है, मरते समय उसके चित्त में किसी प्रकार की उद्विग्नता नहीं रहती और शरीर त्याग कर वह स्वर्ग लोक को प्राप्त होता है।"

यहाँ से वे सुनिधि और वर्षकार के स्थान पर, जहाँ वे ठहर कर दुर्ग बनवा रहे थे, गए। वहाँ भगवान् बुद्धदेव कई दिन उन दोनों राजमंत्रियो के यहाँ रहे। वहाँ भगवान् बुद्धदेव ने कहा—"यह पाटलिग्राम, पाटलिपुत्र कहलावेगा। इस की समृद्धि, सभ्यता और वाणिज्य बढ़ेगा और यह नगर सब से श्रेष्ठ नगर होगा, पर अंत को अग्नि, जल और गृह-विच्छेद से इस नगर का नाश होगा।"

वहाँ से भगवान् बुद्धदेव ने आनंद के साथ गंगा नदी को पार किया और वे कोटिग्राम गए। वहाँ उन्होने भिक्षुओ को चारों आर्य्य सत्यो की शिक्षा दी और कहा कि जब तक मनुष्य इनके तत्व को नहीं समझता, तब तक वह जन्म-मरण के भय से नहीं बच सकता, और इनके सम्यक् ज्ञान से ही भवतृष्णा की निवृत्ति और पुनर्जन्म का उच्छेद हो जाता है।

वहाँ थोडे दिनों तक रहकर बुद्धदेव नादिका गए। वहाँ वे गृजकावसथ नामक विहार मे ठहरे। वहाँ भिक्षुगणो को आमन्त्रित करके उन्होने उन्हे धर्मादर्श सूत्र का उपदेश किया और लोगों को रत्नत्रय अर्थात् बुद्धधर्म और सघ की आस्था को अत करण मे स्थापित करन का उपदेश किया।

नादिका जहाँ वे अपने सघ समेत ठहरे थे, वैशाली नगर के किनारे एक गाँव था। कहते हैं कि उस समय वैशाली मे आम्रपाली नामक एक वेश्या रहती थी। भगवान् बुद्धदेव अपने संघ समेत उसी आम्रपाली के आम्रवन में ठहरे। आम्रपाली को भगवान् के आगमन से इतना हर्ष हुआ कि उसने दूसरे दिन भगवान् की सेवा मे उपस्थित होकर भगवान् को ससघ दूसरे दिन अपने यहाँ भिक्षा करने के लिये निमन्त्रण दिया। भगवान् बुद्धदेव ने आम्रपाली का सच्चा भाव और उसकी श्रद्धा देख उसका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। जब इस निमंत्रणस्वीकृति की चर्चा वैशाली के लिच्छिवी राजवश को पहुँची तो वे लोग भगवान् बुद्धदेव के पास पहुँचे और उन्होंने उन्हें अपने यहाँ भिक्षा करने के लिये निमत्रण दिया। पर भगवान् बुद्धदेव ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि मैंने कल के लिये आम्रपाली का निमत्रण स्वीकार कर लिया है, अत कल आप लोगों की भिक्षा ग्रहण नही कर सकता। महात्मा बुद्धदेव की ये बाते सुनकर वहाँ के लिच्छिवी लोग अपने मन में बहुत दुखी हुए और महात्मा बुद्धदेव का आम्रपाली के यहाँ निमत्रण स्वीकार करना उनको भला न लगा। पर उन्हें इसका ज्ञान नहीं था कि विद्वान्

महात्मा लोग किसी का तिरस्कार नहीं करते वे उनके सच्चे भाव को देखते हैं और उनका उद्देश पतितों का उद्धार और लोगों का आचरण सुधारना होता है। वे अपने आचरणों को दूसरो के पथ-दर्शन के लिये छोड जाते हैं। दूसरे दिन भगवान् बुद्धदेव अपने सघ समेत आम्रपाली के घर गए। आम्रपाली ने भगवान् को सघ समेत बडे आदर से भोजन कराया और श्रद्धा से उनके उपदेश सुने। जब भगवान् उसके यहाँ से चलने लगे, तब आम्रपाली ने हाँथ जोडकर उनसे प्रार्थना की—" भगवन ! मेरी इच्छा है कि मैं अपने उस आम्रवन को जिसमे भगवान् अपने सघ समेत ठहरे हैं, सघ को दान करूँ।" उसका यह श्रद्धा और भक्तिपूर्ण वाक्य सुन भगवान् उसका दान स्वीकार कर अपने सघ समेत आम्रवन में आए।

नादिका में आम्रपाली के आम्रवन मे कुछ दिनों रहकर भगवान् बुद्धदेव बिल्व ग्राम गए। वर्षा ऋतु आ गई थी। भगवान् बुद्धदेव ने उसी गाँव में अपना अतिम चातुर्मास्य व्यतीत किया। वहीं उनको अपने प्रिय शिष्य सारिपुत्र और मौद्गलायन के परलोक प्राप्त होने का समाचार मिला। उस समय बुद्धदेव की अवस्था अस्सी वर्ष की हो चुकी थी। उनका शरीर भी कृष और जरा-ग्रस्त हो चुका था। वहाँ वर्षा ऋतु में उनके शरीर मे कठिन पीडा हुई जिससे समस्त भिक्षुगणों में घबराहट छा गई। उस समय भगवान् बुद्धदेव ने आनद को सबोधन कर के कहा—"आनद ! भिक्षुसघ मुझसे क्या आशा रखता है ? मैंने तुम लोगों को स्पष्ट शब्दों में

धर्म समझा दिया है। मैंने तुम लोगों से कोई विषय गुप्त नही रखा है। तुम लोग धर्म ही का आश्रय ग्रहण करना। धर्म का प्रदीप प्रज्वलित करना। किसी दूसरे का भरोसा मत करना। अपना अपना भरोसा रखना। हे आनद ! मेरे परिनिर्वाण के बाद जो लोग धर्म का आश्रय लेंगे, धर्म का प्रदीप प्रज्वलित करेंगे, मुक्ति की प्राप्ति के लिये अपने ऊपर भरोसा रखेंगे और दूसरे का अवलब न ढूँढ़ेंगे, वे ही भिक्षुगणों मे अग्रगण्य होंगे।"

चातुर्मास्य की समाप्ति पर महात्मा बुद्धदेव वैशाली गए और चापाल चैत्य मे ठहरे। वहाँ भगवान् बुद्धदेव ने आनद से अष्टविमोक्षसोपाण का उपदेश किया। भगवान् ने कहा-"हे आनद ! (१) मन में रूप * भावना विद्यमान होने से बाह्य जगत् मे रूप दिखाई पडना विमोक्ष का प्रथम सोपान है, (२) मन मे रूप भावना विद्यमान न रहने पर भी बाह्य जगत् में रूप दिखाई पडना द्वितीय सोपान है, (३) मन मे रूप भावना विद्यमान न होना और बाह्य जगत् मे भी रूप दिखाई न पडना तृतीत सोपान है, (४) रूपलोक को अतिक्रमण कर के 'अनत आकाश' की भावना करते हुए 'आकाशानत्यायतन' मे विहार करना चतुर्थ सोपान है, (५) आकाशानत्यायतन का अतिक्रमण करके 'अनत विज्ञान' की भावना करते करते 'विज्ञानानत्यायतन' में विहार करना पचम सोपान है, (६) विज्ञानानत्यायतन का अतिक्रमण करके 'अ

* यहाँ रूप शब्द उपलक्षणार्थ है। रूप से यहा रूप, शब्द, गध, रस, स्पर्श और धर्म नामक छओं इन्द्रियों के विषय का ग्रहण अभिमेत है।

किंचन' अर्थात् 'कुछ नहीं' की भावना करते हुए 'अकिंचनायतन' में विहार करना षष्ठ सोपान है, (७) 'आकिंचनायतन' को अतिक्रमण करके 'नैव सज्ञा नैवासज्ञायतन' 'ज्ञान और अज्ञान दोनो नही' की भावना करते हुए 'नैव सज्ञानैवाज्ञ सज्ञायतन' मे विहार करना वा निमग्न होना सप्तम सोपान है, (८) अन्त को 'नव-सज्ञा नैवासज्ञायतन' को अतिक्रमण कर ज्ञान और ज्ञाता दोनों का निरोध करके 'सज्ञावेदयितृ' उपलब्धि करना विमोक्ष का अठवॉ और अतिम सोपान है ।"

चापाल चैत्य से बुद्धदेव वैशाली के महावन-कूटागार-शाला मे गए और वहॉ उन्होंने आनद को भिक्षुसघ को आमत्रित करने की आज्ञा दी। भिक्षुसघ के एकत्र हो जाने पर भगवान् बुद्धदेव ने उन्हें उपदेश देना प्रारभ किया। बुद्धदेव ने कहा—"हे भिक्षुगण! मैंने तुम्हे जिस धर्म का उपदेश किया, तुम्हे उचित है कि तुम उसे अच्छी तरह से समझो और उस पर विचार करो। उसका चारो ओर प्रचार करो। तुम्हारा कर्तव्य है कि लोक के हित और सुख के लिये ससार में ब्रह्मचर्य्य स्थापन करो। मै आज तुमको उसी धर्म के सात रत्नो का उपदेश करता हूँ। इन्हें "सप्तत्रिशच्छिक्षमाण धर्म" भी कहते है। तुम लोग इन्हें धारण करो। वे सातों रत्न ये है-(१) स्मृत्युपस्थान, (२) सम्यक्प्रहाण, (३) ऋद्धिपाद, (४) इन्द्रिय, (५) बल, (६) बोध्यग और (७) मार्ग।

(१) स्मृत्युपस्थान चार प्रकार का है—(१) शरीर अपवित्र है, (२) ससार की सब वेदनाएँ दु खमयी हैं, (३) चित्त चचल

(अनित्य) है और (४) ससार के सब पदार्थ (रूप, वेदना, विज्ञान, सज्ञा और सस्कार) अलीक अर्थात् क्षणिक हैं। इन चारों का स्मरण और भावना करना चतुर्विध स्मृत्युस्थान है।

(२) सम्यक् प्रहाण चार प्रकार है–(१) अर्जित पुण्य का सरक्षण, (२) अलब्ध पुण्य का उपार्जन, (३) पूर्व-सचित पाप का परित्याग और (४) नूतन पापों की अनुत्पत्ति की चेष्टा करना।

(३) ऋद्धिपाद अर्थात असामान्य क्षमता की प्राप्ति के लिये (१) दृढ़सकल्प, (२) चिंता वा उद्योग, (३) उत्साह और (४) आत्मसयम करना।

(४) इद्रियाँ, यह पाँच प्रकार की है—(१) श्रद्धा, (२) समाधि, (३) वीर्य, (४) स्मृति और (५) प्रज्ञा।

(५) बल भी पाँच ही प्रकार के हैं–(१) श्रद्धाबल, (२) समाधि-बल, (३) वीर्यबल, (४) स्मृतिबल और (५) प्रज्ञाबल।

(६) बोध्यग, यह सात प्रकार का है—(१) स्मृति, (२) धर्म-परिचय वा पुण्य, (३) वीर्य, (४) प्रीति, (५) प्रश्रब्धि, (६) समाधि और (७) उपेक्षा।

(७) आर्य मार्ग—यह आठ प्रकार का है—(१) सम्यक् दृष्टि, (२) सम्यक्सकल्प, (३) सम्यग्वाचा, (४) सम्यक्कमात (५) सम्यगाजीव, (६) सम्यग्व्यायाम, (७) सम्यक्स्मृति और (८) सम्यक् समाधि।

इन्हीं सैंतीस पदार्थों को लेकर मैंने धर्म की व्यवस्था की है। तुम्हें उचित है कि तुम इनका श्रवण, मनन और निदिध्यास पूर्वक

सब लोगो में प्रचार करो। हे भिक्षुकगण! अब मेरा समय आ गया है। अब तीन महीने बाद मैं निर्वाण को प्राप्त हूँगा। तुम सावधान होकर काम करना। मेरा जीवन पूरा हो गया, अब मेरे जीवन के थोडे ही दिन शेष रह गए हैं। अब मै ससार त्याग कर जाऊँगा। मैने अपने आपको अपना शरण बनाया है अर्थात मैं अपनी आत्मा के वास्तविक रूप मे स्थिर हो गया हूँ। हे भिक्षुकगण, अब तुमको अप्रमत्त, समाहित और सुशील होना चाहिए और सुसमाहित सकल्प होकर अपने चित्त का पर्य्यवेक्षण वा अनुरक्षण करना चाहिए। जो भिक्षुक अप्रमत्त होकर इस धर्मविनय में प्रवृत्त होगा, वह जाति और ससार को त्याग कर दु ख का नाश करेगा। *"

वैशाली में इस प्रकार भिक्षुसघ को उपदेश कर बुद्धदेव वहाँ से भंडग्राम को गए। वहाँ भिक्षुओं के सघ को एकत्र करके उन्होंने कहा—"हे भिक्षुओ! अब तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम शील, समाधि-प्रज्ञा और विमुक्ति का अनुशीलन करते हुए ससार मे विचरो।"

मडग्राम से बुद्धदेव हस्तिग्राम, आम्रग्राम और जबूग्राम में ठह-

---

* परिपक्को वयो मह्यं परित्तं मम जीवितं।
पहाय वो गमिस्सामि कतं मे सरणमत्तनो॥
अप्पमत्ता सतिमन्तो सुसीला होथ भिक्खवो।
सुसमाहितसंकप्पो सचित्त अनुरक्खथ॥
यो इमस्मिं धम्मविनये अप्पमत्तो विहेस्सति।
पहाय जाति संसारं दुक्खस्सन्तं करिस्सति॥

हते और वहाँ के भिक्षुओं को धर्मोपदेश करते हुए भोगनगर मे गए और वहाँ के आनन्दचैत्य नामक विहार मे ठहरे। वहाँ बुद्धदेव ने भिक्षुओं को एकत्र करके उनसे कहा—"मेरे बाद यदि कोई विद्वान् भिक्षु वा स्थविर तुमको किसी बात का उपदेश करे तो तुम उसे सहसा मानने के लिये उद्यत न हो जाना। तुम उसे मेरे उपदेशो से मिलाना और विचार करना। अनुकूल होने पर उसे ग्रहण करना और प्रतिकूल होने पर उसका तिरस्कार करना।"

भोगनगर से भगवान् बुद्धदेव पावा गए। वहाँ उनके आगमन का समाचार सुन चुन्द नामक कर्म्मकार (कमकर) जो पावा का प्रधान था, उनके पास आया और उसने विनीत भाव से दूसरे दिन अपने घर भोजन करने के लिये उन्हे संघ सहित निमंत्रण दिया। भगवान् बुद्ध ने तूष्णी भाव धारण कर चुन्द का निमंत्रण स्वीकार किया। दूसरे दिन भगवान् बुद्धदेव ससंघ चुन्द के यहाँ भोजन के लिये गए। चुन्द ने अनेक प्रकार के भक्ष्य भोज्य पदार्थ तय्यार किए और जब वह परोसने लगा तब बुद्धदेव ने चुन्द से कहा—"चुन्द, तुम सूअर† का मांस मुझ को ही देना, दूसरे को मत देना।

† महापरिनिर्वाण सुत्त में 'सूकर मद्दवं' पद कई स्थलों में आया है, जैसे "अथखो चुंदो कम्मार पुत्तो तस्सा रत्तिया अच्चयेन सके निवसने पणीतं खादनीय भोजनीय पटियादयित्वा बहुतञ्च सूकरमद्दवं" इत्यादि। बौद्ध भिक्षुगण का कथन है कि 'सूकरमद्दव' एक कंद का नाम है। पर बुद्धघोष ने अर्थकथा में 'सूकर मद्दवन्ति नातितरुणस्स नातिजिण्णस्स एकजेट्ठक सूकरस्स पवत्त मंसं। त किरमुदु चेव सिनिद्धं च होती' लिखा है जिससे निश्चय होता

मनुष्य-लोक, देवलोक और ब्रह्मलोक मे बुद्ध को छोड दूसरा कोई ऐसा पुरुष नहीं है जो उसे पचा सकता हो। मुझे परोसने पर मेरे खाने से जो मास बच रहे, उसे तुम गड्ढा खोदकर गाड देना।" चुंद ने भगवान् बुद्धदेव की बात सुन सूअर का मास केवल उन्ही को दिया और सघ के खा चुकने पर अवशिष्ट मांस आँगन मे गड्ढा खोदकर गाड दिया।

भगवान् बुद्धदेव का शरीर पहले से अस्वस्थ था, सूकरमांस खाने से उन्हे रक्तामाशय अर्थात् आँव और लहू के दस्त का रोग हो गया। उनके पेट मे मरोड होने लगे और आँवलहू पडने लगा। इसी अवस्था मे बुद्धदेव पावा से कुशीनार चले गए। मार्ग में उनका शरीर शिथिल हो गया। महात्मा बुद्धदेव ने आनद से कहा—"आनंद! तुम यहाँ कोई कपडा बिछा दो, मैं लेटूँगा। मुझे प्यास लग रही है, तुम दौडकर पानी लाओ।" आनद ने उनकी बात सुनकर वहाँ वस्त्र बिछा दिया और वह दौडा हुआ पानी के लिये गया और पानी ला कर उसने उन्हें पिलाया। इसी बीच मे आराड-कालाम का एक शिष्य जिसका नाम पुक्कुस था, वहाँ आया और उसने भगवान् को एक सुनहला वस्त्र अर्पण किया। आनद ने वह वस्त्र भगवान् बुद्ध को ओढा दिया। वहाँ भगवान् बुद्धदेव ने थोडे काल तक विश्राम किया और जागने पर कुशीनार चले। वहाँ से

है कि सूकरमद्दव एक वर्ष के सूकर के पवित्र मास को कहते हैं। इससे अनुमान होता है कि दक्षिणापथ के द्विजों में बुद्धदेव के पूर्व से सूकर मास खाने की परिपाटी थी जो उनके पीछे विलुप्त हो गई।

चलकर वे भिक्षु सघ के साथ कक्कुत्था नदी के किनारे पहुँच। वहाँ पर भगवान् बुद्धदेव ने कक्कुत्था नदी के शीतल जल में स्नान किया और थोडा सा पानी पिया और उस नदी के किनारे एक आम के बाग मे जो चुद का था, वे ठहरे। चुद ने, जो उनके साथ साथ पावा से उन्हें पहुँचाने आया था, वहाँ पर एक कपडा बिछा दिया। उसी कपडे पर लेटकर भगवान् बुद्धदेव ने थोडी देर तक विश्राम किया और फिर वहाँ से वे सघ समेत कुशीनगर को चल पडे।

मल्लो की राजधानी कुशीनगर हिरण्यवती नदी के किनारे थी। भगवान् बुद्धदेव हिरण्यवती पार कर नगर के किनारे शाल के एक वन में ठहरे। वहाँ उनका रोग और भी बढ गया। उनके हाथ पैर ढीले पड गए। सघ के लोग घबरा गए। उसी शाल-बन में द्रोणाचार्य्य के गोत्रज एक ब्राह्मण रहते थे। उन्ही की कुटी के पास लोगों ने एक खाट लाकर साखू के दो पेडो के बीच में बिछा दी। उसी खाट पर भगवान् बुद्धदेव उत्तर की ओर सिर कर के लेट गए। यह तथागत का अतिम लेटना था। उनकी यह अवस्था देखकर आनद ने उनसे पूछा—"भगवन्! अब आपकी अतिम अवस्था है, कृपाकर यह बता दीजिए कि स्त्री-जाति से हम लोग कैसा बर्ताव करें"?

भगवान् बुद्धदेव ने कहा-"अदर्शन अर्थात् उनसे न मिला करना।" आनद ने कहा-"भगवन्! यदि उनका दर्शन हो ही जाय तो क्या करना चाहिए?"। भगवान् बुद्ध ने कहा-"अनालाप"

अर्थात् उनसे सभाषण न करना।" "आनद ने कहा–"भगवन्! यदि आलाप करना ही पडे तो क्या करना उचित है?' तथागत ने कहा–"स्मृत्युपस्थान" अर्थात् अत्यन्त सावधानता स आलाप करना। ऐसा न हो कि उनसे राग हो और तुम्हारे ब्रह्मचर्य्य मे बाधा पडे।"

इस प्रकार वे आनद से बाते कर रहे थे कि सुभद्र नामक परिव्राजक भगवान् बुद्धदेव के पास कुछ प्रश्न करने क लिये पहुँचा। उस समय भगवान् बुद्धदेव अतिम व्यथा से क्लात हो रहे थे। आनद ने सुभद्र को रोका और कहा–"इस ससय भगवान् का चित्त अवस्थ है, तुम उन्हें अधिक कष्ट मत दो।" जब आनद की बात भगवान् बुद्धदेव के कानो में पडी तब उन्होने आँख खोल दी और आनद से कहा—"आनद! सुभद्र को रोको मत, उसे अपना प्रश्न करने दो।" सुभद्र भगवान् बुद्धदेव के पास गया और अभिवादन करके उसने उनसे तीन प्रश्न किए। पहला यह कि–"आकाश में पद अर्थात् रूपादि है वा नही, दूसरे आपके शासन के अतिरिक्त अन्य कोई कल्याण मार्ग है वा नही, तीसरे, सस्सार शाश्वत है वा नहीं?" सुभद्र के प्रश्नो को सुनकर भगवान् बुद्धदेव ने कहा—

आकासे पदे नत्थि ममणो नत्थि बहिरे।
पपञ्चाभिरता पजा किप्पपचा तथागता।
सखारो सस्सतो नत्थि नत्थि बुद्धानभिच्छित।

अर्थात्—ह सुभद्र! आकाश मे पद नहीं है। मेरे शासन से बाह्य कोई शाति वा कल्याण का मार्ग नही है। ससार की सब प्रजा प्रपच में रत है, केवल तथागत पुरुष ही निष्प्रपच है। सब सस्कार

अशाश्वत् नाशमान् है। बुद्ध वा ज्ञानी पुरुषों को किसी बात की इच्छा नही होती।"

इस प्रकार ससार का महान् शिक्षक इक्यासी वर्ष इस ससार मे रहकर अपनी अतिम अवस्था मे ॐ अपने अतिम शिष्य को अपने अतिम दिन क अतिम पहर मे अतिम धर्म का उपदेश करता हुआ अचल समाधि मे जिसमे ज्ञाता और ज्ञेय का भेद नहीं रहता, अपने अचल स्वरूप मे स्थित हुआ। उसका अतिम वाक्य यह था—

"सयोगा विप्रयोगान्त"

"सयोग का वियोग ध्रुव है।" महात्मा बुद्धदेव के परिनिर्वाण प्राप्त करने पर भिक्षु सघ की सम्मति से आनद कुशीनगर मे गया और उसने मल्लराज को भगवान् के परिनिर्वाण का समाचार सुनाया। मल्लराज अन्य मल्लवशी क्षत्रियो समेत बडे समारोह से महात्मा बुद्धदेव के परिनिर्वाण स्थान पर आए और गध आदि से उनके शरीर को अलकृत कर कपडे में लपेटकर तेल की नाव मे उसे रख दिया। चारो ओर भिक्षसघ को महात्मा बुद्धदेव के परिनिर्वाण की सूचना दी गई। सातवें दिन उनकी अत्येष्टि क्रिया के लिये चदन आदि सुगधित काष्ठो की चिता बनाई गई और भगवान् बुद्धदेव का शव नाव से निकालकर सुगंधित द्रव्यो के साथ चिता पर रखा गया। सब लोग उसके चारों ओर विनीत भाव से खडे हुए और चिता मे आग देना ही चाहते थे कि महाकाश्यप पाँच सौ भिक्षुओ को साथ लिए उस स्थान पर पहुँचा। महाकाश्यप ने तीन बार चिता की प्रदक्षिणा की और महात्मा बुद्धदेव की पाद-वदना

करके वह खड़ा हो गया। चिता में आग लगा दी गई और बात की बात में महात्मा बुद्धदेव का शरीर जलकर राख का ढेर हो गया।

दूसरे दिन उनकी अस्थिचयन क्रिया की गई और हड्डियाँ चुन कर एक कुंभ में रखी गईं। मल्लराज ने उनकी चिता के स्थान पर स्तूप बनाने का प्रबंध किया। इसी बीच में मगध के महाराज अजातशत्रु, वैशाली के लिच्छिवी लोगों, कपिलवस्तु के शाक्यों, अल्लकल्प के बूलय लोगों, रामग्राम के कोलियों और पावा के मल्लराज ने महात्मा बुद्धदेव का परिनिर्वाण सुन अपने अपने दूतों को उनकी अस्थि के भाग के लिये कुशीनगर के मल्लराज के पास भेजा और लिखा कि "भगवान् क्षत्रिय थे, हम भी क्षत्रिय हैं। इस नाते उनके शरीर के अंश पर हमारा भी स्वत्व है।" इसी बीच में वेठद्वीप के ब्राह्मणों ने भगवान् बुद्धदेव के शरीरांश के लिये कुशीनगर के महाराज को लिखा। कुशीनगर के मल्लराज ने जब देखा कि सभी लोग भगवान् की अस्थि का अवशिष्ट भाग माँग रहे हैं, तब उन्होंने कहा—"जो कुछ हो, भगवान् बुद्धदेव ने हमारे गाँव की सीमा में परिनिर्वाण प्राप्त किया है। हम उनके शरीर के भस्म का अंश किसी को न देंगे।"

जब महाराज कुशीनगर की यह बात अन्य मागध और वैशाली आदि के राजाओं ने सुनी तब सब लोग अपना अपना भाग लेने के लिये सेना लेकर कुशीनगर पर चढ़ धाए और घोर संग्राम की संभावना संघटित हुई। महात्मा द्रोणाचार्य ने जब देखा कि

बात की बात में घोर जनक्षय हुआ चाहता है, तब वे सब लोगों के बीच मे खड़े होकर उच्च स्वर से सब को सबोधन करके बोले—

सुणतु भोन्तो मम एक वाक्य
अम्हाक बुद्धो अह् खन्तिवादी
नहि सधऽय उतम पुग्गलस्स
सरीरभगे सिया सपहारो।
सब्बेव भोन्तो सहिता समग्गा
सम्मोदमाना करोमट्ठभागे।
वित्थारिका होन्ति दिसासु थूपा
बहुज्जना चक्खुमतो पसन्ना। इति।

क्षत्रिय वर्ग! आप लोग मेरी बात सुनिए। हमारे महात्मा बुद्ध क्षांतिवादी थे। यह उचित नहीं है कि ऐसे महापुरुष की मृत्यु पर आप लोग घोर सग्राम मचावें। आप लोग सावधान हो शाति धारण करें। मैं उनकी अस्थियों के अवशेष के आठ भाग किए देता हूँ। यह अच्छी बात है कि सब दिशाओ मे उनकी धातु पर स्तूप बनवाए जायँ और सब लोग जिन्हें आँख है, उसे देखकर प्रसन्न हों।

द्रोणाचार्य्य की यह बात नकर सब लोग शात हो गए। द्रोण ने भगवान् बुद्धदेव के धातु के आठ भाग करके एक एक भाग कुशीनगर, पावा, वैशाली, कपिलवस्तु, रामग्राम, अल्लकल्प, राजगृह के क्षत्रियों और वेठद्वीप के ब्राह्मणों को दे दिया। इसके बाद पिप्पलीय बन के मोरिय क्षत्रियो का दूत अपने भाग के लिये पहुँचा।

अस्थियो का भाग हो चुका था। निदान द्रोण ने उन्हें भगवान् की चिता का अगारा दे कर बिदा किया। अत को द्रोण ने वह कु भ जिसमे भगवान् बुद्धदेव की अस्थि विभाग के पूर्व रखी थी, सब लोगो से माँग लिया और उस पर स्वय स्तूप बनवाया।

द्रोण के इस प्रकार सब को शात कर देने पर सब भिक्षुओ ने एक स्वर से इस गाथा का गान किया—

देविन्द नागिन्द नरिन्द पूजितो
मनुस्सिन्द सेट्ठहि तथेव पूजितो।
त बन्दथ पञ्जालिका भवित्वा,
बुद्धो ह वे कप्पसतेहि दुल्लभो।

———

(३७) बौद्ध धर्म

महात्मा बुद्धदेव के परिनिर्वाण के बाद ५०० भिक्षु राजगृह का सप्तपर्णी गुहा मे उनके उपदेशों का सग्रह करने के निमित्त एकत्र हुए और उनके उपदेशो को तीन बडे बडे सग्रहों में उन्होने सगृहीत किया। इस सग्रह मे कितने भाग थे और यह कितना बड़ा था, इसका ठीक पता चलना बहुत कठिन है। पर फिर भी यह अनुमान होता है कि यह सग्रह वर्तमान हीनयान और महायान के त्रिपिटक की अपेक्षा अवश्य छोटा रहा होगा। इन दोनो त्रिपिटको में पठित कतिपय गाथाओ के मिलान से यह अनुमान होता है कि वे एक दूसरे को छाया नहीं हैं, किन्तु वे एक तीसरे की छाया हैं जो दोनो से प्राचीनतर थी।

कितने विद्वानो का अनुमान है कि त्रिपिटक में सूत्रपिटक * प्राचीनतम है और उनका ऐसा अनुमान कई कारणों से युक्तियुक्त भी प्रतीत होता है। यदि थोडे काल के लिये हम उनकी यह बात न मानकर यही मानें कि उनके शिष्यों ने सूत्रपिटक के अतिरिक्त अभिधर्म और विनयपिटक का भी संग्रह प्रथम धर्म-संघ में किया, तो भी हमे यह मानना पडेगा कि आदिम त्रिपिटक के जितने अंश सूत्रपिटक में हैं, अभिधर्म और विनय में उतने नही हैं, अथवा वह

* इसमें बुद्धदेव के उपदेशो का घटनासहित वर्णन है।

अभिधर्म * और विनयपिटक † वर्तमान अभिधर्म और विनयपिटक का मूल था जिसकी टोका वा भाष्य रूप यह वर्त्तमान त्रिपिटक है।

उस आदिम त्रिपिटक का कई बार संस्करण हुआ। हीनयान का त्रिपिटक आदि त्रिपिटक का तृतीय संस्करण है। यह संग्रह महाराज अशोक के समय में किया गया था और उसमें भी जातक आदि के अंश अशोक से भी पीछे के बने हुए हैं। महायान का त्रिपिटक चतुर्थ धर्मसंघ का संस्करण है जो महाराज कनिष्क के समय में संघटित हुआ था, और जिसमें बौद्ध धर्म के साथ तांत्रिक अंशों का मिश्रण पाया जाता है। माध्यमिक, सौत्रांतिक, योगाचार और वैभाषिक इस महायान के दर्शन हैं जिनका विकाश महाराज अशोक के बहुत पीछे हुआ।

महात्मा बुद्धदेव ने प्राचीन आर्य्यधर्म के अतिरिक्त, जिसका उपदेश उपनिषद् आदि ग्रंथो में मिलता है, किसी नवीन या अनोखे धर्म का उपदेश नहीं किया। उन्होंने अपने मुँह से अपने उपदेशों में स्पष्ट शब्दों में कई बार कहा है 'एषधम्मो सनन्तनो' अर्थात् यह सनातन धर्म है।

महात्मा बुद्धदेव का उपदेश दो भागों में विभक्त किया जा सकता

---

* अभिधर्म में चित्त, चैतसिक, रूप और निर्वाण, अर्थात् मन, उसकी वृत्तियों और निर्वाण का वर्णन है।

† इसमें आचार व्यवहार का वर्णन है।

‡ आजकल बौद्ध धर्म के दो मुख्य भेद मिलते हैं—हीन यान और महायाना। पर इनके अठ्ठारह निकायों का उल्लेख मिलता है और प्रत्येक निकाय के

है, उपासक-धर्म और श्रमण-धर्म। इसी को सस्कृत भाषा में प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग तथा वैदिक भाषा में पितृयान और देवयान कहते हैं।

(क) उपासक धर्म

उपासकों और साधारण गृहस्थों के लिये भगवान् बुद्धदेव का यही उपदेश था कि मनुष्य एक जाति है। उसमें वर्णभेद प्राकृतिक नहीं है किंतु व्यावहारिक है। वर्णभेद को लेकर लोग दूसरे मनुष्यो को जो नीच समझते हैं, यह उनकी मूर्खता है। पुरुष अपने कर्म से श्रेष्ठ और अधम होता है। किसी वर्ण में उत्पन्न होने मात्र से कोई पुरुष श्रेष्ठ वा अधम नहीं हो सकता। भगवान् बुद्धदेव का मुख्य उपदेश यही था कि व्यावहारिक वर्णभेद का मुख्य हेतु कर्म-भेद है। वासेट्ठसुत्त में उन्होने स्पष्ट कहा है—

न केसेहि न सीसेन न कएणेहि न अक्खिहि।
न मुखेहि न नासाय न ओट्ठेहि भमूहि वा॥

लिंग जातिमय नेव तथा अञ्ञासु जातिसु॥

अर्थात् मनुष्य के बाल, सिर, कान, आँख, मुँह, नाक, होंठ, भौंह इत्यादि मे कोई ऐसा अतर नही जिसे हम जातिभेद का चिह्न कह सके और जिससे यह पता चला सकें कि अमुक पुरुष अमुक जाति का और अमुक अमुक जाति का है।

योहि कोचि मनुस्सेसु गोरक्खं उपजीवति

त्रिपिटक के पाठ और क्रम भिन्न भिन्न थे। उनके मूल ग्रन्थों का लोप हो गया है

एवं वासेट्ठ जानाहि कस्सको सो न ब्राह्मणो ।
योहि कोचि मनुस्सेसु प्रथु सिप्पेन जीवति
एव वासेट्ठ जानाहि सिप्पिको सो न ब्राह्मणो ।
योहि कोचि मनुस्सेसु वोहार उपजीवति
एव वासेट्ठ जानाहि वाणिजो सो न ब्राह्मणो ।
यो कोचि मनुस्सेसु परपेस्सेन जीवति
एव वासेट्ठ जानाहि पेस्सिको सो न ब्राह्मणो ।
योहि कोचि मनुस्सेसु अदिन्न उपजीवति
एव वासेट्ठ जानाहि चोरो एसो न ब्राह्मणो ।
योहि कोचि मनुस्सेसु इस्सुत्थ उपजीवति
एव वासेट्ठ जानाहि योधाजीवी न ब्राह्मणो ।
योहि कोचि मनुस्सेसु पोरोहिच्चेन जीवति
एव वासेट्ठ जानाहि याजको सो न ब्राह्मणो ।
योहि कोचि मनुस्सेसु गाम रट्ठ च जीवति
एव वासेट्ठ जानाहि राजा एसो न ब्राह्मणो ।
न वाह ब्राह्मण ब्रूमि योनिज मत्तिसभव
भोवादि नाम सो होति स वे होति सकिंचनो
आकिंचन अनादान तमह ब्रूमि ब्राह्मणो ।

हे वाशेष्ठ ! जो पुरुष गोरक्षा से जीवन निर्वाह करता है वह कृषक है, ब्राह्मण नही है । इसी प्रकार शिल्प का काम करनेवाला शिल्पी, व्यवहार या लेन करनेवाला वणिक वा वैश्य, चोरी करनेवाला चोर, शस्त्रोपजीवी योद्धा, पुरोहिती करनेवाला याजक और

गाँव और राष्ट्र का मालिक राजा है, ब्राह्मण नहीं। मैं ब्राह्मण माता पिता से उत्पन्न होने से किसी को ब्राह्मण नहीं मानता। वह भावादि वा नाम मात्र का ब्राह्मण है। वही व्यावहारिक ब्राह्मण है। मैं पारमार्थिक विषय-वासना रहित पुरुष को ब्राह्मण कहता हूँ। इससे स्पष्ट है कि महात्मा बुद्धदेव के ब्राह्मण शब्द से केवल परिव्राजक सच्चा सन्यासी ही अभिप्रेत था। इसे उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा भी है—

योध तण्हं परित्वान अनागारो परिब्बजे।
तण्हाभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जो तृष्णा का नाश कर गृहस्थाश्रम त्याग कर सन्यास ग्रहण करता है, जिसने तृष्णा और भव (सासारिक व्यवहार) का सर्वथा क्षय कर दिया है वा उन्हें त्याग दिया है, मैं उसी को ब्राह्मण* कहता हूँ।

व्यावहारिक धर्म मे भगवान् बुद्धदेव ने गृहस्थ के लिये माता पिता की शुश्रूषा, भाई बंधु कुटुंब का पोषण, अनिहित कर्म का करना इत्यादि कर्त्तव्य बतलाया है—

---

* पाली भाषा का 'समण' शब्द संस्कृत 'शर्मण' शब्द का ही अपभ्रष्ट रूप प्रतीत होता है। भ्रमवश पीछे के विद्वानों ने समण शब्द की मुख्य प्रकृति को न जानकर समण से संस्कृत 'श्रमण' शब्द बना लिया है। इसी प्रकार सावक संस्कृत शावक का अपभ्रष्ट है जिसको पीछे से 'श्रावक' संस्कृत रूप दिया गया।

माता पितु उपट्ठान पुत्तदारस्स सगहो।
अनाकुला च कम्मन्ता एत मगलमुत्तम ॥
दान च धम्मचरिया च ञातिकान च सगहो।
अनवज्जानि कम्मनि एतं मगलमुत्तम।

महामंगलसुत्त।

धम्मेन माता पितरो भरेय्य, पयोजये धम्मिक यो वणिज्ज।
एत गही वत्तय अप्पमतो सय पभे नाम उपति लोकं।

धम्मिक सुत्त।

माता पिता का उपस्थान करना, पुत्र और कलत्र का संग्रह करना और कर्म्म करने से व्याकुल न होना, ये सब उत्तम कल्याण-कारक कर्म हैं। दान देना, धर्माचरण, जातिवालों का सग्रह और भरण-पोषण, अनिंदित कर्मों का करना ये सब श्रेष्ठ मगलकारक कर्म हैं। धर्मपूर्वक कर्म से माता और पिता का पालन पोषण करो, धर्मपूर्वक व्यवहार, वाणिज्य और व्यापारादि करो। गृहस्थ पुरुषों को इस प्रकार आलस्य और प्रमाद त्यागकर अपना धर्म्म पालन करना चाहिए। ऐसा करने से वे स्वयप्रभ नामक लोक को प्राप्त होते हैं।

इतना ही नहीं, भगवान् बुद्धदेव ने यद्यपि हिसायुक्त यज्ञों की निंदा की है और ऐसे यज्ञों के याजकों को बुरा कहा है, पर फिर भी अग्निहोत्र और सवित्री की, जो पच महायज्ञों में आदि और मुख्य कर्म हैं, प्रशसा की है। उन्होंने लिखा है—

अग्गिहुतमुखा यञ्ञा सवित्ती छन्दसान मुख।

राजामुखं मनुस्सान नदीनं सागरो मुख ॥
नक्खत्तान मुख चन्दो आदिच्चो तपत मुख ।
पुञ्ज आकखमानान, सघो वे यजन मुखं ॥

यज्ञो में अग्निहोत्र श्रेष्ठ है, छदों में सावित्री श्रेष्ठ है, मनुष्यों मे राजा प्रधान है, नदी आदि जलाशयों मे समुद्र सब से महान् है, नक्षत्रों मे चद्रमा सब से प्रकाशित और तपनेवालों में सूर्य्य महान् है, सब इच्छित कर्मों में पुण्य श्रेष्ठ है और यजन मे श्रेष्ठ सघ वा ब्रह्मज्ञानी पुरुषों का सत्सग है।

महात्मा बुद्धदेव ने कोकालीय सुत्त में कुंभीपाक, असिपत्रवन, वैतरणी आदि नरकों का उसी प्रकार वर्णन किया है जिस प्रकार उनका वर्णन पुराणादि मे मिलता है। यथा एक बार महाराज बिबसार को उन्होने श्राद्ध करने का उपदेश दिया था, जिसमें उन्होंने ब्राह्मण और श्रमण-भोजन के फल का दान उन मृत बधुओं की आत्मा का जिनके उद्देश से श्राद्ध किया गया था, आह्वान करा के दिलाया था *।

भगवान् बुद्धदेव ने गृहस्थो को दश-लक्षणात्मक धर्म का उसी

---

* उत्सर्ग का मन्त्र जिसका अब तक बौद्धों में प्रचार है, वह है —भन्तेमयं कर्म्मं च कम्मफलचपेत कालंकतं उद्दिस्स इमधर्जं वा इमं पिडपात खादनीयं भोजनीय वा तिन्नं रतनान सद्धाचित्तेनदक्खिणोदकं प तेत्वा देमि इमेनपुञ्ञ कम्मेनकालकतो मनुस्स देवसम्पत्तिलभित्वा पच्छिमेभवेखेमं निब्बानं भापुनातु अम्लाकं चेदपुञ्ज निब्बानस्स पच्चसो होतुनोइद पुञ्ञभाग पेतमादि कत्वा सब्बेमच्चाना भाजेमसब्बेसत्ता इद पुञ्ञभार्ग अक्हेति समंलभेन्तु।

प्रकार उपदेश किया है जैसे उनका वर्णन हिंदुओं के धर्मशास्त्रों में मिलता है। उनका विशेष लक्ष्य शील, प्रियभाषण, अहिंसा तथा अप्रमाद पर था। सत्य और सदाचार आदि का उपदेश तो उनके वाक्यों में पद पद पर पाया जाता है। जैसे—

वाहुसच्च च सिप्प च विनयो च सुसिक्खितो।
सुभासिता च या वाचा एत मगलमुत्तम॥
अरतिं विरतिं पापा मज्जपाना च सञ्जम।
अप्पमादो च धम्मेसु एत मगलमुत्तम।
गारवो च निवातो च सतुट्ठि च कतञ्जता।
कालेन धम्मसवण एत मगलमुत्तम॥
खन्ती च सोवचस्सता, समणान च दस्सन।
कालेन धम्मसाकच्छा एत मगलमुत्तम॥
तपोच ब्रह्मचरिया च अरियसच्चा न दस्सन।
निब्बाण सच्छिकिरिया च एत मगलमुत्तम॥

बाहु सत्य, शिल्प, विनय, सुशिक्षित होना और प्रिय वचन ये उत्तम मगल हैं। पाप से अरिति और विरति, मद्यपान से सयम (बचना) और धर्माचरण मे अप्रमाद ये उत्तम मगल हैं। गुरुत्व और अनिर्वात (अविकम्प वा धृति) सतोष, कृतज्ञता और काल आने पर धर्म का श्रवण करना, ये उत्तम मगल हैं। क्षाति, सौवर्चस्व, साधुओं का दर्शन और समय पर धर्म को साक्षात् करना, ये उत्तम मगल कार्य हैं। तप, ब्रह्मचर्य्य, आर्य्य सत्यों का दर्शन और निर्वाण का साक्षात्कार ये उत्तम मगल हैं।

भगवान् बुद्धदेव ने जो सुभाषित ऊपर कहा है, उसके चार भेदों का वर्णन 'सुभासित सुत्त' में इस प्रकार किया है—

सुभासित उत्तम माहु सतो ।
धम्म भणेनाधम्म त दुतीय ।
पिय भणेनाप्पिय त ततीय ।
सच्च भणेनालीकं त चतुत्थ ।
तमेव भास भासेय्य ययत्तानं न तापये ।
परे च न विहिंसेय्य सा वे वाचा सुभासिता ॥
पियवाचमेव भासेय्य या वाचा पतिनन्दिता ।
य आनादाय पापानि परेस भासते पिय ॥
सच्च मे अमता वाचा एस धम्मो सनत्तनो ।
सच्चे अत्थे च धम्मे च आहु सन्तो पतिट्ठितो ॥

शांत और सुभाषित वाक्य को उत्तम कहते हैं, धर्म की बात कहना अधर्म की नहीं कहना यह दूसरा सुभाषण है। प्रिय बोलना, अप्रिय नहीं बोलना यह तीसरा सुभाषण है। सत्य बोलना असत्य नहीं बोलना यह चौथा सुभाषण है। वही बात बोलनी चाहिए जो अपनी आत्मा के विरुद्ध न हो और जिससे किसी को दुःख न पहुँचे, वही सुभाषित वाक्य है। वही प्रिय वाक्य बोलना चाहिए जो आनन्ददायक हो और ऐसा न हो कि दूसरे के लिये प्रिय बोलने से पाप लगे। मेरी वाणी सदा सत्य हो, यह सनातन धर्म है। सत्य, अर्थ और धर्म शांति प्रतिष्ठित हैं।

असत्य बोलने के लिये भगवान् बुद्धदेव ने यहाँ तक निषेध

किया है कि किसी अवस्था में भी असत्य न बोलना चाहिए। वे कहते हैं—

सभगतो वा परिसग्गतो वा
एकस्स चेको न मुसा भणेय्य।
नभाणये भणन नानुजञ्ञा।
सब्ब अभूत परिवज्जयेय्य॥

सभा मे जाकर, चाहे परिषद् मे जाकर अथवा परस्पर मिथ्या न बोलना चाहिए, न बोलने देना चाहिए और न बोलने की आज्ञा देनी चाहिए। सब असत्य वाक्यो को बोलने के पहले ही परिवर्ज करना चाहिए।

भगवान् बुद्धदेव ने ऐसे लोगों का सबसे अधिक तिरस्कार किया है जिन्हें महाराज मनु ने धर्म-ध्वजी कहा है। वे वसल-सुत्त में कहते हैं—

यो च अनरहा सतो अरह पटिजानती।
चोरो स ब्रह्मकेलोके एस खो वसलाधमो॥

जो अनर्ह, अयोग्य होकर अपने को योग्य समझता है, वह ब्रह्मलोक में चोर है और ऐसे पुरुष को वृषलाधम कहते हैं।

गृहस्थों के लिये उनका सबसे उत्तम उपदेश दुष्टों के सग का परित्याग करना है। वे कहते हैं—

असेवन च वालान पडितान च सेवन।
पूजा च पूजनीयान एत मगलमुत्तमं॥
तस्मा हवे सप्पुरिस भजेथ

मेधाविन चेव बहुस्सुत च
आञ्ञाय अत्थ पटिपज्जमानो
विञ्ञातधम्मो सो सुखलभेथ ॥

मूर्खों का साथ न करना और पडितो का सग करना तथा पूजनीय पुरुषों की पूजा प्रतिष्ठा करना यह उत्तम और मगल-कारक कर्म है। इसलिये ऐसे सत्पुरुषों का जो मेधावी और बहु-श्रुत हों, सग करो, क्योंकि अर्थ को न जानकर जो उनकी शरण का प्राप्त होता है वह विज्ञात-धर्म होने पर सुख प्राप्त करता है।

अतिथि-पूजन पर उनका कथन था कि न केवल वही पुरुष नीच और पापी है जो आए हुए अतिथि का पूजन नहीं करता, किंतु ऐसे लोग भी निंद्य हैं जो किसी के घर जाकर उनका आतिथ्य-सत्कार स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं—

यो वै परकुले गत्वा भुत्वा न सुचिभोजन ।
आगत न पटिपूजेत त जञ्ञो वसलोइति ।

जो पराए घर पर जाकर पवित्र भोजन नहीं करता और आए हुए अतिथि का सेवा-सत्कार नही करता, वह वृषल है।

इन उपर्युक्त थोडे से वाक्यो से यह स्पष्ट है कि महात्मा बुद्धदेव ने गृहस्थो के लिये किसी नए धर्म का उपदेश नहीं किया, किंतु उसी प्राचीन आर्य्य धर्म का उपदेश किया था जिसका उपदेश उनके पूर्व महर्षिगणों ने श्रुति स्मृति में किया था। वे एक धर्म-सशोधक थे और प्रचलित प्रथा मे जो कृत्य उन्हें समाज के लिये हानिकारक प्रतीत हुए, उनका उन्होंने स्पष्ट शब्दो में निर्भयता से प्रतिवाद किया।

(ख) श्रमण धर्म

महात्मा बुद्धदेव का मुख्य लक्ष सन्यासाश्रम की अवस्था का सुधार करना था। सन्यास-ग्रहण की प्रथा इस देश मे उपनिषद्-काल से चली आती थी और लोग यथारुचि वैराग्य प्राप्त होने पर ब्रह्मचर्य्या, गृहस्थाश्रम वा वानप्रस्थाश्रम से सन्यास मे प्रविष्ट हुआ करते थे। यद्यपि शास्त्रों में केवल अधिकारी पुरुष ही को सन्यासाश्रम के ग्रहण का अधिकार दिया गया है, पर फिर भी कितने आलसी और काम-चोर लोग सन्यासाश्रम मे प्रवेश करने लग गए थे जिसका परिणाम यह हुआ था कि उन लोगो के दुराचारो से सन्यास आश्रम ही कलकित हो गया था। इन अनधिकारियों को सन्यास धर्म में प्रवेश करने से स्वय भगवान् बुद्धदेव भी न रोक सके थे और देवदत्त आदि कितने ही अनधिकारी पुरुष काषाय वस्त्र धारण कर भिक्षु बन गए थे जिसके कारण स्वय भगवान् बुद्धदेव को भी अपने जीवन मे अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडा था।

किसी आश्रम के आचार का पालन तब तक ठीक रूप से नहीं हो सकता जब तक उसके प्रत्येक व्यक्ति पर उस आश्रम के समुदाय का जिसे समाज कहते हैं, पूरा दबाव न हो। ससार का कोई व्यक्ति यदि वह बिलकुल स्वतन्त्र हो, केवल ईश्वर वा परलोक वा स्वर्ग नरक के भय से धर्म का अनुष्ठान नहीं कर सकता जब तक उस पर समाज वा पच का दबाव वा भय न हो। समाज का दड-विधान

ही एक ऐसी वस्तु है जो उस समाज के प्रत्येक व्यक्ति को किसी सूत्र में बाँध सकती है। गृहस्थाश्रम में समाज-बधन को ऋषियों ने सहस्रों वर्ष से दृढ कर रखा और अच्छी तरह से चारों ओर से जकड़बद कर दिया था। जब लोग उच्छ खल होकर अनेक विकार उत्पन्न कर बैठते हैं तब सन्यासाश्रम के लोगों को जो सर्वथा परि-ग्रह रहित और स्वतत्र हैं, एक सूत्र मे बाँधने के लिये कौन ऐसी शक्ति है जो बाध्य कर सकती है ? इसमे कोई सन्देह नहीं कि महात्मा बुद्धदेव के पूर्व के महर्षियो और आचार्य्यो ने सन्यास धर्म के कृत्यो और कर्मो का निर्वाचन उपनिषदादि ग्रथो मे कर दिया था, पर साथ ही उन्हे सर्वथा अदड्य और राजपरिषद् की आज्ञा से विनिमु क्त कहकर किसी ऐसी शक्ति का निर्वाचन नही किया था जो उनको बलात् उस नियम पर चलने के लिये बाध्य करती। महात्मा बुद्धदेव ने प्राचीन महर्षियों की आज्ञा मे इस त्रुटि का अच्छी तरह अनुभवपूर्वक साक्षात् किया था। वे स्वय राजकुमार थे। उन्हे शासनपद्धति और परिषद् सघटन आदि का अच्छा परिचय था। संन्यासियों की अवस्था के सुधार और सन्यासाश्रम के नियम ठीक रीति से चलाने के लिये उन्होने सघ का सघटन किया। इस सघ मे सारी क्रिया परिषद की रीति पर होती थी। सघ के लिये विनय के नियम निर्धारण करना और प्रायश्चित्त विधान आदि करना इसका मुख्य काम था। इस संघ ने सारे बौद्ध भिक्षुओं को एक दृढ सूत्र मे बाँध दिया और जिस प्रकार गृहस्थों पर समाज का दबाव था, उसी प्रकार उन्होंने सन्यासियों को भी सघ के दबाव में

डाला और एक निर्धारित नियम से चलने के लिये बाध्य किया। यद्यपि स्वय भगवान् बुद्धदेव उस सघ के एक साधारण भिक्षु थे, तथापि सघ ने उन्हे आजीवन अपना प्रधान नेता और सर्वस्व बना रखा था। इतना ही नहीं, उन्होंने उन्हे उनके पीछे धर्म और सघ के साथ मिलाकर 'रत्नत्रय' में एक रत्न बना दिया और आज तक सारे ससार के बौद्ध 'बुद्ध, धर्म और सघ' की शरण को प्राप्त होना ही अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं।

इस सघ ने भिक्षुओ के लिये क्या क्या कर्त्तव्य धर्म ठहराया था, इसका वर्णन विनय-पिटक में सविस्तर है। उन कृत्यों में बुद्ध, धर्म और सघ का तीन बार आश्रय लेना, दसशील,* और चीवर, पिंड, शयनासन और भैषज्य का प्रत्यवेक्षण मुख्य कृत्य है जो नाग वा प्रव्रज्या ग्रहण करनेवाले पुरुष को उपसपदा ग्रहण के पूर्व करना पड़ता है। सपदा ग्रहण करने पर भिक्षुओ के लिये प्रति पंद्रहवे दिन पूर्णिमा और अमावस्या को उपवसथ और पाप-देशना करना आवश्यक है। उपवसथ के लिये धार्म्मिक सूत्र में लिखा है—

---

* महावस्तु के मत से प्राणातिपात, अदत्तादान, कामेषुमिथ्याचार सुरामेरेयमद्यपान, मृषावाद, पिशुनवाक्, संभिन्नप्रलाप, अविद्या, व्यापाद और मिथ्यादृष्टि से निवृत्ति ये दस शील हैं। पर विनयपिटक में हिंसा, स्तेय, व्यभिचार, मिथ्याभाषण, प्रमाद, अपराह्न भोजन, नृत्य गीतादि, माला-गंधादि, उच्चासन शय्या और द्रव्य संग्रह के त्याग को दस शील माना है।

ततो च पक्खस्सुपवस्सुपोसथ ।
चातुद्दसिं पंचदसिं च अट्ठमि ॥
पटिहारिय पक्खं च पसन्नमानसो ।
अट्ठगुपेत सुसमत्थरूप ।

प्रति पक्ष में गृहस्थ और परिव्राजक दोनो को अष्टांग* धर्मयुक्त रहकर चतुर्दशी, पचदशी (अमावस्या और पूर्णिमा) और अष्टमी और प्रतिहार्य्य पक्ष के दिनों में प्रसन्न चित्त होकर उपवास व्रत करना चाहिए ।

सन्यास का अधिकार महात्मा बुद्धदेव के विचार से उसी पुरुष को है जिसे सच्चा वैराग्य उत्पन्न हो गया हो । वे कहते हैं—

राग विनयेथ मानुसेसु
दिब्बेसु कामेसु वापि भिक्खु ।
अतिक्कम्मभव समेच्चधम्मं

---

* पाणं न हाने न चादिन्न मादियं
मुसा न भासे न च मज्जपासिया ।
अब्रह्मचरिया विरमेय्य मेथुना
रत्ति न भुंजेय्य विकाल भोजनं ॥
माल न धारे न च गंधमाचरे
मंचर्ं छमायं वसयेथ सन्थते ।
एतंहि अट्ठङ्गिकमाहु पोसथं
बुद्धेन दुक्खन्तगुना पकासितं ॥

सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥
वचसा मनसा च कम्मना च
अविरुद्धा सम्मा विदित्वा धम्म ।
निब्बाण पदाभिपत्थयातो
सम्मासो लोके परिब्बजेय्य ॥
लोभ च भय च विप्पहाय
विरतो छेदन-बधनातो भिक्खु
यो तिएण कथकथा विसल्लो
सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥

जो मानुष्य और दिव्य रोगों को त्यागकर ससार को अतिक्रमण कर धर्मों का सग्रह करके भैक्ष्य-चर्य्या करनेवाला है, वही सब लोको में परिव्रज्या वा सन्यास ले सकता है। जिसके मन, वचन और कर्म अविरुद्ध हैं, जो सब धर्मों को जान गया है, जो निर्वाण के मार्ग का अनुगामी है, वही सन्यास का अधिकारी है। जिसने लोभ और भय को त्याग दिया है, जो भिक्षु छेदन और बन्धन से विरत है, जो कथकथा को पार कर गया है, जो वेदना-रहित है, वही सन्यास का अधिकारी है। ऐसे ही अधिकारी पुरुष को भगवान् बुद्धदेव वेदज्ञ मानते थे। उनका कथन है—

वेदानि विचेय्य केवलानि
समणानं यानि ब्राह्मणानं
सब्बा वेदनासु वीतरागो
सब्ब वेदमतिच्च वेदगू सो ॥

जिसने सब वेदों और कैवल्य वा मोक्ष्य-विधायक उपनिषदों का अवगाहन कर लिया है और जो सब वेदनाओं से वीतराग हो कर सब को अनित्य जानता है, वही वेदज्ञ है।

महात्मा बुद्धदेव जगत् को अकर्तृक और जीवात्मा को निर्वाण होने पर नाशमान मानते थे। एक जगह उन्होने सृष्टि के विषय में कहा है—

नहि अत्थ देवो ब्रह्मा वा ससारस्सत्थि कारण।
सुद्ध धम्मा पवत्तन्ते हतु सम्भारपच्चया।

इस ससार की उत्पत्ति का कोई देवता वा ब्रह्मा कारण नही है। ससार में सब कुछ कारण और कार्य्य के नियम से उत्पन्न होता है।

जीव वा प्रत्येक चेतनता के विषय मे उन्होंने कहा है—

यस्समग्ग न जानासि आगतस्स गतस्स वा।
उभो अते असम्पस्स तिरत्थ परिदेवसी।

जिसके आने और जाने के मार्ग को तुम नहीं जानते हो और जिसके दोनो अत अदृश्य हैं, उसके लिये क्यो दु ख उठाते हो। गीता में भगवान् कृष्णचद्र ने भी यही कहा है—

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्त निधनान्येव तत्र का परिवेदना॥

सन्यासियों के लिये भगवान् बुद्धदेव का प्रधान उपदेश यह था कि वे सग वा कामना का त्याग करें। वे कहते हैं—

सोत्तेसुगुत्तोऽविदितिन्द्रिया चरे

धम्मे ठितो अज्जवमद्दवे रतो ।
सगातिगो सब्बदुक्खप्पहीनो
न लिप्पते दिट्ठिसुतेसु धीरो ॥
अच्चीयथा वातवेगेन खित्तो
अत्थ पलेति न उपेति सख
एव मुनी नामकायाविमुत्तो
अत्थ पलेति न उपेति सख ॥

जो संसार में सुरक्षित, इंद्रियो की वासना से विमुक्त होकर धर्म में स्थित, अर्जव और मर्दव में निरत हो सग त्यागकर विचरता है, वह सब दु खो से विनिर्मुक्त होकर दृष्टि और श्रुत के विषयों में लिप्त नहीं होता। जिस प्रकार दीपशिखा वात से बुझकर अपने कारण से लय हो जाती है और फिर सख्या वा भेद को नहीं प्राप्त होती, उसी प्रकार मुनि नाम और काय वा रूप से मुक्त होकर अपने कारण सर्वात्म ब्रह्म में लय हो जाता है और सख्या को नहीं प्राप्त होता।

मनोरंजन पुस्तकमाला

अब तक निम्न लिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं—

(१) आदर्शजीवन—लेखक रामचंद्र शुक्ल।

(२) आत्मोद्धार—लेखक रामचद्र वर्मा।

(३) गुरु गोविंदसिंह—लेखक बेणीप्रसाद।

(४) आदर्श हिंदू १ भाग—लेखक मेहता लज्जाराम शर्म्मा।

(५) आदर्श हिंदू २ भाग— " "

(६) आदर्श हिंदू ३ भाग— " "

(७) राणा जगबहादुर—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा।

(८) भीष्म पितामह—लेखक चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्म्मा।

(९) जीवन के आनंद—लेखक गणपत जानकी राम दूबे बी. ए।

(१०) भौतिक विज्ञान—लेखक सपूर्णानंद बी एस सी. एल टी।

(११) लाल चीन—लेखक बृजनंदन सहाय।

(१२) कबीर वचनावली—सग्रहकर्ता अयोध्यासिंह उपाध्याय।

(१३) महादेव गोविंद रानडे—लेखक रामनारायण मिश्र बी ए.।

(१४) बुद्धदेव—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा।

(१५) मितव्यय—लेखक रामचंद्र वर्म्मा।

(१६) सिक्खों का उत्थान और पतन—लेखक नदकुमार देव।

(१७) वीरमणि—लेखक श्यामविहारी मिश्र एम. ए. और

(१८) नेपोलियन बोनापार्ट—लेखक राधामोहन गोकुल जी।
(१९) शासनपद्धति—लेखक प्राणनाथ विद्यालङ्कार।
(२०) हिंदुस्तान, पहला खड-लेखक दयाचंद्र गोयलीय बी॰ ए॰।
(२१) ,, दूसरा खड ,, ,, ,,
(२२) महर्षि सुकरात—लेखक बेणीप्रसाद।
(२३) ज्योतिर्विनोद—लेखक सपूर्णानद बी० एस-सी०, एल-टी०।
(२४) आत्मशिक्षण—लेखक श्यामबिहारी मिश्र एम० ए० और शुकदेवबिहारी मिश्र बी० ए०।
(२५) सुदरसार-सग्रहकर्त्ता हरिनारायण पुरोहित बी० ए०।
(२६) जर्मनी का विकास, पहला भाग—लेखक सूर्यकुमार वर्म्मा।
(२७) ,, ,, दूसरा भाग ,, ,,
(२८) कृषि कौमुदी—लेखक दुर्गाप्रसाद सिंह एल० ए-जी।
(२९) कर्त्तव्य-शास्त्र—लेखक गुलाबराय एम ए, एल-एल बी.।
(३०) मुसलमानी राज्य का इतिहास पहला भाग—लेखक मन्नन द्विवेदी गजपुरी बी ए।
(३१) ,, ,, दूसरा भाग ,,
(३२) महाराज रणजीतसिंह—लेखक बेणीप्रसाद।
(३३) विश्वप्रपच पहला भाग—लेखक रामचद्र शुक्ल।
(३४) ,, दूसरा भाग ,,

(३७) ऐतिहासिक कहानियाँ-लेखक चतुर्वेदी द्वारिकाप्रसाद शर्मा।

(३८) निबधमाला पहला भाग—सग्रहकर्ता श्यामसुन्दरदास बी ए।

(३९) „ दूसरा भाग— „ „ „।

(४०) सुरसुधा—सग्रहकर्ता श्यामबिहारी मिश्र एम० ए० और शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए०।

(४१) कर्त्तव्य —लेखक—रामचद्र वर्मा